मध्ययुगीन

हिन्दी साहित्य में नारी-भावना

(इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डॉ० उषा पाण्डेय, एम० ए०, डी० फिल्०

हिन्दी-विभाग

इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली
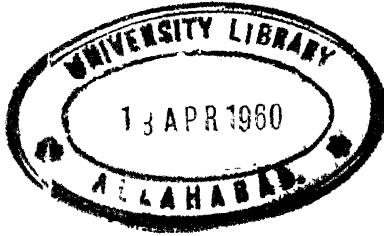
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६

मूल्य	:	**दस**	**रुपये**
प्रथम संस्करण	:	अक्टूबर	१९५९
मुद्रक	:	नारायन फाइन आर्ट प्रेस, दिल्ली	

तुमको !

जो स्वप्न की अभिराम मोहकता में स्नेह और सौभाग्य का महोत्सव, सुख-सौरभ का मधुमास मनाकर छिप गए।

—तुम्हारी
उषा

दो शब्द

मैंने [illegible] निरीक्षण किया है। ग्रन्थ के विषय-विभाजन और [illegible] में [illegible] स्पष्टता है जिससे ग्रन्थ अत्यन्त सुपाठ्य बन गया है। भाषा [illegible] गुणों से अलंकृत— प्रांजल है। श्रीमती पाण्डेय ने विषय के साथ तादात्म्य कर मनोयोगपूर्वक मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में नारी भावना का सूक्ष्म विवेचन किया है। शोध का प्राविधिक रूप भी अत्यन्त सम्पन्न है—उद्धरण, पाद-टिप्पणियाँ, संदर्भ-संकेत आदि अपने आप में पूर्ण हैं।

मैं इस नवीन कृति का स्वागत और उसकी कृती लेखिका के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ।

हिन्दी विभाग
दिल्ली-विश्वविद्यालय
दिल्ली

— नगेन्द्र

प्राक्कथन

बहुत पहले ही मानव जाति ने परिवार की कल्पना कर ली थी और स्त्री-पुरुष के विविध पारिवारिक संबंध तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाएँ स्थापित कर दी थी। संसार के सभी देशों के सांस्कृतिक इतिहास में परिवार का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। भारतवर्ष की परिवार-व्यवस्था संबंधी अनेक समस्याओं पर स्मृतियों के अध्ययन से प्रकाश पड़ता है। भारतीय परिवार, कुछ स्थानीय अपवादों को छोड़ कर, पितृसत्तात्मक रहा है और उसमें पूर्वजों से लेकर पुत्र-पुत्रियों तक की संयुक्त सत्ता स्वीकार की जाती रही है। वह केवल एक नारी और एक पुरुष तथा उनकी सन्तान तक ही सीमित नहीं रहा। जीवन के चारों फल—धर्म, अर्थ काम, मोक्ष-प्राप्त करना भारतीय परिवार का अन्तिम उद्देश्य था और पितृसत्तात्मक होते हुए भी उसमें नारी का आदरपूर्ण और स्नेहपूर्ण स्थान था—यद्यपि स्त्री-धन के अतिरिक्त उसके आर्थिक अधिकार लगभग शून्य थे। स्त्री और पुरुष का पारस्परिक संबंध अविच्छिन्न समझा जाता था। साथ ही समाज में वह पत्नी, प्रेमिका भगिनी, कन्या, माता, वेश्या आदि विविध रूपों में देखी जाती थी।

किन्तु भारतीय समाज में नारी का स्थान सदैव एक-सा नहीं रहा। परिवर्तित परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार उसकी स्थिति में भी अनेक परिवर्त्तन हुए। मुसलमानी आक्रमण से पूर्व नारी की जो स्थिति थी वह बाद को बनी न रह सकी। धर्म-शास्त्रों ने भी यथावसर उसके जीवन के पहलुओं में से कभी एक पर और कभी दूसरे पर बल दिया और अन्ततोगत्वा नारी का वह रूप हमारे सामने आया जिसे 'पौराणिकता' के भार से दबा हुआ रूप कहा जाता है। भारतीय इतिहास के मध्ययुग में अन्य रूपों की अपेक्षा उसका 'विलास पुत्तलिका' वाला रूप अधिक आकर्षक सिद्ध हुआ। सन्तों और भक्तों ने अपनी वैराग्य पूर्ण वृत्ति से प्रेरित होकर उसे 'सर्पिणी, और 'भव-बन्धन' का मुख्य कारण बताया। तुलसी जैसे समन्वयात्मक दृष्टि-सम्पन्न कवि ने उसे माता और जीवन की सच्ची सह-धर्मिणी के रूप में भी चित्रित किया। किन्तु मध्ययुग के वैभवपूर्ण भौतिक वातावरण में नारी के प्रति एक विशेष प्रकार के दृष्टिकोण का आविर्भाव हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी।

सच तो यह है कि भारतवर्ष में नारी की निन्दा और प्रशंसा दोनों बातें पाई जाती हैं। यहां यदि एक ओर सन्तों ने उसे काम-स्वरूपा जानकर उसकी घोर निंदा की है, तो दूसरी ओर भारतवर्ष में ही यह भी कहा गया है कि जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवता विचरण करते हैं और शास्त्रकारों तथा कवियों ने उसके

संतीत्व, मातृत्व, आत्म-त्याग तथा बलिदान और अन्य अनेक गुणों का गान किया है। संतुलित भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार उसका वही रूप है जो कामायनी की श्रद्धा का है।

डॉ० उषा पाण्डेय ने अपने प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी काव्य साहित्य के आधार पर नारी के संबंध में परंपरा से विकसित विविध रूपों को दृष्टिपथ में रखते हुए उनकी केवल मध्ययुगीन स्थिति पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर अपने निष्कर्ष निकाले हैं। परंपरा और तत्कालीन राजनीतिक समाज तथा धर्म की पृष्ठभूमि में आपने नारी के प्रति कवियों के दृष्टिकोण की सूक्ष्म परीक्षा की है और तत्कालीन पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। आशा है एक महिला द्वारा लिखा हुआ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की डी० फिल्० डिग्री के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध हिन्दी साहित्य के पाठकों को विशेष रोचक जान पड़ेगा।

हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी
इलाहाबाद
२९-८-१९५९

—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

भूमिका

भारतीय संस्कृति एवम् दर्शन में नारी को सदा ही विशिष्ट स्थान मिला है। हिन्दू धर्म-कथाओं में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना नारी की महत्ता तथा प्रधानता की द्योतक है। नर की सृष्टि नारी के सहयोग के बिना अपूर्ण है। अपनी सर्जन प्रतिभा तथा कला से नारी उसे पूर्णता और अमरता प्रदान करती है। कोमल संवेदनशीला नारी सामाजिक व्यवस्था का एक आवश्यक अंग है। सभ्यता एवम् संस्कृति के निर्माण में उसने क्रियात्मक योग दिया है। उसके लोरी गाने वाले कोमल स्वर में राष्ट्रनायकों को कर्तव्य-निर्देश देने की क्षमता है, तथा नारी के ही पालना झुलाने वाले करों में विश्व पर शासन करने की शक्ति सन्निहित है। उसके जननी रूप के गौरव एवम् महत्ता को विश्व के सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया है। वस्तुतः देश एवम् राष्ट्र का उत्थान, समाज एवम् जाति का उत्कर्ष इसी अर्द्धांग पर निर्भर है। आत्मगौरवपूर्ण माता ही बालक में कर्तव्य-पालन, आत्म-सम्मान और उत्सर्ग की उदात्त भावनाओं का उन्मेष कर सकती है। अतः इस मातृ-शक्ति का अनादर देश और जाति के हित के लिए घातक है।

नर की हिंसा की प्रचण्ड ज्वाला में दग्ध मानवता को ममता एवं स्निग्धता का अनुलेपन प्रदान करने वाली नारी, राष्ट्रविधात्री जननी, आत्मोत्सर्ग की मूक प्रतिमा पत्नी उपेक्षा की पात्र नहीं है। शतियों से समाज तथा पुरुष के अत्याचार के चक्र में पिसती हुई, मातृत्व के गौरव के साथ अनन्त वेदना की थाती लिए, नारी की अवहेलना समीचीन नहीं है। मध्ययुगीन तथा आधुनिक नारी में बहुत अन्तर है। कुसंस्कारों में पली हुई, परम्परा के बन्धनों में सीमाबद्ध, अशिक्षित मध्ययुगीन नारी का दृष्टिविन्दु गृह की क्षुद्र सीमा में ही केन्द्रित रहा है। यद्यपि इतिहास तथा साहित्य में इसके अपवाद भी हैं, पर जनसामान्य में नारी निश्चित सीमाओं, आदर्श रेखाओं पर इच्छा अथवा अनिच्छा से चली है। उसके अशिक्षित मस्तिष्क, कुसंस्कारों से पूर्ण हृदय पर नियामकों ने आदर्श का भार लादने का प्रयास किया है। बौद्धिकता तथा तर्क-वितर्क की भावना रहित नारी के सरल हृदय ने इन आदर्शों को अपने जीवन-पथ का ध्रुवतारा समझा। इन आदर्शों, एक-पक्षीय पवित्रता तथा पातिव्रत को उसने सदा ही शिरोधार्य किया है। इनकी स्वर्णिम आभा की मोहकता में विमुग्ध हो वह द्रुतगति से चली। इन आदर्शों की उपलब्धि के प्रयास में उसे विस्मृत हो गया कि उसके पग शृंखलाबद्ध हैं, अतः वह

पतित भी हुई। मानुषी तथा अमानुषी शक्तियों के संघात से उसका अपकर्ष हुआ। निरीह सरल विश्वास से उसने पुरुष को आत्मसमर्पण कर दिया, तथा पति को ही परमेश्वर माना। फलतः मध्ययुग की नारी पुरुष के इंगित पर नृत्य करने वाली काष्ठ-पुत्तलिका मात्र रह गई। उसमें चेतनता तथा व्यक्तित्व का अभाव रहा है।

आधुनिक नारी नवजागरण के इस युग में प्रभात के आलोक में नयन खोल रही है। जीवन के विविध क्षेत्रों में उसे पुरुषों के समान ही उत्कर्ष तथा विकास के अवसर हैं। अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से उसने रूढ़ियों का पुरातन वस्त्र उतार फेंका है। स्वावलम्बन तथा आत्म-सम्मान की भावना उसमें प्रमुख है। अपने कर्तव्यों से अधिक अपने अधिकारों के प्रति वह जागरूक, सचेत और प्रयत्नशील है। आधुनिक नारी में शिक्षा, चेतनता तथा व्यक्तित्व है। परन्तु जिन स्तरों से होकर वह उन्नति के इस शिखर पर आसीन हो सकी, उनको समझने के लिए मध्ययुगीन नारी, उसकी सामाजिक सीमाओं तथा अन्य परिस्थितियों का विश्लेषण अपेक्षित है। प्रस्तुत प्रबन्ध में साहित्यकारों द्वारा मध्ययुगीन नारी के चित्रण, तथा उसके और इतिहास के आधार पर दार्शनिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से नारी-भावना का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

आलोच्यकाल (१५०० से १७५० ई० तक) का समय भारत के सांस्कृतिक तथा राजनीतिक इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पन्द्रहवीं शती से ही धार्मिक आन्दोलनों तथा अन्य कारणों से प्रेरणा पाकर भक्ति की पावन पयस्विनी प्रवाहित हुई। आलोच्यकाल का प्रारम्भ का युग भक्ति-काल, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्णयुग की संज्ञा से अभिहित होता है। इसी युग में समाज को समानता का संदेश सुनाने वाले कबीर, तुलसी से समन्वयशील लोकनायक, तथा सूर से वात्सल्य तथा विप्रलंभ शृंगार के अद्वितीय कवि ने अपनी अमूल्य कृतियों से भारती के कोष की वृद्धि की। भक्ति के इस पावन उत्कर्ष में नारी की क्या स्थिति रही तथा इन भक्त कवियों ने नारी को किस दृष्टि से देखा, यह महत्वहीन नहीं है। भक्ति-काव्य ही राजनीतिक तथा अन्य परिस्थितियों से प्रेरणा पाकर शृंगार में पर्यवसित हो गया। रीति-कवियों ने भी भक्ति को मान्यता दी, परन्तु उनके कृष्ण लोकनायक, लोकरक्षक न होकर केवल सौंदर्य एवम् शृंगार के प्रतीक हैं। नारी-नख-शिख-वर्णन में कुशल, तिल पर तक शतक लिखने वाले, इन शृंगारी कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण विश्लेषण एवन् आलोचना का विषय है। आलोच्यकाल का उत्तर भाग रीतिकाव्य का युग है, किन्तु इसका राजनीतिक तथा सांस्कृतिक महत्व भी न्यून नहीं है। भारत के राजनीतिक इतिहास पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संक्रान्ति का युग है। इस समय मुगल शासन की केन्द्रीय दुर्बलता, परवर्ती सम्राटों की शक्तिहीनता से [illegible] प्रबल हो रही थीं। मध्ययुग समाप्त हो रहा था, तथा आधुनिक युग की सीमा रेखाएँ आकार ग्रहण

कर रही थीं। १७५० ई० से रीतिकाव्य के उत्कर्ष का युग समाप्त हो जाता है, तथा रीति-निर्वाह एवम् नायिकाभेद पर सामान्य शृंगारपरक साहित्य का सर्जन होता रहा है। अतः मैंने अपना अध्ययन १५०० ई० से १७५० ई० तक सीमित रखा।

आलोच्यकाल की इन्हीं विशेषताओं को दृष्टिपथ में रखते हुए 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की नारी-भावना' का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण प्रबन्ध के दो भाग हैं—प्रथम भाग में पहले अध्याय पूर्वपीठिका के अन्तर्गत आलोच्यकाल से पूर्व की नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। यह मेरे विषय से बाहर है। अतः इसकी सामग्री के लिए मौलिकता का दावा मैं नहीं रखती हूं। दूसरे अध्याय में इस्लाम से भारत का सम्पर्क, इस्लामी संस्कृति के सम्पर्क में प्रभावित आलोच्यकाल की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में नारी की स्थिति का विवेचन किया गया है। इस्लाम ने भारतीय नारी के जीवन में कोई मौलिक क्रान्ति न प्रस्तुत करते हुए भी प्रत्यक्षतः एवम् अप्रत्यक्षतः उसे प्रभावित अवश्य किया है। भारतीय राजपूती सामन्तवाद से इस्लामी, फारसी तथा अरबी संस्कृतियों के संगम, उनकी सामन्तवादी परम्परा के योग ने किस प्रकार वैभव और विलास की अतिशयता का ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया जिसमें नारी का स्थान केवल विलास के उपकरण के रूप में रहा, इस पर भी द्वितीय अध्याय में ही विचार किया गया है।

दूसरे भाग में साहित्यिक प्रतिक्रिया के अन्तर्गत समाज तथा साहित्य के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हुए, इन विशिष्ट परिस्थितियों में विकसित काव्य की विभिन्न धाराओं का उल्लेख किया गया है, तथा शेष भाग को पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है। तीसरे अध्याय में 'वीरकाव्य की नारी-भावना' का विश्लेषण किया गया है। चौथे अध्याय 'निर्गुण-भक्ति' के दो प्रकरणों में 'सन्त तथा सूफी-काव्य' में नारी के प्रति [illegible] है, तथा पांचवें अध्याय में 'सगुण भक्ति' के दो प्रकरणों में रामकाव्य तथा कृष्ण-काव्य की नारी-भावना' पर प्रकाश डाला गया है। रीति-काव्य की नारी-भावना इन सब धाराओं की नारी-भानवा से विशिष्ट होने के कारण उसका पृथक अध्याय में विश्लेषण किया गया है। सातवें अध्याय में आलोच्य साहित्य में नारी के विविध रूपों—माता, पत्नी, प्रेयसी आदि के चित्रण की विवेचना तथा वैवाहिक आचारों, शिक्षा केलि-क्रीड़ाओं, वस्त्राभूषणों एवम् प्रसाधनों, नारी के विविध पारिवारिक संबंधों एवम् नारी-सौन्दर्य-चित्रण के प्रकाश में नारी की स्थिति पर एक समीक्षात्मक दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में केशव, सेनापति तथा रहीम को भक्तिकाल के फुटकल कवियों में रखा है। परन्तु सुविधा तथा विषय की एकता के कारण प्रस्तुत प्रबन्ध में केशव की रचनाओं पर वीरकाव्य,

रामकाव्य तथा रीतिकाव्य—तीनों में ही विचार किया है। सेनापति में भक्ति का विकास है, परन्तु उनके श्लेष-वर्णन, ऋतुवर्णन, तथा नख-शिख-वर्णन में रीतिकालीन प्रवृत्ति स्पष्ट है, अतः उनको रीति-कवियों में सम्मिलित किया है। रहीम पर भी रीति-कवियों में ही विचार किया गया है। काव्य की धारा विशेष को अधिक महत्त्व दिया है। अतः उस धारा के प्रतिनिधि कवियों की नारी-भावना का ही विवेचन किया है, नगण्य कवियों पर विचार नहीं किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के योग्य निरीक्षण में लिखा गया है। इसके लेखनकाल में आदरणीय वार्ष्णेय जी से सतत प्रोत्साहन मिलता रहा, व्यस्त होने पर भी उन्होंने इस प्रबन्ध का प्राक्कथन लिखने की कृपा की है। उनके प्रति मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० रामकुमार वर्मा से भी प्रोत्साहन और निर्देश मिलते रहे हैं। डॉ० नगेन्द्र ने अपनी सम्मति और आशीर्वाद देकर प्रोत्साहन दिया है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र, डॉ० रामप्रसाप त्रिपाठी प्रभृत्ति विद्वानों से भी मंगलाकांक्षाएँ और सुझाव मिले। अपने इन श्रद्धास्पद गुरुजनों के स्नेह के लिए धन्यवाद देना औपचारिकता-प्रदर्शन मात्र होगा। अपनी सहयोगिनी शोध-छात्राओं तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति मैं आभारी हूँ, जिन्होंने मौखिक अथवा क्रियात्मक सहयोग दिया है।

२, क्वीन मेरी लेन
तीस हजारी, दिल्ली
१४-१०-५६

—उषा पाण्डेय

विषय-सूची

४. निर्गुण भक्ति-काव्य में नारी

५. सगुण भक्ति काव्य में नारी

आलोच्यकाल से पूर्व नारी की स्थिति

परमब्रह्म ने सृष्टि-निर्माण के लिए एक दूसरे के पूरक दो रूपों की रचना की, पुरुष और नारी। इन्हीं पृथक् गुण एवम् प्रकृति वाले भिन्न रूपों का मिलन मानव सृष्टि का आधार है। पुरुष कठोरता, सक्रियता, शक्ति एवं शौर्य का परिचायक है, नारी कोमलता, मधुरता एवम् सुकुमारता का मूर्त्त रूप। पुरुष में मस्तिष्क पक्ष की प्रधानता है, कर्मण्यता का प्रवाह, शौर्य का संयोग है और नारी में उसकी निर्ममता, कठोरता, रुक्षता को अपनी स्वभावगत स्निग्धता से मृदुल बनाने की क्षमता विद्यमान है। नारी आदि-शक्ति के रूप में पुरुष का अर्धांग, तथा जीवन का सर्जन एवम् पोषण करने वाला मातृपक्ष है। जीवन वात्सल्य और ममता के इसी मधुमय प्रवाह का मुखापेक्षी है। भारतीय संस्कृति में नारी के प्रति यही दृष्टिकोण प्रधान रहा है। स्नेह एवम् ममता, करुणा और वात्सल्य, उत्सर्ग और त्याग की स्वभावगत विशेषताओं के कारण माता, पत्नी, पुत्री और भगिनी के रूप में समादरणीय होकर वह रमा, जगदम्बा, एवम् अन्नपूर्णा के नाम से अभिहित हुई।

प्रागैतिहासिक युग : ३२५० से २७५० ई० पू०

प्रागैतिहासिक युग का इतिहास, इतने अन्वेषण के उपरान्त भी अनुमान पर आधारित है। प्राप्त अवशेषों, चिन्हों, चित्रों द्वारा सभ्यता के उस आदि युग-विषयक ज्ञातव्य सूचनाओं का अनुमान लगाया गया है। मातृदेवी की उपासना के विकास से संभावना की जाती है कि प्रागैतिहासिक युग में मातृसत्तात्मक समाज था। उस आदि युग में माता ही समस्त शक्ति और सत्ता की केन्द्र थी। माता की इस शक्ति के मूल में दो कारण निहित हैं, उसकी आर्थिक उपादेयता, और विवाह संबंधी नियमों की शिथिलता। समाज में माता की इस अधिकार-पूर्ण, सत्तात्मक स्थिति से आश्चर्य और भय की आदि भावनाओं से अनुप्राणित हो मानव ने अदृश्य शक्ति की कल्पना माता की प्रतिमा में ही की थी।[1] सभ्यता के इस आदिकाल में समाज में विवाह की प्रथा थी, अथवा नैतिक उच्छृङ्खलता फैली थी इस विषय में मतभेद है। महाकाव्यों में प्राप्त कुछ उदाहरणों के आधार

---

१. शशिभूषणदास गुप्ता—इवोल्यूशन आफ मदर वरशिप इन इण्डिया पृ० ४९-५० : ग्रेट विमेन आफ इण्डिया में संग्रहीत : १९५३ कलकता

पर अल्टेकर संभावना करते हैं कि तत्कालीन समाज में विवाह की पद्धति नहीं थी।[1] मनुष्य, स्त्री-पुरुष के छोटे-छोटे सामाजिक समूहों में प्रकृति से संघर्ष करता हुआ, साथ-साथ श्रम करता और रहता था। यौन संबंधों में वह अर्धमानव अर्ध-पशु था[2]। यह तो स्पष्ट ही है कि नारी की स्थिति पुरुष के समकक्ष ही नहीं प्रत्युत् उससे श्रेष्ठ थी। आर्थिक, सामाजिक जीवन में उसे विशेषाधिकार उपलब्ध थे।

वैदिक युग : १६०० ई० पू० ऋग्वैदिक काल

ऋग्वेद भारत का ही नहीं, अपितु संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऋग्वेद का युग मानव-सभ्यता का मधुमय विहान था। प्रकृति के सौन्दर्ययुक्त, विस्मयोत्पादक दृश्य दृष्टिगत कर उसके लोमहर्षक भयोत्पन्नकर्ता स्वरूप का साक्षात्कार कर, उसकी उर्वरा शक्ति से जीवन का वरदान पाकर आर्यों के भाव-कुसुम गति एवं लय का अवलम्ब लेकर ऋग्वेद में प्रस्फुटित हो उठे। आर्यों ने प्रकृति की आश्चर्यजनक शक्तियों को दैवी शक्ति का प्रतीक मानकर उनमें देवत्व का आरोप किया। अदिति को मातृत्व का प्रतीक माना। रात्रि, प्रभात, निशा, सूर्या, इन्द्राणी, बाक, इला, भारती, सरस्वती आदि वैदिक देवियों में अधिकांश प्राकृतिक शक्ति की प्रतीक हैं। वैदिक दिव्य प्रतीकों को भावना एवं भक्ति का अर्घ्य मिला।

ऋग्वेद काल की नारी भावना का पूर्ण परिचय ऋग्वेद में वर्णित इन प्रतीकों से मिलता है। आर्यों द्वारा सर्जित और पूजित इन देवियों में, उनके गृह एवम् यज्ञ की शक्ति ही प्रतिबिंबित हुई है[3]। इन्द्राणी भारतीय पत्नी की प्रतीक है, वह गृह की एकछत्र स्वामिनी, पति में शक्ति का संचार करने वाली, एवम् उसके सम्पूर्ण हृदय के प्रेम की अधीश्वरी है[4]। उस समय के समाज का आधार पितृसत्ताप्रधान परिवार था[5]। पुरुष और नारी विवाह के अविच्छिन्न पवित्र संस्कार के बंधन में बद्ध हो जीवन-पथ पर अग्रसर होते थे। ऋग्वेद में प्रदत्त विवाह की ऋचा के अनुसार वधू पितृगृह से पतिगृह जाती थी। अपने नवगृह में वह सास-ससुर, ननद-देवर सब पर शासन करती हुई समादरणीय स्थान प्राप्त

एच० सी० राय चौधरी—एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० २०, १९५३ लंदन

राधा कुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन, १९५० बम्बई, पृ० २३

१. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ़ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ३५, १९३८ बनारस

२. एस० ए० डांगे—इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लेवरी पृ० ११८-२८, १९४९ बम्बई

३. भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद, पृ० ३, १९४१ बनारस

४. भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद, पृ० २१, १९४१ बनारस

करती थी[१]। दम्पति शब्द पति पत्नी के सम्मिलित स्वामित्व का द्योतक था। पत्नी पति के इंगित पर संचालित होने वाली काष्ठ-पुत्तलिका न होकर, सुख-दुःख में पति की सहभागिनी थी। उस समय नारी का चरम विकास मातृत्व में स्थापित हो गया था। माता श्रद्धा एवं आदर की पात्री थी[२]। माता का आशीर्वाद जीवन में सौख्य एवं कल्याण का आवाहक था। पुत्र-जन्म अधिक आनन्द-जनक अवश्य था, किन्तु उत्पन्न होने के उपरान्त पुत्री असीम ममता एवं स्नेह की भागिनी होकर कनिका नाम से अभिहित होती थी।

सामाजिक जीवन में स्त्रियों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था[3]। यह उन्मुक्त प्रेम का युग था। सवन नाम के सार्वजनिक उत्सवों में स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं[४]। वैदिक-संस्कृति में स्त्रियाँ पुरुषों के ही समान उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं। वेद और शास्त्रों में पारंगत होने के अतिरिक्त वे ऋचाओं की रचना भी करती थीं[५]। साहित्य के साक्ष्य के अनुसार विश्ववरा, लोपामुद्रा, सिक्ता निवावरी और घोषा ऋग्वेद की प्रतिभाशालिनी कवयित्रियाँ हैं। उन लेखकों एवम् विद्वानों में जिनकी स्मृति में ब्रह्मयजन के अवसर पर नैत्यिक श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है, सुलभा, मैत्रेयी, वाक, प्राचितेई, एवं गार्गी वाचकनवी हैं[६]। समाज में एक पत्नीव्रत की मर्यादा मान्य थी, बहुपतित्व की प्रथा अप्रचलित थी। कालान्तर में अभिजात वर्ग में बहुविवाह प्रचलित हो गया[७]। कन्या एवं पति दोनों को ही अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी[८]। बाल विवाह की प्रथा

---

१. सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव;
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु। ऋग्वेद १०।८५।४६

२. सी० बेंडर—विमेन इन एंशियन्ट इंडिया पृ० ६३, लंदन १९२५

३. संगठन के सिद्धान्त और व्यवहार में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था, किसी प्रकार का परदा नहीं था। साधारण जीवन के अलावा समाज के मानसिक और धार्मिक नेतृत्व में भी स्त्रियों का हाथ था।—बेनीप्रसाद —हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृ० ५०, प्रयाग १९३१

४. भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद पृ० ४५, बनारस १९४१

५. हारानचन्द्र चकलेदार—सोशल लाइफ इन एंशियन्ट इंडिया, कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया भाग ३, पृ० १९७ में संग्रहीत

६. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १२, १९३८ काशी

७. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ७२, १९५० बम्बई

८. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ७२, १९५० बम्बई
भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद पृ० ४५, १९४१ बनारस

नहीं थी[1]। विधवा को पुनर्विवाह अथवा नियोग का अधिकार था[2]।

वैदिक युग की नारी धार्मिक जीवन में पति की सहयोगिनी होती थी[3]। उसे अकेले उपासना करने का अधिकार प्राप्त था[4]। स्त्रियों का भी पुरुषों के समान ही उपनयन होता, उसके उपरान्त वे वैदिक शिक्षा के साथ ही यज्ञादि सम्पादन कर सकती थीं। सामान्यत: धार्मिक उपासना तथा प्रार्थना दम्पत्ति मिल कर करते थे। पारिवारिक यज्ञों में नारी का क्रियात्मक सहयोग रहता था। साम के मंत्रों के रागात्मक उच्चारण के अतिरिक्त वे चढ़ाए जाने वाले चावल को पीसती और बलि-हेतु प्रस्तुत पशु को स्नान कराती थीं[5]।

उत्तर वैदिक युग

ऐसे साक्ष्यों का अभाव नहीं है जिनसे स्त्रियों के आदरपूर्ण स्थान का परिचय प्राप्त होता है, तो भी धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्था के नियमों में कड़ाई के साथ स्त्रियों के पद में क्रमिक ह्रास होने लगा था। अन्तर्वर्ण विवाह प्रचलित तो थे, किन्तु उनसे उत्पन्न सन्तान निकृष्ट मानी जाती थी। अनुलोम विवाह प्रथा के कारण स्त्री का पद और भी हीन हो गया था। तप और विराग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण स्त्री को अनादर की दृष्टि से देखा जाने लगा था। मैत्रायणी-संहिता स्त्रियों को शराब और [illegible] के समान बताती है[6]। सामाजिक जीवन में स्त्रियों का भाग कम हो गया था। विवाह में आंशिक स्वतंत्रता विद्यमान थी। परिपक्व अवस्था होने पर विवाह होता था[7]। अभिजात वर्ग एवं पुरोहितों में

---

१. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ५८, १९३८ काशी

२. भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद पृ० ९२, १९४१ बनारस

३. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ७३, १९५० बम्बई

४. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ३२३

५. "Women participation in Vedic Sacrifices was thus a real and not a formal one, they enjoyed the same religious privileges as their husbands"
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २३३-२३४, १९३९ बनारस

६. बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृ० १९६, १९३१ प्रयाग

७. बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० १०३, १९३९ प्रयाग
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४११, १९३८ काशी

अनेक विवाह करने की प्रथा थी। विधवा-विवाह मान्य था[१]। स्त्रियाँ वस्त्र रंगने, कढ़ाई, विडालाकरी अथवा डलिया बनाने आदि के व्यवसायों में सहायता देती थीं[२]। स्त्री-धन का अभाव था। धार्मिक स्वप्नों और विशेषाधिकारों में भी अन्तर आ गया था। कुछ यज्ञ, यथा, रुद्र यज्ञ तथा सीता यज्ञ केवल स्त्रियों द्वारा ही सम्पादित होते थे। जब पति यात्रा को चला जाता था वे बलि-अग्नि की उपासना करती थीं। संस्कृत परिवारों में स्त्रियाँ प्रातः और सायं पूजा की प्रार्थनाओं का पाठ करती थीं, किंतु बलिदान के अनेक ऐसे कार्य जो केवल स्त्रियाँ ही कर सकती थीं, कालान्तर में पुरुषों द्वारा सम्पादित होने लगे[३]।

उपनिषदों के युग में नारी में सहशिक्षा का प्रचार बराबर बना रहा। स्त्री विद्यार्थिनी दो प्रकार की होती थीं—ब्रह्मवादिनी और सद्योद्वाहः। ब्रह्मवादिनी जीवनपर्यन्त धर्मशास्त्र एवम् दर्शन का स्वाध्याय करती रहती थीं, दूसरे वर्ग की स्त्रियाँ ८, ९ वर्ष तक संस्कारों की विधि, तथा वैदिक ऋचाओं एवम् मंत्रों की उच्चारण विधि सीख कर गृहस्थ जीवन को अपनातीं। उपनिषद्-युग में दार्शनिकों की सभा में विद्वतापूर्ण विषयों पर भाषण दे सकने की क्षमता रखने वाली गार्गी, एवं ब्रह्म के उच्चतम ज्ञान का साक्षात्कार करने वाली मैत्रेयी के समान विदुषी नारियों के उदाहरण उपलब्ध हैं[४]।

यद्यपि अब भी समाज में नारी को समादरणीय स्थान प्राप्त था, उसे पुरुष की समानता प्राप्त थी। विवाह में पति निर्वाचन की स्वतंत्रता थी। बाल-विवाह का प्रचार नहीं था, बौद्धिकता में भी वह पुरुषों से हीन न थी, तो भी इस युग में उसकी अवस्था में क्रमिक ह्रास होने लगा था और कन्या का जन्म दुख का कारण समझा जाने लगा था। नारी की स्थिति के पतन का वपन-काल उत्तर-वैदिक युग ही माना जाए जो अनुचित न होगा।

सूत्रकाल

इस काल में नारी की स्थिति में उत्तरवैदिक युग से भी अधिक अपकर्ष हुआ। राजनीतिक शान्ति और आर्थिक निश्चिन्तता के इस युग में आर्यों का ध्यान साहित्य के परिष्करण की ओर गया। ब्राह्मण-काल में वैदिक साहित्य अधिक

१. बेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ० १०७, १९३१ प्रयाग
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४११, १९३८ काशी

२. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ९७, १९५० बम्बई

३. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४११, १९३८ बनारस

४. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १११, १९५० बम्बई
ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १४

विस्तृत एवं जटिल हो गया था। उसकी शाखाएँ प्रशाखाएँ एवं उपशाखाएँ विकसित हो गयी थीं। तत्कालीन जनभाषा और वैदिक ऋचाओं की भाषा के अन्तर में वृद्धि होती जा रही थी। वैदिक कर्मकाण्डों की जटिलता भी बढ़ गयी थी। उनका सम्यक् रीति से सम्पादन पूर्ण ज्ञाता ही कर सकता था। वैदिक काल के सरल कर्मकाण्ड का अध्ययन स्त्रियाँ १६-१७ वर्ष की विवाह अवस्था तक कर लेती थीं[1]। इस युग के विस्तृत कर्मकाण्ड के वृहत् साहित्य का अध्ययन तभी सम्भव था जब स्त्री २२ या २४ वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहती। देश की समृद्धि और आर्थिक उन्नति के साथ विलासिता की प्रवृत्ति बलवती हो रही थी। अतः स्त्रियों के उपनयन और शिक्षा पर आघात पहुँचा।

आर्यों की दस्यु-विजय के उपरान्त ही अनुलोम विवाह प्रचलित हो गये थे। इन अनार्य स्त्रियों की विद्यमानता ने नारी के पतन में योग दिया। अनार्य स्त्री संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव में धार्मिक प्रक्रियाओं में भाग लेने में असमर्थ थी। उसे धार्मिक प्रथाओं के लिए अवैधानिक घोषित कर दिया गया था, किन्तु आर्य अपनी विशेषप्रिय अनार्य पत्नी को ही यज्ञ में भी सहयोगिनी बनाना चाहता होगा। अतः इसके समाधान में समस्त स्त्री जाति को ही धार्मिक प्रक्रियाओं की अनाधिकारिणी घोषित कर दिया गया[2]। सूत्र काल तक आते-आते गण-राज्यों का सरल युग समाप्त हो चुका था। राज-दरबारों की शोभा और ऐश्वर्य में अभिवृद्धि हुई। राजाओं के अन्तःपुर के आकार और रानियों की संख्या में भी वृद्धि स्वाभाविक ही थी। अभिजातवर्ग ने उनका ही अनुकरण किया। बहु-विवाह की इस प्रचलित प्रथा के कारण स्त्रियों की स्थिति को बहुत आघात पहुँचा। यद्यपि विद्वान् स्त्रियों को धार्मिक विशेषाधिकारों से वंचित करने के पक्ष में थे, किन्तु उन्हें यज्ञादि धार्मिक प्रक्रियाओं की अनाधिकारिणी घोषित करने का मत समाज ने मान्य नहीं स्थिर किया। इस युग के प्रथम चरण में स्त्रियों ने वैदिक-शिक्षा में विशेषता प्राप्त की, किन्तु अधिकांश स्त्रियों के विवाह समय ही उपनयन की औपचारिकता का सम्पादन हो जाता था[3]।

महाकाव्यकाल : ५०० ई० पू०

महाभारतकाल तक स्त्रियों की शिक्षा व आध्यात्मिक उन्नति में क्रमशः

---

१. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २३, १९३८ बनारस

२. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २४३, १९३८ बनारस
राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १६६, १९५० बम्बई

३. अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इंडियन विमेन इन सोशल

ह्रास होने पर भी उनको समाज में प्रतिष्ठित स्थान उपलब्ध था[1]। नारीत्व का उच्चतम आदर्श समाज के समक्ष था। भारतीय मनोवृत्ति में दो भिन्न रूपों, प्रबल विरक्ति एवं उत्कट अनुरक्ति [illegible] प्रचलित हो गए। महाभारत में नारी के ये दो रूप स्पष्ट हैं :—एक ओर नारी को अत्यन्त गौरव और सम्मान की पात्री बताया गया, दूसरी ओर उन्हें व्यभिचारिणी, पाप और सब दोषों का मूल बताया गया है[2]।

इस काल में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। नैतिकता के मापदण्ड परिवर्तित हो गए थे। स्त्री के भी कई पति होते थे। स्त्री के लिए पातिव्रत ही सर्वोच्च धर्म, पूजा, उपासना एवं स्वर्गप्राप्ति का साधन था[3]। यद्यपि सिद्धान्त रूप से मनु द्वारा स्त्रियाँ धार्मिक प्रक्रियाओं व यज्ञादि में भाग लेने की अनधिकारिणी घोषित की गई थीं किन्तु रामायण और महाभारत दोनों में ही स्त्रियाँ उपासना, यज्ञादि में सहयोग प्रदान करती रहीं। रामायण में कौशल्या अकेले ही स्वस्ति यज्ञ करती हैं, तारा सावित्री यज्ञ करती हैं[4]।

बौद्धकाल

वैदिक-धर्म के विस्तृत कर्मकांड बाह्याडम्बर की जटिलता, तथाकथित पवित्रता एवं ऊंच-नीच की प्रतिक्रिया में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ। नारी, जो

---

१. हेमचन्द्र राय चौधरी—महाभारत एण्ड इट्स कल्चर, कल्चरल हैरिटेज आफ इंडिया भाग ११ पृ० १०३ कलकत्ता

२. 'कुलीन, रूपवती और जीवित पति वाली स्त्रियाँ मर्यादा में नहीं रहती यह उनका पहला दोष है। स्त्रियों से बढ़कर कोई पापी नहीं है, क्योंकि स्त्रियाँ सब दोषों का मूल हैं।'
अनु० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी—हिन्दी महाभारत : अनुशासन पर्व
'स्त्रियाँ लक्ष्मी स्वरूपिणी हैं अतः धनकामी व्यक्तियों को स्त्रियों का सत्कार करना चाहिए।'—वही—पृ० १९०
स्त्री को किसी भी अवस्था में स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए।
वही—पृ० १९०

३. स्त्रियों को कोई भी यज्ञ, क्रिया, श्राद्ध, उपवास आदि करने की न तो आवश्यकता ही है और न अधिकार ही है। अपने पति की सेवा करना ही उनका धर्म है। पति सेवा ही उसके लिए स्वर्ग का साधन है।
अनु० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी—हिन्दी महाभारत खंड ९
पृ० १८९-९०, १९३० इलाहाबाद

४. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन,
पृ० २३५ १९३८ बनारस
हारानुचन्द्र—सोशल लाइफ इन एंशियेन्ट इंडिया
चकलादार—कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया भाग ३, पृ० २०३ कलकत्ता

पुरुष के अत्याचारों के बोझ से दबी जा रही थी, शास्त्रकारों ने जिसे व्यक्तिगत आराधना का भी अधिकार नहीं दिया था, उसे भी बौद्धकाल में संवेदना का संदेश मिला[1]।

समग्र मानवता के उपासक बुद्ध ने इस सत्य पर बल दिया कि पुरुष के समान स्त्री भी अपने पूर्व जन्म के सद्-असद् कर्मों के फल भोगती है। उसे भविष्य के लिए अपने कर्मों पर ही निर्भर रहना चाहिए। पुत्र द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है इस कथन का उन्होंने विरोध किया, अतः पुत्र की तुलना में अत्यन्त दीन और दयनीय पुत्री की स्थिति में अन्तर हुआ। ब्राह्मणों के कर्मकाण्डों में केवल पुत्रवती सधवा ही भाग ले सकती थीं। बुद्ध द्वारा इस बात के खंडन से विधवाओं की हेय दशा में अन्तर आया। धर्मशास्त्रों ने स्त्रियों के लिए विवाह अनिवार्य माना था, किन्तु बौद्धधर्म में यह केवल एक श्रृंखला ही मानी गई। बौद्ध-धर्म का द्वार विवाहित, अविवाहित, विधवा, वंध्या, वेश्या और पतिता सभी के लिए उन्मुक्त था। दीक्षा ले लेने के उपरान्त उनके प्रति किसी प्रकार की अश्रद्धा अथवा अनादर की भावना नहीं रह जाती थी।

किन्तु यह एक विचित्र बात है कि यद्यपि बौद्ध धर्म ने अपने सर्वजन-हिताय वाले सिद्धान्त से नारी की स्थिति में सुधार किया, तो भी भिक्षु संस्थाओं में उनका स्थान अपेक्षाकृत हेय रहा[2]। उनके ऊपर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए। वयस्क एवं योग्य भिक्षुणी को भी अपने से लघु भिक्षु के समक्ष झुक कर नमस्कार करना पड़ता था। एक भिक्षुणी किसी भी परिस्थिति में किसी भिक्षु की अवज्ञा नहीं कर सकती थी। अर्धमासोपरान्त होने वाले उपास्था एवं अवेद के लिए भिक्षुणी को एक भिक्षु से ही निर्देश लेने पड़ते थे। वस्तुतः अनधिकारियों द्वारा दुरुपयोग के भय से पहले भगवान् बुद्ध भी स्त्रियों को संघ में दीक्षा देने के विरुद्ध थे। साथ ही प्राणीमात्र की एकता को मूलमन्त्र मानने के कारण उन्हें बौद्ध धर्म का द्वार स्त्रियों के लिए भी प्रशस्त करना पड़ा। किन्तु स्त्री पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न दोषों के निराकरण के लिए उन्हें इतने कड़े नियम बनाने पड़े[3]।

भगवान् बुद्ध द्वारा प्रचलित इस विराग-प्रधान धर्म में आत्मिक उन्नति के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लेने वाली नारियाँ ही प्रसिद्धि पा सकीं। पाँच सौ बाइस पदों की छोटी सी पुस्तक थेरीगाथा से तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इतिहासों के वृत्त से ज्ञात होता है कि नारी का पुनर्विवाह होता था। थेरीगाथा में वर्णित थेरियों के जीवन बौद्ध युग के समाज में नारी की हेय, करुण स्थिति से अवगत कराते हैं। नारी पत्नी अथवा गृह की रानी न होकर

---

१. रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० १५५, १९५६ दिल्ली

२. ए० एल० बाशम—द वंडर दैट वाज़ इंडिया, पृ० १७७, १९५४ लंदन

३. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २५३, १९५०

केवल विलास का उपकरण मात्र थी। सब परिजनों की सेवा-परिचर्या करके भी वह जीवन निर्वाह में अशक्य थी। वह उपेक्षा और अनादर के ही अंक में पलती थी। इन बौद्ध भिक्षुणियों में अधिकांश ने अपने यौवन के स्वर्णिम विहान में ही संसार के प्रलोभनों का परित्याग कर, तप एवं विरागमय जीवन को श्रेयष्कर समझा था। इस संबंध में दत्ता, अनुपमा सुमेधा और जयन्ती के नाम उल्लेखनीय हैं। समाज के सभी वर्गों की नारियों ने सर्वजन-सुलभ बौद्ध धर्म का आश्रय लेकर अपने दुखों को बिसराया। वैभव के स्वप्निल प्रांगण राजप्रसाद, शृंगार की रुनझुन से झंकरित वेश्यालय दारिद्रय के रौरव, और पारिवारिक प्रपीड़न से निष्कृति पाकर नारियों ने बौद्ध धर्म की शरण ली। सामाजिक दृष्टिविन्दु से अस्पृश्य नारियों को भी अभ्युत्थान का अवसर मिला[1]। बौद्ध धर्म तप और विराग पर अधिक बल देता है, अतः इसकी धार्मिक पुस्तक जातकों में स्त्री-निन्दा के अनेक कथन उपलब्ध हैं[2]। बौद्ध धर्म के संघों में नारी का प्रवेश युग की नैतिकता के लिए घातक सिद्ध हुआ, इसका सविस्तार वर्णन यहाँ अपेक्षित नहीं है।

जैन-काल

जिन भगवान् ने हिंसा दावानल में दग्ध विश्व के समस्त प्राणियों को अहिंसा व साम्य का उपदेश दिया। जैन मतावलम्बियों में नारी के माता रूप के लिए अपरिसीम श्रद्धा और आदर की भावना विद्यमान थी। उनके तीर्थकरों में उन्नीसवीं 'मल्लीनाथ' थी। उसके जीवनवृत्त से ज्ञात होता है कि उस समय भी उच्चवर्ग की नारी में शिक्षा का अभाव न था। जैन धर्म ने भी पातिव्रत तथा पत्नी की एकनिष्ठा को बहुत महत्त्व दिया। जैन-साहित्य में बहुत-सी भिक्षुणियों एवं श्राविकाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने जैन धर्म और साहित्य की उन्नति में क्रियात्मक योग दिया। स्थूलभद्र की सात बहिनें यक्षादि एवम् याकिनी महत्तरा की रचना महत्त्वपूर्ण है। जैन-काल की नारी में उत्सर्ग और कर्तव्य पालन की भावना विद्यमान थी। केवल साहित्यिक एवं धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं प्रत्युत् राज्य-नीति और प्रशासन में भी स्त्रियाँ निपुण थीं। राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय के

---

१. शकुन्तलाराव शास्त्री—विमेन इन वैदिक एज पृ० ९८, १९५४ बम्बई

२. 'स्त्रियाँ असाध्वी पापिनी होती हैं'

अनु० भदन्त आनन्द कौशल्यायन—जातक प्रथम खण्ड पृ० ३७०

असातमन्त्रजातकः

स्त्रियों में काय प्रगल्भता, वाक प्रगल्भता मन प्रगल्भता होती है।

अंडभूत जातक पृ० ३७८

स्त्रियाँ आए हुए क्रोध को रोक नहीं सकतीं, बड़े से बड़े उपकारों को भूल जाती हैं। पृ० ३८७

पुनर्विवाहप्रथा : पति और पुत्र तो बराबर मिल सकते हैं पर भाई नहीं।

उच्छत्रजातक पृ० ३९९

समय में अपने मृत पति के स्थान पर जक्कय बे नगर-खंड की अधिकारिणी नियुक्त की गई[1]।

किन्तु इतना सब होते हुए भी, अन्य धार्मिक मतों के समान जैन धर्म भी नारी को काम का साधन, वासना का मूल समझ कर उसे त्याज्य बताता था। हमारी भारतीय संस्कृति में गृहस्थ धर्म स्पृहणीय कहा गया है, किन्तु बौद्ध और जैन दोनों धर्मों का यही विश्वास था कि मोक्ष के लिए सन्यास आवश्यक है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार तो नारी भिक्षुणी हो सकती थी, किन्तु दिगम्बर पन्थ वालों ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि मुक्ति नारियों के लिए नहीं है। उनके लिए सीमित धर्म का पालन ही श्रेयस्कर है, जिससे वह पुरुष का जन्म प्राप्त कर सकें, क्योंकि मोक्ष-लाभ पुरुष-जन्म में ही संभव है[2]।

ईसवी शताब्दी से इस्लाम के साथ सम्पर्क तक नारी

नारी स्थिति संबंधी उपर्युक्त संक्षिप्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसवी सन् के प्रारंभ होने के समय, उपनयन के स्थगित हो जाने, विराग की भावना, बाल विवाह तथा विलासभावना के कारण नारी अपने पूर्व गौरव तथा मर्यादा से वंचित हो चुकी थी। ईसवी शताब्दी के प्रारंभिक काल में कन्याएँ १७-१८ वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रह सकती थीं। बहु विवाह तथा असवर्ण विवाह ने सामाजिक व्यवस्था को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। विवाह-अवस्था कम कर देने के कारण स्त्रियों की शिक्षा एवं संस्कृति को बहुत धक्का पहुँचा[3]। शारीरिक पवित्रता पर अधिक बल दिया गया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनसे आज्ञाकारिता की अपेक्षा की जाने लगी। सामाजिक जीवन में भी उनका आदरणीय स्थान नहीं रह गया था। विलासी समाज में नारी केवल काम एवं उपभोग के उपकरण रूप में थी। अन्तःपुर में सुन्दरी स्त्रियों की संख्या बढ़ रही थी। सौन्दर्य पर अधिकार-स्थापन की स्पृहा ने अन्तःपुर प्रथा को जन्म दे दिया था। वासना का उपकरण बनकर नारी स्वर्ण की शृङ्खलाओं की बन्दिनी-सी बन गई थी। उस समय के समाज में परदा प्रथा थी या नहीं इस पर स्वयं अर्थशास्त्र की ही विरोधी सम्मितियाँ हैं[4]। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार

---

१. उमाकान्त प्रेमानन्दशाह—ग्रेट विमेन इन जैनिज्म। ग्रेट विमेन आफ इंडिया में से : पृ० २८४, १९५३ कलकत्ता

२. रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १४१, १९५६ दिल्ली

३. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १८, १९३८ काशी

४. ए० एल० बाशम—द वन्डर दैट वाज इंडिया पृ० १७९-८०, १९५४ लंदन

तत्कालीन समाज में परदा उस रूप में नहीं था जिस रूप में आज है[१]। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार उच्च-वर्ग में स्त्रियों के पृथक्करण की प्रथा अवश्य थी किन्तु परदा प्रथा नहीं थी[२]। ईसवी शताब्दी के प्रारंभिक काल में कुछ विश्रुत स्त्री लेखिकाएँ भी हुईं। शील भट्टारिका आदि प्रसिद्ध साहित्यकार हुईं[३]। राजशेखर की पत्नी कवयित्री तथा आलोचिका थी[४]। शंकराचार्य एवं मंडन मिश्र के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ की मध्यस्थ होने के उपयुक्त मंडन मिश्र की पत्नी उभयभारती ही को माना गया[५]। किन्तु नवीं शताब्दी से उच्च-शिक्षा केवल उच्च वर्ग में ही सीमित रह गई। उनकी संख्या उत्तरोत्तर कम ही होती गई[६]। स्त्रियों में संगीत आदि ललित-कलाओं का प्रचार था। राज-प्रासादों में ललित-कलाओं के शिक्षण के लिए संगीत-शालाएँ होती थीं। कालिदास के युग में स्त्रियाँ नृत्य-कला से भी अभिज्ञ होती थीं[७]। धार्मिक क्षेत्र में उन्हें कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। स्त्रियों के समस्त संस्कार (विवाह को छोड़कर) अमंत्रक पहले ही होने लगे थे[८]। अब उपनयन की औपचारिकता का भी अन्त हो गया था। वैदिक-प्रक्रियाओं का विधिपूर्वक संपादन करने वाली, वैदिक ऋचाओं की रचनाकर्त्री नारी को मंत्रों के

---

१. 'शकुन्तला जब दुष्यन्त के दरबार में जाती है तब वह अवगुण्ठनवती है और अपने को पहचनवाने के लिए उसे अवगुंठन हटाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भी स्त्रियों के रहने का स्थान शुद्धांत अन्तःपुर अवरोध आदि कहलाता था। इन नामों में वही ध्वनि है, पर जिस रूप में पर्दा उत्तर भारत में आज है, वैसा ही पहले भी रहा होगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।'—भगवतशरण उपाध्याय कालिदासयुगीन भारत पृ० १२७-२८, १९५६ इलाहाबाद।

२. जवाहरलाल नेहरू—डिसकवरी आफ इंडिया, पृ० २८१, १९४५ कलकत्ता

३. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिंदू सिविलिजेशन, पृ० २८१, १९३८

४. ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ विमेन इन सोशल लाइफ, ग्रेड विमेन आफ इंडिया, पृ० ४२, १९५३

५. अतुलानन्द—द पोजीशन आफ विमेन इन एंशियंट इंडिया कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया भाग ३ में संग्रहीत पृ० २१८

६. ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ, ग्रेट विमेन आफ इंडिया में संग्रहीत पृ० ४१

७. भगवतशरण उपाध्याय—कालिदासयुगीन भारत, पृ० १४५, १९५५ इलाहाबाद

८. राधाकुमुद मुकर्जी—हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १६६, १९५० बम्बई

उच्चारण का भी अधिकार न रहा, और वह शूद्र के स्तर पर आ गई[१]। शासक वर्ग में स्त्रियों को प्रशासकीय और सैनिक शिक्षा दी जाती थी। राजपूत कुमारियाँ अस्त्र-शस्त्र संचालन में निपुण होती थीं, एवं अवसर पड़ने पर सैन्य संचालन व प्रशासन दोनों ही कार्य योग्यतापूर्वक कर सकती थीं। चालुक्यवंशीय विजयभट्टारिका, लक्ष्मीदेवी, अन्नादेवी, मलियादेवी के नाम उल्लेखनीय हैं[२]।

बौद्ध तथा जैन साहित्य में कहीं सती प्रथा का उल्लेख नहीं है। महाभारत में, जिसका वर्तमान रूप ईसा की तीसरी शताब्दी का है, केवल एक माद्री के सती होने का उदाहरण मिलता है[३]। प्राचीनकाल में सती प्रथा के उदाहरण न्यून हैं। मानव धर्म के विधायक मनु ने विधवा स्त्रियों के आचारों का निर्देश किया है। उन्होंने उसे तप, विराग, प्रार्थना एवं प्रायश्चितपूर्ण जीवन व्यतीत करना उचित बताया है। कालान्तर में पवित्रता और विराग की भावना के कारण नियोग एवं विधवा विवाह की प्रथा निन्दनीय समझी जाने लगी थी। कालिदास के युग में भी विधवाओं का जीवन निष्कासन, अपमान एवं वेदना का जीवन था। मांगलिक कार्यों में उनका सम्पर्क वर्जित था[४]। कालिदास के नाटकों में सती-प्रथा का उल्लेख मिलता है[५]। धर्मशास्त्र के प्रारम्भिक लेखक बालविधवा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखते थे। ६०० ईसवी से विधवा-विवाह की प्रथा समाप्त हो गयी। ११०० ई० से बाल-विधवा के विवाह का भी निषेध हो गया था[६]। ४०० ई० से संघर्षप्रिय क्षत्रिय-जाति में यह प्रथा अधिक प्रचलित हो गयी थी। मेधातिथि, विराट के अनुसार सती निकृष्ट कोटि का धर्म है[७]। अभाग्यवश उदार सुधारकों के द्वारा सती प्रथा का यह विरोध सफल न हो सका, तथा राजपूत जाति एवं उनके अनुकरण पर प्रतिष्ठा का चिन्ह समझ कर उच्च वर्ग में यह प्रथा लोकप्रिय हो गई।

---

१. राधाकुमुद और रमेशचन्द्र मजुमदार—द एज आफ इम्पीरियल यूनिटी सामाजिक जीवन : पृ० ५६४

२. अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ : ग्रेट विमेन आफ इंडिया : पृ० ४२-४३

३. सी वेंडर—विमेन इन एंशिएन्ट इंडिया पृ० ४६५, लंदन १९२५

४. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २३४, १९३८ बनारस

५. भगवतशरण उपाध्याय—कालिदासयुगीन भारत पृ० १२७, १९५५ इलाहाबाद

६. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १८१

७. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० १४५, १९३८ बनारस

अपकर्ष एवं पतन के इस युग में संपत्ति संबंधी अधिकारों के क्षेत्र में अवश्य प्रगति हुई। वैदिक-युग के पितृसत्ता-प्रधान परम्परा में सिद्धान्त रूप से दम्पति सम्पत्ति एवं गृह के सम्मिलित स्वामी थे, किन्तु स्त्री धन की सीमा संकीर्ण थी। विधवा को उत्तराधिकार नहीं था। विष्णु स्मृति (१०० ईसवी) में विधवा के उत्तराधिकार का समर्थन हुआ। विष्णु और याज्ञवल्क्य दोनों ने ही विधवा के उत्तराधिकार का पक्ष ग्रहण किया[१]। स्त्रीधन की परिभाषा हुई। स्मृतिकाल (६०० ईसवी) स्त्री धन का क्षेत्र विस्तृत हुआ। स्मृतिकारों ने विधवा के उत्तराधिकार की सार्वदेशिक स्वीकृति के लिए बल दिया। इसके मुख्य समर्थक बृहस्पति, प्रजापति और कात्यायन थे[२]। विज्ञानेश्वर ने स्त्री धन की व्यापकता पर बल दिया और विधवा के उत्तराधिकार के इतने प्रबल समर्थन के उपरान्त ११५० ई० में गुजरात और १२०० ई० में सम्पूर्ण भारत में विधवा का उत्तराधिकार मान्य हो गया। भाई के अभाव में बहिन का उत्तराधिकार पहले से ही मान्य था।

सच तो यह है कि ६०० ईसवी से ही नारी की सामान्य स्थिति में अधिकाधिक पतन प्रारम्भ हो गया था। राजाओं के अन्तःपुर सुन्दर स्त्रियों से परिपूर्ण थे। वासना और विलास की समाजमें प्रधानता होती जा रही थी। राजपूतों में तो नारी विजय की अनुगामिनी ही बन गयी थी।

संस्कृतकाव्य की नारी भावना

कालिदास, अश्वघोष, माघ आदि संस्कृत काव्यकारों ने नारी के शास्त्रीय आदर्श को ही मान्य स्वीकार किया है। अतः उनकी नारी में अनन्त ममता, त्याग, वात्सल्य, धरित्री-सी सहनशीलता, निस्पृह सेवाभाव और मौन आज्ञाकारिता आदि विशेषताओं का ही विकास हुआ है। नारी का सत्तापूर्ण रूप कहीं दृष्टिगत नहीं होता। इन काव्यों में नारी सुकुमार, परिश्रमी, कोमल और पराधीन है। उसकी चरम महत्ता गृहिणी रूप में, और मातृत्व के विकास में ही है। वह प्रेम करने के लिए बनी है। नारी कवयित्री, दार्शनिक दिग्गज, विदुषी ब्रह्मवादिनी हो सकती है। किन्तु अपने युग की प्रतिक्रियावादी परम्पराओं में पोषित न होने के कारण संस्कृत काव्यकारों ने भी कहीं उसका सभा में वाक्चातुर्य,

---

१. ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ : ग्रेट विमेन आफ इण्डिया : पृ० ३६, १९५३ कलकत्ता

२. ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ : ग्रेट विमेन आफ इण्डिया : पृ० ४५, कलकत्ता

प्रतिभा-प्रदर्शन नहीं दिखलाया है[1]। कालिदास की नारी में सहिष्णुता की सजीव भावना है; वह पत्नी, मंत्रिणी एकान्त की सखी और प्रिय शिष्या है[2]।

मन्त्रयान, वज्रयान और सहजयान मेंनारी

अनुदान और जागीर की उपलब्धि से धन का केन्द्र बन जाने से बौद्ध मठों में कादम्ब और कामिनी का उन्मुक्त विलास होने लगा था। त्याग और तप प्रधान धर्म की वास्तविकता को भूल कर सन्यासी वर्ग, भोग को स्पृहणीय समझ कर, मंत्राचार और योग की आड़ में सुख भोगने लगा[3]। वैष्णवों और हिन्दी साहित्य पर भी सहजिया सम्प्रदाय ने अपना प्रभाव प्रदर्शित किया[4]। वज्रयान ने शून्यता को प्रज्ञा और करुणा को उपाय की संज्ञा दे दी। उपाय का प्रतीक स्वयं साधक होता और प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व कोई स्त्री करती जो साधक की महामुद्रा कहलाती।

मानव सभ्यता के स्वर्ण-विहान में भारतीय नारी के जीवन में सुख और शान्ति का आलोक बिखरा हुआ था। वैदिक युग की नारी को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकार उपलब्ध थे। धार्मिक प्रक्रियाओं और कार्यों की विधात्री स्वयं नारी ही थी। ब्रह्मज्ञान द्वारा पराविद्या की उपलब्धि कर

---

१. "Her claim to recognition lies through her service of her lord and through her being the mother of a good son, wise or valient like Rama, Shanker, Chaitanya, on the heroic Bharat as the case may be. This is the attitude even of romantic love stories."
शिवप्रसाद भट्टाचार्य—'ग्रेट विमेन इन संस्कृत क्लासिज्म' पृ० २५२
ग्रेट विमेन आफ इंडिया में संग्रहीत

२. 'गृहिणी सचिव : सखीमित्र, प्रिय, शिष्या ललिते कला विधौ'
भगवतशरण उपाध्याय—कालिदास और उनका युग
पृ० ८१, १९५५ इलाहाबाद

३. हीन से महान्, महान् से मंत्र, और मंत्र से बज्र तथा बज्र से सहज यह प्रक्रिया ही बताती है कि संयम और तपस्या से लोग आजिज आ गए थे, और वे धीरे-धीरे भोगवाद का समर्थन ढूंढ रहे थे।
रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० १९३,
१९५६ दिल्ली

४. सहजिया सम्प्रदाय केवल बौद्धों तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि यह वैष्णव धर्म में भी आया, और वैष्णव धर्म में परकीयावाद तथा अन्य विशेषताएँ उसी की देन हैं।
रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० १९५

अविवाहित रह कर आध्यात्मिक हित-साधन भी कर सकती थी। वस्तुतः वह गृह-कक्ष की शोभा, विलास का उपकरण मात्र न होकर सुख-दुख की समभागिनी पत्नी थी। परवर्ती युग की नारी के समान वह अशक्त और परमुखापेक्षी न होकर व्यक्तित्वमयी थी। जैसा कि इसी अध्याय में बताया जा चुका है, नारी को अपना जीवन साथी निर्वाचित करने का अधिकार उपलब्ध था। उपनयन के उपरान्त वेदों का अध्ययन कर परिपक्व बुद्धि व संतुलित दृष्टिकोण को लेकर वह अपने गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ करती। नव-गृह में आदर और मंगल-कामनाएँ उसका स्वागत करतीं, और वह पति के साथ गृह की सम्मिलित स्वामित्व प्राप्त करती। युग ने करवट ली, इतिहास के पृष्ठों पर विभिन्न जातियों के उत्कर्ष-अपकर्ष की कहानी लिख गयी। इन परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों से उद्भूत कारणों-अनार्यों का सम्पर्क, आर्थिक समृद्धि शिक्षा का अभाव, और उपनयन का स्थगित हो जाना—आदि...ने उसकी प्रगति में अवरोध प्रस्तुत किए। अवरोध प्रथा के आरम्भ, शिक्षा के अभाव ने कोमल नारी को पराश्रयी बना दिया। उसकी सहज समर्पण और सेवा की भावना को दासत्व की स्वीकृति मानकर उसे जीवन किसी भी अवस्था में स्वतंत्र रहने का निषेध किया। ज्ञान के आलोक के अभाव में जीवन के कंकरीले-पथरीले मार्ग, ऊँची-नीची पगडंडियों पर जब उसके शृंखला-बद्ध पग डगमगाए, अभिभावक और संरक्षक कही जाने वाली पुरुष जाति ने उससे संवेदना के दो शब्द भी नहीं कहे। प्रत्युत् उसकी स्वभावगत् सुकुमारता को दुर्बलता की संज्ञा दी। शिक्षा और संस्कृति के अभाव में नारी में स्वयं ही हीनता की भावना ने जड़ पकड़ ली थी। पुत्री-जन्म दहेज-प्रथा, विवाह विषयक अन्य कठिनाइयों के कारण एक अभिशाप था। विवेकशील कवि अब भी यही मत रखते थे 'कन्या कुलस्य जीवितम्'। पुरुष के अत्याचारों, सामाजिक प्रतिबन्धों के भार से दबी हुई नारी का स्थान केवल वासना के एक उपकरण के रूप में था। ६०० ईसवी में पूरे भारतीय समाज के ही चरित्र में पतन स्पष्ट दृष्टिगत होने लगा था। राजनीतिक सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि और वैभव के उत्कर्ष के होते हुए भी समाज का कोई आदर्श नहीं रह गया था। नैतिकता के बन्धन शिथिल हो गए थे। अमर्यादित समाज के वैभव-विलासमय वातावरण में नारी के प्रति दृष्टि-कोण में विलासिता की प्रधानता स्वाभाविक ही था।

: २ :

आलोच्यकालीन जीवन और नारी

इस्लाम के आक्रमण-काल का भारत

पाँच शताब्दियों से अधिक तोरमण से महमूद गज़नवी के आक्रमण तक भारत वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था। शांति और सुरक्षा की मादक क्रोड़ में स्वभावतः ही भारतीय जनसाधारण में निश्चिन्त अकर्मण्यता की भावना व्याप्त हो गई थी। आपत्तिकाल में विष्णु-पुराण (१०० ई०) में समग्र भारतवर्ष की अखण्डता की जो महिमा गाई गई थी उसे भारतीयों ने विस्मृत कर दिया था। अन्य देशों के साथ विचारों के आदान-प्रदान न होने के कारण वाह्य आक्रमणों के अभाव में भारतीयों में संकीर्णता, अनुदारता तथा मिथ्याभिमान की भावना आ गई थी। वाह्य संसार की गतिविधि से अपरिचित भारत के विकास की गति अवरुद्ध हो गई थी। आन्तरिक सुख और समृद्धि के मध्य विलास की प्रवृत्ति को मान्यता मिल रही थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जीवन के सभी क्षेत्रों में ६०० ईसवी से पतन और अपकर्ष का क्रम चल रहा था।

ऐसे अगतिशील समाज में पूर्वयुग की मान्यताओं का अक्षरशः पालन होने लगा था। छुआछूत और कर्मकाण्ड लोकप्रिय हो रहे थे। समाज में नैतिकता के मान उपेक्षणीय थे। धर्म के क्षेत्र में गुह्य समाज की उपासना-विधि से पंचम-कार ग्राह्य थे। उनके अनुसार नारी विलास-कामनापूर्ति का साधन रह गई थी। धर्म का पुनरुद्धार कर शंकराचार्य (८ वीं शताब्दी) द्वारा स्थापित उपासना के महत् केन्द्र अपनी अतिशय समृद्धि में विलास और व्यभिचार का केन्द्र बन गए थे। देवदासी प्रथा की धार्मिक मान्यता के कारण देव मन्दिर नूपुरों की रुनझुन में मधुर विलास की तन्द्रा लेकर भक्ति का उपहास कर रहे थे। क्षेमेन्द्र (११ वीं शताब्दी) की कृतियाँ 'समय-मात्रिका' और कुट्टनी-मित्तम, तत्कालीन समाज के नैतिक अपकर्ष और भोग-परक मनोवृत्ति का आभास देती हैं। पाँच शताब्दियों में एकत्रित धनराशि से भारत समृद्ध और सम्पन्न था किन्तु समाज में आर्थिक असमानता विद्यमान थी। भारत के समस्त राज्य अर्ध-सैनिक आधार पर संगठित थे। राजनीतिक दृष्टि से देश में विघटन था। व्यक्तिवाद की भावना से पूर्ण, ब्रह्म की उपासना करने वाले, खण्ड राज्यों के स्वामी वाह्य शक्ति का सामूहिक प्रति-रोध करने में असमर्थ थे। योरुप के मध्ययुगीन सामन्तों के समान इनके जीवन का मुख्य विषय युद्ध और प्रेम था। बलशाली, शक्ति प्रयोग द्वारा अपनी अभीप्सित सुन्दरी को हस्तगत कर लेता था। उस समय समग्र आर्यावर्त की स्पृह-

णाय भावना संघशक्ति का अभाव था।

साहित्य के क्षेत्र में भी भावों की मार्मिकता का स्थान भाषा की कृत्रिमता, पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने ले लिया था। वाण के काव्य में भी पूर्ववर्त्ती कवियों के समान भावों का परिष्कार नहीं दृष्टिगत होता। युग की मुख्य प्रवृत्ति विलासिता, खण्ड राज्यों के उत्तरदायित्वहीन नरेशों के राजमन्दिरों की शृंगार-रस-मयी काम-लीला तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिम्बित हुई है। भवन-निर्माण कला में भी स्त्रियों की अनावृत प्रतिमाओं का निर्माण विलासिता की प्रवृत्ति की ओर संकेत कर रही थी।

इन्हीं परिस्थितियों के मध्य भारत का इस्लाम के साथ संपर्क हुआ। अरब और भारत के व्यापारिक संबंध बहुत पहले से ही थे। ७१२ ई० में पहला जहाजी बेड़ा आया, पुनः ७१२ व ७२५ में क्रमशः मुहम्मद बिन कासिम और उम्म्या द्वारा आक्रमण हुए। नागभट्ट प्रथम द्वारा ७२६ ई० में अपने नवीन प्रयास में पराजित होने पर, कूच विजय की चेष्टा को छोड़ कर, २७५ वर्ष तक भारत इस्लाम के आक्रमणों से सुरक्षित रहा। इन तीन शतकों में भारतवासी पुनः निश्चिन्त विलास में व्यस्त हो गए। खण्डराज्यों के व्यक्तिगत वैमनस्य शत्रुता में परिणत हो रहे थे। उनकी ईर्ष्या-जर्जर दृष्टि भारत के क्षितिज पर छाए हुए प्रलय-पयोदों को देखने में असमर्थ रही। फलतः, इस्लामी राज्यशक्ति के संरक्षक बन कर, महमूद ने काफिरों के देश को पदाक्रान्त किया। उनकी अन्ध धार्मिकता ने देव मन्दिरों में स्थापित धर्म-भावना के प्रतीक बुतों को ध्वस्त किया। प्लेग, दुर्भिक्ष के समान यह आक्रमण भी दैवी आपदाओं के रूप में आने लगे थे। ११९१ को तराइन के मैदान में भारतीय स्वतंत्रता आलोक की अन्तिम रश्मि भी गहन-कालिमा के अंचल में प्रच्छन्न हो गई। इसके बाद का भारतीय इतिहास इस्लामी शक्ति और भारतीय नरेशों के संघर्ष तथा उभय-पक्ष की विजयाविजय का इतिहास है। इतिहास के इस सामान्य पक्ष की पुनरावृत्ति करना यहाँ आवश्यक नहीं प्रतीत होता है।

आलोच्यकाल का राजनीतिक जीवन : १५०० से १७५० ई०

आलोच्यकाल के प्रारम्भ में दिल्ली के साम्राज्य पर लोदी वंश का शासन था। १५२६ में तैमूर के वंशज जलालुद्दीन बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित कर मुगल-साम्राज्य की स्थापना की। उसका पुत्र हुमायूं (१५३०–४०) शेर खां द्वारा पराजित हुआ, और १५४०–५५ ई० तक दिल्ली सूरवंश के आधिपत्य में रही। १५५६ में पुनः जय-पराजय का चक्र चला, और विजयलक्ष्मी ने मुग़लवंशी जलालुद्दीन अकबर (१५५६–१६०५) का वरण किया। [illegible] की शेष शताब्दी मुगल साम्राज्य के उत्कर्ष और अपकर्ष की साक्षी हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्ययुग का राजनीतिक जीवन वस्तुतः मुगल शासन-काल की ही व्याख्या होगी। यद्यपि दिल्ली में केन्द्रीय शक्ति मुगलों की थी, किन्तु इतस्ततः बिखरे हुए अन्य राज्य भी थे। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अफगानों

के स्वतन्त्र राज्य थे। राजस्थान तथा मध्यभारत में राजपूतों के छोटे-बड़े स्वतन्त्र राज्य थे। गुजरात, सिन्ध, दक्षिण में खानदेश, अहमदनगर, बीदर बरार, बीजापुर एवं गोलकुण्डा में मुसलमानों के राज्य थे। मध्यप्रदेश में गोंडवाना का शासक हिन्दू था, दक्षिण में मराठों का अभ्युदय हो रहा था।

स्त्रियों का सहयोग

(मुग़लों से पूर्व सुलतानों के शासन में उनकी बेग़मों का कोई स्थान न था। उनकी राजनीति नारी के निर्देश एवं परामर्श की अपेक्षा नहीं करती थी। रजियाबेग़म उनकी इस नीति का अपवाद थी[1] (मुगल मध्य एशिया के निवासी थे। उनके पशुचारण के समाज में स्त्रियों का पूर्ण पृथक्करण अथवा पर्दा सम्भव न था। वे शांति और युद्ध की प्रत्येक समस्या से पुरुषों की ही भांति अभिज्ञ थीं। फरगना के राज्य को हस्तगत करने में बाबर को अपनी मां और बहिन के परामर्श से बहुत लाभ हुआ था। मुग़ल सम्राट अपने परिवार की वयस्का महिलाओं और अपनी बहिनों के प्रति अत्यन्त आदर और श्रद्धा का भाव रखते थे। हुमायूं ने अपने परिवार की स्त्रियों से मिलने के तीन दिवस नियत किए थे। बादशाह उनसे राजनीतिक विषयों पर भी परामर्श लेता था[2]।) अकबर के समय भी सलीमा बेग़म, हमीदाबानू और माहम अनग का राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रहा। पूर्ववर्ती सम्राट् अपनी सहृदयता से गृह की महिलाओं की भावना का आदर करते थे। परवर्ती सम्राटों की प्रवृत्ति में अन्तर आ गया। जहांगीर (१६०५–१२२७) विलास और वैभव की रंगीनी में अपने को आत्म-विस्मृत कर देना चाहता था। वह स्वयं मदिरा की मादकता में पड़ा रहता था, जबकि साम्राज्य का शासन अपने सौन्दर्य द्वारा उसके हृदय को विजय कर लेने वाली नूरजहां करती थी[3]।

---

१. Although the Albari Turks had accepted a woman as their sovereign, yet ordinarily the fair sex was not expected to meddle with politics. During the Turkish and Afgan period woman exercised but little influence in politics.

रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिस एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया पृ० १४८, १९३६ इलाहाबाद

२. "In the pre-Mughal period Haram played little part in public affairs, but after the arrival of Mughal it became a power in the state".

रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, पृ० १४८

३. **आर० सी० मजूमदार एण्ड अदर्स—ऐन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ४६६, १९५३ लन्दन**

शाहजहां-काल (१६२८–१६५७) में उसकी पुत्री जहांनारा का उसकी नीति-निर्धारण में भाग रहा। औरंगजेब (१६५८–१७०७) अपनी बहिन रोशन-आरा के मत को महत्त्व देता था। परवर्ती मुगल शासक स्वयं ही सामन्तों के हाथों की कठपुतली बने हुए थे। वह राजशक्ति-भार को वहन करने में असमर्थ थे। परवर्ती युग में सम्राटों का शासन अल्पकालीन और नाममात्र का होता था। अतः उसमें सरदारों, अमीरों का ही प्रभुत्व था। उनकी बेगमों में कोई ऐसी प्रभावशाली व राजनीतिज्ञा नहीं हुई जो परिस्थितियों की अनिश्चितता पर विजय पा सकतीं। इस वातावरण के मध्य स्त्रियों के सहयोग का कोई प्रश्न ही न था।

राजनीति को खिलौना समझने वाली मुस्लिम महिलाएँ

इन नारियों में नूरजहाँ का नाम अग्रगण्य है। इसने मुगल-राजनीतिक जीवन में अपने प्रवेश से एक क्रान्ति प्रस्तुत की। फारस के एक सामान्य व्यापारी की पुत्री अपने विश्वमोहिन सौन्दर्य से जहांगीर की पत्नी बनी, तथा सूक्ष्मदर्शिता और प्रत्युत्पन्नमति से साम्राज्य की भाग्यविधात्री[1]। शासन कार्य का नियन्त्रण अपने हाथ में रख कर उसने अपने समर्थकों के प्रबल दल का संगठन किया। कालान्तर में उसे सभी अधिकार मिल गए, केवल नाममात्र को ही जहांगीर सम्राट् रह गया था[2]। नूरजहाँ प्रथम और अन्तिम मुगल स्त्री थी, जिनका नाम सिक्कों पर अंकित हुआ था।

सोलहवें शतक की मुस्लिम नारियों में चाँदबीबी अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। वह अहमदनगर के हुसैनशाह की पुत्री और बीजापुर के अली आदिलशाह की पत्नी थी। पति के जीवन काल में ही वह उनकी परामर्शदात्री थी[3]। पति की हत्या के उपरांत इब्राहीम आदिल की संरक्षिका नियुक्त की गई। अपने जीवन-काल में ही चांदबीबी को शासन एवं युद्ध संबंधी अनेक विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। अपने जीवन के इन उतार चढ़ावों में वह सदैव जागरूक और प्रयत्न-शील रही। अपने ही एक दास के विश्वासघात के कारण मुगल सेना-नायकों से लोहा लेने वाली वीरनारी का जीवन असफलता की करुण गाथा मात्र रह गया[4]।

साहिबा जी (सत्रहवीं शती) शाहजहां के दरबार के एक अमीर की पुत्री और काबुल के गवर्नर अमीर खां की स्त्री थी। अपने पति की मृत्यु के उपरांत नया गवर्नर पहुंचने के समय तक उसने अफगानों के समान दुर्दान्त और

१. जदुनाथ सरकार—नूरजहाँ एण्ड जहांगीर : स्टडीज फ्राम इंडिया : पृ० ४, १९१९ कलकत्ता

२. बर्नियर—ट्रैवल्स इन मुगल इण्डिया, कांस्टेबल सम्पादित पृ० २७४-२७५

३. मुहम्मद वाहिद मिर्जा—ग्रेट मुस्लिम विमेन आफ इंडिया, ग्रेट विमेन आफ इंडिया में संकलित पृ० ३९१, १९५३ कलकत्ता

४. एस० आर० शर्मा—क्रिसेंट इन इंडिया पृ० ३६७, १९३७ बम्बई

संघर्षप्रिय जाति पर अपनी राजनीतिज्ञता से नियंत्रण रखते हुए शासन किया[१]।

राजनीति के क्षेत्र में हिन्दू नारी

राजनीतिक पराभव के कारण सांस्कृतिक दृष्टिबिन्दु से हिन्दू जाति अपकर्ष के गर्त में पड़ी थी। किन्तु उनकी महिलाओं में प्रांजल आदर्श, शासन की योग्यता, युद्ध संचालन की क्षमता विद्यमान थी। उनमें कर्तव्य और शौर्य के लिए मोह था। मराठा जाति के उन्नायक शिवा जी की जननी जीजाबाई (१५९४—१६७६) कुशल राजनीतिज्ञा, प्रभावशाली शासिका के रूप में हमारे समक्ष नहीं आती। किन्तु महावीर शिवा को राजनीतिक सफलता का मूलमंत्र देने वाली जीजाबाई ही थी। जीजाबाई के स्नेहमय, किन्तु सतर्क निरीक्षण में ही शिवा के चरित्र का निर्माण हुआ। शिवा ने शासन के सिद्धांत शाह जी की पूना की जागीर की प्रबन्धक जीजाबाई ही से सीखे थे[२]। राजा होने पर भी वही शिवा को राजनीतिकविषयों पर परामर्श देती, और अपनी सूक्ष्मदृष्टि से उसे निर्देश देती थीं।

ताराबाई शिवा जी के पुत्र राजाराम की पत्नी थी। उसमें प्रतिभा और प्रशासकीय क्षमता थी। उसने राजनीति तथा युद्ध दोनों में ही प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया था। उसके प्रयास के कारण राजाराम की मृत्यु के सात वर्ष उपरांत तक औरंगजेब जैसा प्रभावशाली शासक भी दक्षिण में साम्राज्य की स्थापना न कर सका[3]।

गोंडवाने के मांडलिक साम्राज्य की स्वामिनी रानी दुर्गावती केवल जननी-जन्मभूमि हित आत्मोत्सर्ग करने वाली वीरांगना ही नहीं थी, प्रत्युत शासन और राजनीति में भी निपुण थी। पति की मृत्यु के बाद उसने साहस और निपुणता से शासन किया। आसफ खां के आक्रमण का वीरता से प्रतिरोध कर उसने मुगल आक्रमणकारियों को हराया[४]। अपने संरक्षण-काल के १५, १६ वर्ष उपरान्त इस वीर शासिका ने शत्रु द्वारा अपमान के भय से स्वयं तलवार द्वारा जीवनान्त कर लिया। मेवाड़ की रानी कर्णावती ने भी अपने पुत्र के कुप्रबन्ध के दोषों को दूर करने का प्रयास किया था। सुल्तान बहादुरशाह द्वारा आक्रमण करने पर राजपूत-स्वदेशाभिमान से प्रेरित हो कर इस

---

१. जदुनाथ सरकार—स्टडीज इन मुगल इंडिया पृ० ११५, १९१८ कलकत्ता; मुहम्मद वाहिद मिर्जा—ग्रेट मुस्लिम विमेन आफ इंडिया पृ० ३९४

२. कमलाबाई देशपाण्डे—ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र, पृ० ३५७ ग्रेट विमेन आफ इंडिया से संकलित

३. कमलाबाई देशपाण्डे—ग्रेट हिन्दू विमेन इन महाराष्ट्र पृ० ३५८, १९५३ कलकत्ता

४. अबुलफजल—आइनेअकबरी : ब्लोचमेन द्वारा अनुवादितः भाग १, पृ० ४१९

वीर नारी ने उसका सामना किया। उसने बहादुरशाह के विरोध में राखी भेज कर हुमायूं द्वारा सैनिक सहायता मांगी थी, अन्त में १५३५ में जौहर द्वारा कर्णावती ने प्राणोत्सर्ग कर दिया।

अहल्याबाई भी (१७१५-९५) कुशल राजनीतिज्ञा एवं प्रशासिका थी। अपने पति की मृत्यु के उपरान्त मालोराव की सरक्षिका के रूप में वास्तविक शासिका वही थी। उसकी चरित्र-विषयक समीक्षा करते हुए कहा जा सकता है कि अपने सीमित क्षेत्र में वह अत्यन्त आदर्श एवं पवित्र शासक थी[1]। आलोच्य युग के राजनीतिक जीवन में महिलाओं का सहयोग और प्रभाव बराबर रहा। मुगलकाल में यद्यपि नारी को सिंहासनारोहण का अधिकार न था किन्तु वह बराबर राजनीति को प्रभावित करती रही[2]। अपने सौन्दर्य एवं अधिकारपूर्ण व्यक्तित्व के बल पर नूरजहां ने परोक्ष रूप से शासन भी किया। उसके विवरण से यह स्पष्ट है कि गृह-जीवन में पुरुष की वासना के साधनमात्र नारी में राजनीतिक दांव-पेंचों के संचालन की क्षमता थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों में राजनीति और शासन में नारी ने केवल भाग ही नहीं लिया, प्रत्युत पुरुष से कहीं अधिक योग्यता, क्षमता और कौशल दिखलाया। नूरजहाँ, साहिबाजी, अहल्याबाई, दुर्गावती, जीजाबाई इत्यादि राजनीतिज्ञा और साहसी नारियों के विवरण से यह स्वयंसिद्ध है कि तत्कालीन समाज में उच्चवर्ग में नारी को प्रशासकीय एवं अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा अवश्य मिलती थी।

आलोच्यकाल का आर्थिक जीवन : १५०० से १७५० ई०

तत्कालीन जीवन में सामान्यतः ऐश्वर्य व वैभव का उत्कर्ष हुआ था, आन्तरिक शान्ति के कारण धन की अभिवृद्धि हुई। परन्तु वस्तुतः समाज में धन की घोर असमानता और विषमता विद्यमान थी[3]। एक ओर राजा और अभिजात वर्ग वैभव एवं विलास की दोला पर तरंगित होते, उत्कृष्ट सामग्रियों, उपकरणों का उपभोग करते, हीरे और मोतियों की दैदीप्यमान प्रभा नयनों को चकाचौंध करती थी। दूसरी ओर निम्न वर्ग का जीवन की आवश्यकताओं के चरम संघर्ष की कहानी थी। तब भी निम्नवर्ग में निरीह सन्तोष की विवशतापूर्ण भावना थी।

---

१. आर० सी० मजूमदार और एच० सी० राय चौधरी तथा अन्य—एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० ६७९-८०, १९५३ लंदन

२. "Although the Mughal did not recognise the right of woman to sovereign power, they were willing to allow them considerable influence in political matters".

रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, पृ० १४८, १९३६ इलाहाबाद

३. आर० सी० मजूमदार—एण्ड अदरस—एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ५६७, १९५३ लंदन

वर्ण-व्यवस्था के नियम, जो अपने निर्माणकाल में व्यवहारिक की अपेक्षा शास्त्रीय अधिक थे, अत्यन्त कठोरता से पाले जाते थे। एक श्रमिक के पुत्र को इच्छा अथवा अनिच्छा से अपने पिता के व्यवसाय का ही अनुकरण करना पड़ता था[१]।

भारत एक कृषि-प्रधान देश है। उसकी अधिकांश जनसंख्या उस समय भी कृषि द्वारा ही जीवनयापन करती थी। छोटे-छोटे ग्रामों में अधिकांश निवासी अपनी परिमित आवश्यकताओं एवं साधनों सहित निवास करते थे। ग्राम-जीवन इच्छित एवं सामंजस्यपूर्ण सहयोग पर आधारित था। प्रत्येक व्यक्ति का एक निश्चित कार्य होता था। स्त्रियां खेत के कार्य के परिश्रम में सहयोग प्रदान करतीं और कृषि के पशुओं एवं घर की देखभाल करती थीं। भारतीय ग्राम अपने में ही सीमित इकाई थे। कुम्भकार, चर्मकार, रजक, ज्योतिषी, वैद्य और ग्वाला सभी को मिला कर वह अपने में ही पूर्ण थे। खेत में उत्पन्न वस्तुओं के आधार पर छोटे-छोटे घरेलू धंधे भी थे, उदाहरणार्थ टोकरी और रस्सी बनाना, भेड़ों की ऊन के द्वारा कम्बल आदि बुनना, इत्र एवं तेल खींचना आदि। नियमित मेलों से ग्रामवासी अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को क्रय कर लेते थे। इनके पारस्परिक मनोमालिन्य एवं मतभेदों का निर्णय ग्रामपंचायत करती थी[२]।

मुसलमानों के आगमन से भारत की आर्थिक प्रणाली में कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ, क्योंकि वह अपने साथ कोई आर्थिक अथवा राजनीतिक संगठन नहीं लाए थे। धार्मिक क्षेत्र में समानता को स्वीकार करते हुए भी उनमें दो वर्ग थे, और उनका दृष्टिकोण सामन्ती था[३]। उनके भवनों में शिल्प की उत्कृष्टता का साक्ष्य देती हुई कलाकृतियों के निर्माणकर्ता शिल्पकार भारतीय ही थे। आर्थिक-दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज को ६ भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

१. प्रथम श्रेणी में राजा, महाराज तथा सम्राट के मंसबदार।
२. शाही सेना, तथा शाही शासन विभाग के मध्यम वर्ग के पदाधिकारी।
३. तीसरी श्रेणी के राजकर्मचारी जिनमें विभिन्न श्रेणियों के सैनिक चपरासी, हरकारे, चौकीदार, भिश्ती आदि हैं।
   उस समय के कम आय वाले अध्यापक भी तृतीय के अन्तर्गत आते हैं।
४. व्यापारियों के दो वर्ग, धनी और निर्धन।
५. कई श्रेणियों वाले कारीगर, ऊनी, रेशमी कपड़ों एवं ज़री का कार्य करने

---

१. पेल्सबर्ट—जहांगीर्स इंडिया, स० मोरलैन्ड पृ० ६०, कैम्ब्रिज १९३५
२. के० एम० अशरफ—लाइफ एण्ड कन्डीसन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान रायल एशियाटिक सोसाइटी का जरनल पृ० १९७, १९३५
३. जवाहरलाल नेहरू—डिस्कवरी आफ इंडिया पृ० ३१२, १९४५ कलकत्ता

वाले, भवन निर्माण कला में निपुण इंजीनियर आदि।

७. हकीमों के दो वर्ग।

८. बढ़ई, सोनार, लोहार, चर्मकार, सामान्य राज जुलाहा।

९. कृषक वर्ग।

वैभव की स्वर्णिम आभा, शिल्पकला की उत्कृष्ट कलाकृतियों के निर्माण संगीत तथा ललितकलाओं के प्रश्रय के लिए मुगल शासनकाल को स्वर्ण युग की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। किन्तु सामान्य जन के जीवन में कभी हर्ष और आह्लाद का बसन्त नहीं आया। अल्पसंख्यक, किन्तु अत्यधिक धनी उच्च-वर्ग था, जो अत्यन्त अपव्ययी था, उसके सुख और विलास की सीमा न थी। इसके अतिरिक्त एक मितव्ययी मध्यमवर्ग तथा बहुसंख्यक निम्नवर्ग था।

मध्ययुगीन आर्थिक जीवन में नारी का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान न था। निम्नवर्ग की नारी पति के साथ क्षेत्र में परिश्रम करती तथा अन्य सहायक धन्धे करती थीं। वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बिनी हो सकती थीं। उच्चवर्ग की नारी के लिए जीविकोपार्जन का कोई साधन न था और न आवश्यकता ही थी। व्यवसाय के रूप में संगीत केवल वेश्याएं ही सीखती थीं। वस्तुतः आलोच्य-युग की नारी की कोई आर्थिक स्थिति नहीं थी। वह सम्पूर्णतः पुरुष के ही अधीन थी, और उसी की मुखापेक्षी थी। आलोच्य युग में साधारणतः नारी कोई स्वतंत्र व्यवसाय आदि नहीं करती थीं। हां, निम्नवर्ग की नारी को अवश्य राजमहलों के विस्तृत अन्तःपुरों में ताम्बूल-वाहिनी, छत्रवाहिनी, पुष्पवाहिनी आदि के रूप में कार्य मिल जाता था। बहुधा, राजमहल के विलासपूर्ण वातावरण में उन्हें अपने चरित्र की रक्षा करना कठिन होता होगा[1]। अभाग्य अथवा आपत्ति में पड़ी हुई उच्च-वर्ग की नारी अपना जीवन-निर्वाह किस प्रकार करती होगी, इतिहासकार इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डालते है। कौटिल्य के काल में दुर्दैव-बाधित होने पर अभिजात वर्ग की नारी भी कपड़ा बुनने आदि का कार्य करती थी[2]। संभव है आलोच्यकाल में भी नारी को आवश्यकता पड़ने पर शिल्प का ही अवलम्बन लेकर जीविका उपार्जन करनी पड़ती हो। आपत्ति काल में चरखा तो नारी का आर्थिक क्षेत्र में सहायक था, यह तो मान्य ही है[3]। वस्तुतः तत्कालीन समाज की संयुक्त-परिवार प्रणाली में नारी को किसी प्रकार के व्यवसाय के ग्रहण करने की आवश्यकता ही कम पड़ती थी। तत्कालीन नारी का पुरुष से स्वतंत्र कोई आर्थिक जीवन था ही नहीं।

---

१. अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इडियन विमेन इन सोशल लाइफ : ग्रेट विमेन आफ इंडिया में संकलित पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता

२. बाशम—'द वन्डर दैट वाज इंडिया' पृ १८०, १९५४ लंदन

३. अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ : ग्रेट विमेन आफ इंडिया में संकलित : पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता

आलोच्यकाल का सामाजिक जीवन : १५०० से १७५०

भारत पर यवन आधिपत्य स्थापित हुए तीन शतक व्यतीत हो चुके थे। इतिहास की पृष्ठभूमि पर भीषण नर-संहार, धर्मोन्मान्द एवं पराधीनता का दानव नृत्य कर रहा था। सांस्कृतिक एवं राजनीतिक द्वन्द्वों के मध्य समाज के भावों तथा मानदण्डों में परिवर्तन होना अनिवार्य था। इस्लाम के प्रबल, अप्रतिहत प्रवाह को हिन्दू-संस्कृति की शान्तधारा अपने में मिला न सकी। फलतः बौद्ध, और जैन धर्म के आघातों, हूण शक तथा यूनानी सभ्यताओं के प्रभाव के समक्ष अपनी एकता को अक्षुण्ण रखने वाला समाज शीर्ष से खींची हुई दो रेखाओं के समान दो भागों में विभाजित हो गया। हिन्दू एवं मुसलमान दो परस्पर विरोधी बिन्दु पर इन रेखाओं की स्थिति थी। समाज में पवित्रता की रक्षा के लिये वर्ण-व्यवस्था में संकीर्णता एवं कठोरता आ गई। ऊँच-नीच की भावना प्रमुख हो गई। किन्तु इन परस्पर विरोधी सिद्धान्तों पर आधारित धर्मों के अनुयायियों में शीघ्र ही परस्पर सद्भाव एवं संवेदना का उद्रेक होना अनिवार्य था[1]। इसलिये हिंसा के प्रभंजन के उपरान्त सदाशय-शासकों ने जन-हृदय के स्पन्दन को सुना।

वर्ण-व्यवस्था

वर्णाश्रम धर्म से तात्पर्य उस धर्म से रहा है जो समाज के प्रत्येक वर्ग और जीवन की प्रत्येक दशा के अनुकूल हो। वैदिक युग में जीवन की जटिलताओं, श्रम के सम-विभाजन के आधार पर इसका जन्म हुआ था। इसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के पृथक-पृथक कार्य थे। अनार्यों के सम्पर्क के साथ वर्ण-व्यवस्था कड़ी हो गई। द्विज (यज्ञोपवीत का अधिकार प्राप्त) जातियों, और शूद्रों में अन्तर परिवर्द्धित हो गया था। आर्येतर जातियों का समावेश इसी शूद्र वर्ण में हुआ। उनका कार्य अन्य तीनों वर्णो की सेवा करना था जबकि अधिकार कुछ नहीं थे। स्त्रियों का उपनयन स्थगित हो जाने के उपरान्त (२०० ई० से) वह भी शूद्रों के समकक्ष समझी जाने लगी थी। समय के साथ खान-पान तथा विवाह आदि व्यवहारों में कड़ाई के कारण वर्ण-व्यवस्था का अर्थ परिवर्तित हो गया, वह जाति-व्यवस्था बन गई। इस्लाम के आगमन के समय तक हिन्दू जाति में अनेक जातियां, उपजातियां बन गई थीं। इस्लाम धर्म की समानता

---

१. 'कुतबुन' जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध रूप दिखलाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा, जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने रख कर अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता कहकर उनके हृदय की मर्म-स्पर्शिनी दशाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।'—रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १०१, सं० २०१२ काशी।

और भ्रातृत्व की भावना भारतीय वर्ण-व्यवस्था के लिए एक चुनौती थी। द्विज-जाति से प्रपीड़ित व्यक्ति का स्वागत इस्लाम कर रहा था जिसमें प्रवेश कर लेने पर किसी प्रकार का सामाजिक भेद-भाव नहीं था। अत: इस्लाम के आकर्षक स्वरूप के प्रलोभन अथवा स्वधर्मियों के प्रपीड़न से निम्नवर्ग द्रुत गति से इस्लाम की दीक्षा ले रहा था। इस्लाम के आगमन से उत्पन्न नवीन समस्याओं के समाधान के प्रयास में जाति प्रथा और कड़ी हो गयी[1]।

परिवार

सामंतवादी व्यवस्था में स्त्रियों की परिवार में स्थिति पति पर ही अवलंबित थी। उनका सर्वोच्च कर्तव्य पति-सेवा ही था। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पति के ऊपर ही निर्भर थीं। संयुक्त परिवार प्रणाली में उनका स्थान सदा आश्रित के रूप में था। बाल्यावस्था में पिता के संरक्षण में रहती थी, यौवन में पति, और वृद्धावस्था में पुत्र अथवा अन्य कोई सम्बन्धी उनकी रक्षा करता। पुत्री का जन्म अशुभ माना जाता था। हिन्दू आदर्श के अनुसार नारी की सार्थकता पुत्र की माता होने में थी। पुत्र उत्पन्न होने पर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती थी[2]। ५०० ई० के उपरान्त स्त्री का क्षेत्र गृह की क्षुद्र सीमा ही रह गया था और उत्तरोत्तर उसकी सामाजिक स्थिति में पतन होता गया[3]। सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में बहिष्कृत होकर अशिक्षित, अपरिपक्व बुद्धि वाली नारी परिवार में भी आदरणीय न हो सकी। युग की भोग-प्रधान वासनात्मक मनोवृत्ति के अनुसार नारी केवल वासना काम-तृप्ति का साधन मात्र रह गई थी। सामंतवादी आदर्श के अनुसार वैभव और विलास की अनिवार्य सामग्रियों में से एक नारी भी थी।

पर्दा

प्रथम अध्याय के मध्य संकेत किया जा चुका है कि प्राचीन भारत में पर्दे की प्रथा नहीं थी। यद्यपि जफर के मतानुसार पर्दे की प्रथा का प्रारम्भ धूमिल

---

१. मुसलमानों के आगमन के कारण हिन्दू समाज में आत्मरक्षा की प्रवृत्ति भी बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में हुई। उनकी जातिप्रथा अधिक कसी जाने लगी। छूत का भय व वर्णसंकरता की भावना ने समूचे समाज को ग्रस लिया। —हजारीप्रसाद द्विवेदी
मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० ६१, १९५२ इलाहाबाद

२. के० एम० अशरफ—लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान, जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल पृ० २४०, १९३५

३. ए० एस० अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इण्डियन विमेन इन सोशल लाइफ : ग्रेट विमेन आफ इण्डिया में सं० पृ० ४६, १९५३ कलकत्ता

अतीत से हुआ है[१]। वस्तुतः भारत में अभिजात वर्ग की स्त्रियां अन्तःपुर में रहती थीं। सम्मानस्वरूप, गुरुजनों के समक्ष अवगुंठन से मस्तक ढक लेती थीं। किन्तु एक प्रथा के रूप में पर्दे का प्रारम्भ मुसलमानों के शासन काल में हुआ[२]।

कृषक स्त्रियाँ अथवा निम्नवर्ग की स्त्रियाँ अन्तःपुर में नहीं रहती थीं न वह किसी विशेष प्रकार का अवगुंठन ही धारण करती थीं। अपरिचित के समक्ष वह अपने मुख को धोती के किनारे से ढक लेती थीं। उच्च वर्ग साधन-सम्पन्न होने के कारण पर्दा-प्रथा का अनुकरण करता था। फीरोजशाह (१३८८) पहला बादशाह था, जिसने पर्दे को सार्वजनिक रूप से लागू किया था। मुस्लिम स्त्रियों के सन्तों के दरगाहों तक जाने में भी इसने प्रतिबन्ध लगा दिया था। पूर्ण-रूपेण वस्त्रों से आवृत्त, पर्दे पड़ी हुई डोलियों में यात्रा करनेवाली मुस्लिम स्त्रियाँ हिन्दू अभिजात वर्ग के लिए आदर्श बन जाती थीं। अनिश्चित परिस्थितियों के मध्य, विजेता की कामलोलुप दृष्टि से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए हिन्दू जनता को पर्दे का अवलम्ब लेना पड़ा।

विवाह, सती और जौहर

अपने वर्ण अथवा जातीय उपशाखाओं में ही विवाह हो सकता था। विवाह की आदर्श वयस ८, ९ अथवा १० वर्ष की थी। बालकों का उसी अवस्था में उपनयन होता और बालाओं के लिए विवाह ही उपनयन का स्थानापन्न था, पति ही गुरू था[३]। विवाह में पिता और माता अथवा अन्य गुरुजनों का मत ही मान्य होता था। कन्या को अपना वर चुनने की स्वतंत्रता न थी। ईसवी शती से विधवा की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। १००० ईसवी से उसकी दशा में उत्तरोत्तर पतन होता जा रहा था। सती की प्रथा सुदूर अतीत की कुछ परंपराओं पर आधारित है। इस प्रथा को सहमरण के गौरव से विभूषित कर, पति-पत्नी की अविच्छिन्न एकता का प्रतीक बताया गया। विधवा स्त्री कभी-कभी स्वतः ही सहमरण को गौरवपूर्ण समझ कर अपने जीवन को अग्नि की भेंट कर देती थी। प्रायः समाज के अनादरपूर्ण जीवन, परिवार में प्रतीक्षा करती हुई लांछना तथा तिरस्कार का भय उन्हें इस उपाय के ग्रहण के लिए विवश करता था और वह अपने दुःख, वेदना और अपमानमय जीवन का अन्त कर देती[४]। प्रायः शक्ति-प्रयोग द्वारा उन्हें बाधित भी किया जाता था।

---

१. जफर—सम कल्चरल ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया पृ० १७७–७९, १९३९ पेशावर।

२. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० २४४, १९३८ बनारस।

३. ए० एस० अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४२९, १९३८ बनारस

४. के० एम० अशरफ—लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान : जरनल रा० ए० बंगाल १९३५

विदेशी यात्रियों के इसके आंख देखे विवरण उपलब्ध हैं[१]। जौहर की प्रथा का प्रचलन राजपूतों में ही था, यद्यपि आलोच्यकाल से पूर्व अन्य जातियों में भी छिटपुट उदारण मिलते हैं। तैमूर के आक्रमण के समय भटनेर के गवर्नर कमालुद्दीन द्वारा जौहर हुआ था। अकबर ने सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया पर सफल न हो सका।

वेश्यावृत्ति

(प्राचीन भारत में सामाजिक नियमों और प्रतिबन्धों से परे स्त्रियों का एक वर्ग था, जिसके कारण उच्चवर्गीय नारी की स्वतंत्रता सीमित रह गई थी। यह वेश्या या गणिका कहलाती थीं[२]। मुसलमान सुलतानों की हरम प्रथा, बहु-विवाह की वृत्ति, तथा विलास-लालसा ने इस प्रथा को अधिक प्रोत्साहन दिया था। आलोच्यकाल से पूर्व ही नारी की गणना नित्य हाट से क्रय कर लाई, किन्तु आवश्यक सामग्री में होने लगी थी, जैसा कि कुंवर मुहम्मद अशरफ की पुस्तक में अलाउद्दीन और उसके दरबारी के वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है[3]। राज्य की ओर से वेश्यावृत्ति पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। विलासोन्मुख वृत्ति के कारण, और दरबारी सामाजिक मनोरंजन में संगीत और नृत्य की अनिवार्यता के कारण वेश्याओं की संख्या में अभिवृद्धि होती गयी। अकबर ने तो उनके लिए शैतानपुरी नाम की एक पृथक बस्ती ही बसा दी[४]।)

शिक्षा तथा सार्वजनिक जीवन

मध्य युग (आलोच्यकाल) में शिक्षा राज्य के इच्छित अथवा आवश्यक कर्तव्यों में से न थी, प्रत्युत वह एक व्यक्तिगत समस्या थी। मुस्लिम बादशाह और हिन्दू राजा धार्मिक कर्तव्य समझ कर मसजिदों और मन्दिरों को अनुदान देते थे जिससे उनमें संलग्न पाठशालाएँ अथवा मक़तब होते थे। काशी, श्रीनगर, पुरी, हरिद्वार, शृंगेरी आदि स्थानों में प्रकाण्ड पंडित वेद का अध्ययन, अध्यापन करते थे। बर्नियर ने बनारस में उन विद्वानों के प्रमुख से मिलने का उल्लेख किया है[५]। धनिक लोगों द्वारा प्रदत्त उद्यानों अथवा ग्रीष्म आवास में अध्यापक, प्राचीन काल के समान शिक्षा दान करते थे[६]। इस्लाम के आगमन के साथ

---

१. बर्नियर—ट्रैवल्स इन इन्डिया पृ० ३१२, ३१५ कांसटेबल द्वारा संपादित

२. बाशम—द वण्डर दैट वाज इण्डिया पृ० १८३, १९५४ लंदन

३. अशरफ—लाइफ एण्ड कण्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान, पृ० ३२०

४. के० एम० अशरफ—लाइफ एण्ड कण्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान पृ० ३२१

५. When going down to the river Ganges, I passed through Banaras and called upon Chief of the Pandits who resides in that celebrated place of learning".

बर्नियर—द ट्रैवल्स इन मुगल इण्डिया पृ० ३४१, कांसेटबल द्वारा सम्पादित

फारसी राजकीय कार्यों का माध्यम थी। अतः पुरुषों के लिए उसका ज्ञान अनिवार्य था। वस्तुतः राजनीतिक क्रान्ति के साथ ही हिन्दू अभिजात वर्ग नष्ट-सा हो गया था। नवोदय हिन्दू अभिजात वर्ग का शिक्षा के प्रति उतना आग्रह न था।

स्त्री-शिक्षा

इस काल में हिन्दू स्त्रियों में साक्षरता केवल राजपूत और ब्राह्मण महिलाओं में थी[1]। नर्तकी-वर्ग तथा वेश्याओं में ही शिक्षा एवं ललितकलाओं के प्रचार के कारण शिक्षित होना असम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। पर्दे की प्रथा के प्रचार ने भी स्त्रियों की शिक्षा में अवरोध प्रस्तुत किए। उच्च वर्ग में गृह पर ही अध्यापक अथवा महिला अध्यापक के द्वारा ही शिक्षा मिलती थी। सामान्य हिन्दू नारी भी गुरुजनों द्वारा साधारण शिक्षा एवं अपने कर्तव्य का ज्ञान कर ही लेती थीं। राजपूत एवं मरहठा परिवारों में लड़कियों का विवाह अपेक्षाकृत अधिक वयस १६, १७ वर्ष में होता था। उनको प्रशासकीय एवं अस्त्र-शस्त्र संचालन की शिक्षा पहले की भांति दी जाती थी। जवाहरबाई, ताराबाई, अहिल्याबाई आदि की कुशलता इसकी साक्षी है[2]। जफर के मतानुसार मुसलमान स्त्रियों के लिए पृथक मक़तब थे, तथा वह प्रारम्भिक शिक्षा लड़कों के साथ ही प्राप्त करती थीं[3]। मुगल स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं, तथा साहित्य और कला का संरक्षण करती थीं[4]। पर्दे के कारण सार्वजनिक जीवन में नारी का कोई भाग न था।

सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों में भी इस युग में कोई प्रगति नहीं हुई। वस्तुतः वेश्या की प्रथा, पर्दे के प्रचार, जातिव्यवस्था की संकीर्णता, सामन्ती प्रभाव में वर्द्धित होती हुई विलासिता, मदिरा पान आदि ने आलोच्य युग में नारी की सामाजिक स्थिति को आघात पहुँचाया। इन्हीं विभिन्न कारणों से क्रमशः नारी की स्थिति में अधिकाधिक पतन होता गया।

आलोच्यकाल का धार्मिक जीवन

आलोच्यकालीन जीवन राजनीतिक उत्कर्ष, जनसाधारण की आर्थिक समृद्धि के लिए स्पृहणीय न होने पर भी आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से नगण्य न था। दासता और परतंत्रता के गहन तम में निर्गुण और सगुण ब्रह्म की दीप्ति

---

१. अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ हिन्दू विमेन इन सोशल लाइफ, ग्रेट विमेन आफ इंडिया में सं० पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता।

२. अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ हिन्दू विमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट विमेन आफ इंडिया में सं० पृ० ४२, १९५३ कलकत्ता।

३. सम कल्चर ऐस्पेक्ट्स आफ मुसलिम रूल इन इंडिया पृ० ७७, १९३९ पेशावर

४. पानिकर—ए सर्वे आफ इंडियन हिस्ट्री, १९५४ बम्बई पृ० १६३

से हिन्दू धार्मिक नेताओं ने जनजीवन का पथ प्रशस्त कर दिया था। राजनीतिक ऊहापोह, आशा-निराशा के द्वन्द्व में हिन्दू जाति किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी। उपयुक्त अवसर पर ही भक्ति, परम दयामय स्नेहसिन्धु भगवान की कृपा और करुणा उसका अवलम्ब बनी।

प्रायः तीन सहस्त्र वर्ष से हिन्दू संस्कृति की धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हो रही थी। अपनी समन्वयकारिणी प्रवृत्ति के कारण उसने अपने सम्पर्क में आई हुई द्रविण, हूण, यूनानी, शक आदि की सभ्यताओं से सत्यं, शिवं सुन्दरं का चयन कर लिया था। बारहवीं शताब्दी में उसका सम्पर्क इस्लाम से हुआ। इस्लामी संस्कृति एकेश्वरवाद, प्राणिमात्र की समानता, नवस्फूर्ति एवं धर्मोन्माद से प्रेरित थी। भारतीय संस्कृति इस नवीन संस्कृति को आत्मसात् करने में असमर्थ थी। किन्तु इस्लाम के साथ संघर्ष होने के कारण, भारतीय संस्कृति के अनेक ऐसे पक्ष सामने आए जो नवागत धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के बहुत कुछ अनुरूप थे और उनसे टक्कर ले सकते थे। फलतः उपनिषदों में मान्य एकेश्वरवाद का सिद्धान्त पुनः लोकप्रिय हो गया। प्राणिमात्र की समानता एवं स्वधर्माभिमान की भावना का उदय हुआ। धार्मिक नेताओं ने प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप से मानवमात्र को भक्ति का अधिकारी बताया। इन नवीन धार्मिक आन्दोलनों का आधार बाह्याचार, उपासना पद्धति की जटिलता न होकर भक्ति था।

इस्लाम के साथ संपर्क होने से भारतीय धर्म के संगठन में परिवर्तन होना अनिवार्य था। इस्लाम के रूप में हिन्दू धर्म को एक ऐसे सुसंगठित मज़हब का सामना करना पड़ा जिसमें प्रवेश मात्र से प्रत्येक के लिए बहिश्त का द्वार खुल जाता था। भारतीय पण्डितगण, शास्त्रज्ञों ने इसी के समानान्तर अपने धर्म का आचार-प्रवण रूप स्थिर करना चाहा। अपनी आधारशिला, धार्मिक संगठन को दृढ़ बनाने के लिए समस्त शास्त्र पुराणादि का मन्थन करके, बाह्याचार और उपासना, व्रतों और उपवासों को महत्व देने वाला मत संगठित किया[1]। इस्लाम के आगमन के साथ ही आत्मरक्षा की प्रवृत्ति से हिन्दू-धर्म आचार-प्रवण तो हो ही गया था, इसी समय ऐसे धार्मिक आन्दोलन हुए जिन्होंने धार्मिक क्षेत्र में अभूतपूर्वक परिवर्तन प्रस्तुत किए।

---

१. 'हेमाद्रि से लेकर कमलाकर और रघुनंदन तक बहुतेरे पण्डितों ने बहुत परिश्रम के बाद जो निर्णय किया वह यद्यपि सर्ववादिसम्मत नहीं हुआ, किन्तु निस्संदेह स्तूपभूत शास्त्रवाक्यों की छान-बीन से एक बहुत कुछ मिलता जुलता आचरण-प्रवण धर्ममत स्थिर किया जा सका। निबंध ग्रन्थों की यह बहुत बड़ी देन थी। जिस बात को आजकल हिन्दू सोलिडैरिटी कहते हैं उसका प्रथम भित्ति स्थापन इन्हीं निबन्ध ग्रंथों द्वारा हुआ था।'

—हजारीप्रसाद द्विवेदी—**कबीर, पृ० १७३, १९४७ द्वि० सं० बम्बई**

तत्कालीन भारत के धार्मिक क्षेत्र में उदभूत होनेवाला यह आन्दोलन नवीन अथवा आंकस्मिक न था शतियों से इनके लिए भूमि प्रस्तुत हो रही थी, और इनका वपन हो चुका था। बहुत पूर्व से दक्षिण भारत में आलवार भक्तों में उपासना और भक्ति का सामंजस्य था। उनमें आन्दाल नाम की एक महिला भक्त भी हुई हैं। इन्हीं की परम्परा में रामानुज (१०१६ ई०) आविर्भूत हुए। दक्षिण के इसी भक्ति मार्ग को उत्तर भारत में दार्शनिक रूप मिला। भक्ति के क्षेत्र में शंकर के अद्वैत सिद्धान्त की जीव और ब्रह्म की एकता ग्राह्य न थी अत: बारहवीं शती से ही उसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। उसके प्रतिरोध में उदित चार वैष्णव सम्प्रदाय दार्शनिक दृष्टिविन्दु से भिन्न होते हुए भी मौलिक एकता रखते हैं। इन्ही सम्प्रदायों के प्रवर्तकों में श्री रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में रामानन्द हुए। रामानन्द ने समस्त प्राणियों की मूलभूत एकता पर बल दिया, और उच्चता का मानदण्ड कर्म को माना, जन्म नहीं। रामानन्द की ही शिष्य-परम्परा में कबीर, रैदास आदि हुए।

सन्त-सम्प्रदाय और नारी

खण्डनात्मक मनोवृत्ति को लेकर इन संतों ने शास्त्रगत सत्यों की अवहेलना करते हुए योग और विरक्ति प्रधान धर्म का प्रचार किया। (यद्यपि समाज द्वारा उत्पीड़ित निम्नवर्ग के लिए इन संतों के हृदय में संवेदना थी और उन्होंने जाति-पांति के भेद भाव का उग्र विरोध किया है, किन्तु नारी के प्रति उनकी दृष्टि अकृपा की ही रही। तप और विराग पर बल देने वाले संत-संप्रदाय में स्वभावत: ही नारी को तपस्या का अवरोध, एवं सत्पथ से च्युत करने वाला आकर्षण माना है। अत: संतों के इस मत द्वारा नारी की स्थिति को आघात पहुंचा। किन्तु अन्तत: संत-संप्रदाय के संतों को मानना [illegible] और नारी एक ही ईश्वर की रचना हैं, सब में उस अनन्त की ज्योति परिलक्षित होती है[1]। संत-साधिकाओं के जीवन और काव्य साक्ष्य देते हैं कि संतों ने नारी-जाति के लिए भी भक्ति का द्वार उन्मुक्त कर दिया। संत सम्प्रदाय में सहजोबाई (१६८६ ई०) दयाबाई (१७१८ ई०) आदि नारी दीक्षित थीं। कबीर की पत्नी लोई भी उनकी शिष्या थी[2]।

---

१. 'जेती औरत मरिदा सब में रूप तुम्हारा'। —कबीर
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १७६, २५६

२. 'इसके विपरीत स्त्रियों को इस बात के लिए उनका ऋणी होना चाहिए कि उन्होंने उनके लिए भी भक्ति का द्वार खोल दिया है। निर्गुणियों ने स्त्रियों को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया था। दादू की कुछ स्त्री-शिष्याएं थीं, जो उच्च परिवार की थीं। चरणदास की शिष्याएं सहजोबाई एवं दयाबाई निर्गुण पथ के परमोच्च रत्नों में से है। कबीर की स्त्री जिसका जो भी नाम रहा हो एक पूर्ण शिष्य का उदाहरण-स्वरूप थी'। —पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० २८८, सं २००७ लखनऊ

रामानंदी भक्तों की दूसरी शाखा में राम की सगुणोपासना पर बल देने वाले महात्मा तुलसीदास हुए। लोक में वर्णाश्रम, और जाति-पांति आदि भेदभावों को मान्य स्थिर करते हुए भी उन्होंने उपासना के क्षेत्र में दूसरे आदर्श और मापदण्ड रक्खे हैं। उनके अनुसार शूद्र भक्त भी अत्यन्त आदरास्पद और अधम से अधम नारी भी राम-भक्ति से मुक्ति पा लेती है[1]। ब्रह्म, रुद्र, सनकादि समस्त संप्रदायों ने नारी को भक्ति का अधिकार दिया[2]। वल्लभ सम्प्रदाय में वल्लभाचार्य ने गृहस्थाश्रम एवं नारी को परित्याग करने का आदेश नहीं दिया है प्रत्युत वे भक्ति साधना के पूर्वकाल में गृहस्थ के कर्मों को भगवान कृष्ण का आदेश मान कर करने का उपदेश देते हैं[3]।

तत्कालीन धार्मिक जीवन में एक और उल्लेखनीय धार्मिक सम्प्रदाय सूफी सम्प्रदाय था। उद्गम स्थान अरब होने पर भी यह भारतीय परम्पराओं एवं आदर्शों के अधिक निकट था। इस धर्म में नारी के प्रति क्या दृष्टिकोण थे इस विषय में स्पष्ट संकेत नहीं मिलते। किन्तु अमर प्रेम साधिका राबिया की उपस्थिति यह निर्देश करती है, कि बन्दे और खुदा के एकीकरण, प्रेम को प्रमुखता देने वाले इस सम्प्रदाय का द्वार नारी के लिए उन्मुक्त होगा। कालान्तर में इन साधकों ने हिन्दू जीवन की संवेदनामयी प्रेम कहानियां लेकर उनमें लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम का आभास दिया। इनकी प्रणयमूला रहस्यवादी भक्ति में खुदा नारी है और साधक पुरुष।

आलोच्य युग में अभी तक धार्मिक विशेषाधिकारों से वंचित नारी को अपने हृदय की अनन्त श्रद्धा और अपरिसीम भक्तिमयी भावनाओं की अभिव्यक्ति का अवसर मिला। भक्ति के इस राजमार्ग पर अग्रसर होने के लिए किसी शास्त्रीय

---

१. "प्रेम पुलिकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा, जनु महि लुटत सनेह समेटा॥"—तुलसी,
—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २५२, प्र० स०
१९८० वि० सं० काशी

२. "भक्तिमार्ग में स्त्री, शूद्र और वैश्य वर्ग को आत्मोन्नति का अधिकार दिया गया, यहां तक कि दुराचारियों को भी इस साधन से आत्मिक सुधार का अवसर मिला।"—दीनदयाल गुप्त
—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दूसरा भाग
पृ० ५१६, २००४ प्रयाग

३. "भक्ति की प्रथम साधन अवस्था में आचार्य जी ने गृहस्थाश्रम में रह कर, धर्म पालन करने का उपदेश दिया है, और गृहस्थ के कर्मों को कृष्ण की इच्छा मान कर करने का उपदेश दिया।"—दीनदयाल गुप्त
—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दूसरा भाग
पृ० ५१८, २००४ प्रयाग

ज्ञान, विद्वता की आवश्यकता न थी। अतः सामान्य नारी के समक्ष भी यह स्वर्णिम अवसर था। राम के चरित्र की आदर्शात्मकता, गंभीरता और महानता के साथ सामंजस्य न कर सकने के कारण सामान्य नारी कृष्ण के सरल, स्वाभाविक नटवर-नागर रूप की ओर ही उन्मुख हुई[१]। यद्यपि रामकाव्य में भी स्त्री भक्त हुई[२]। मधुरअली (१५५८ ई०) इत्यादि ने अपने हृदय की भक्तिमयी भावनाओं की व्यंजना काव्य के माध्यम से ही की। कृष्ण भक्ति अधिक लोकप्रिय हुई। कृष्ण के सौंदर्य, लोकरंजक स्वरूप के समक्ष केवल हिन्दू ही नहीं, प्रत्युत मुस्लिम नारियों ने भी धर्म और जाति की क्षुद्र सीमाएं तोड़कर आत्मसमर्पण किया।

सिद्धान्त रूप से तो भक्तिमार्ग जनसामान्य और नारी के लिए भी उन्मुक्त था, पर व्यवहार में भक्त नारी का जीवन सामाजिक मर्यादाओं के संघर्ष एवं द्वन्द्वों की कहानी था। कृष्णप्रेम की मतवाली मीरा को भक्तिमय जीवन अपनाने में अगणित बाधाओं का सामना करना पड़ा। वस्तुतः तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं, पर्दे आदि की मान्यतायों के मध्य नारी को केवल गृहस्थाश्रम में रह कर ही भक्ति करने का अवसर था।

उस समय व्रत और शान्ति की प्रक्रियाओं का विधान करने वाला पौराणिक धर्म लोकप्रिय हो रहा था। महाकाव्यों एवं पुराणों का जनभाषा में अनुवाद हो चुका था। ग्रामों में पौराणिकों द्वारा मन्दिरों में इनका प्रवचन होता था। भावना-प्रधान होने के कारण नारी को यह धर्म अधिक ग्राह्य हुआ। इस प्रकार नारी उसी धर्म की संरक्षिका बनी, जिसने वैदिक काल के उपरान्त उसे धार्मिक विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया था[३]। शिक्षाप्रद कथाओं से पूर्ण पौराणिक धर्म बौद्धिकता एवं तर्क-वितर्क का आघात नहीं सह सकता था। स्वभाव से ही धार्मिक नारी भक्तिमयी होकर बौद्धिकता को तिलांजलि दे बैठी। वेदान्त के दार्शनिक मतों को समझने में असमर्थ नारी के लिए पौराणिक धर्म एक वरदान बनकर आया।

---

१. "शृंखलित जीवन की मर्यादा और आदर्शों के बीच कृष्ण की यह लीलामयता मानों उसमें शुष्क जीवन की प्रेरक बन कर आई, तथा भारतीय नारी जगत कृष्ण प्रेम से आप्लावित हो उठा, साधारण व्यक्तित्व उनके गुणों को गाकर उन पर रचित काव्य और संगीत के आनन्द और उल्लास में डूब गए। तथा अनेक स्त्रियों की कुंठित प्रतिभा को कृष्ण के आलम्बन रूप द्वारा विकास का साधन प्राप्त हुआ।"

सावित्री सिन्हा—'मध्यकालीन हिन्दी कवयत्रियाँ, पृ० १०३, दिल्ली

२. सावित्री सिन्हा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० २२२ और २२६

३. अल्टेकर—आइडियल एण्ड पोजीशन आफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ : ग्रेट विमेन आफ इंडिया में संकलित, पृ० ४१, १९५३ कलकत्ता

धर्माधिकारी तथा सामन्त

इस्लाम के आगमन से भारतीय जीवन में कोई मौलिक क्रान्ति उत्पन्न न हुई थी। शासन और समाज की व्यवस्था में भी विशेष अन्तर न था। मानव-समाज के संगठन, सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही मानव समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया था। एक तो शासकवर्ग—जिसमें सामन्त, पुरोहित तथा राजा थे, दूसरा शासित वर्ग। यह विभाजन ही सामन्तवादी समाज का मूल आधार था। इतिहास के पृष्ठों तथा अतीत की अन्धकारमयी पीठिका पर यह सत्य स्पष्ट अंकित है कि समाज को प्रत्येक देश एवम् समाज में शतियों तक सामन्तवाद का प्रभुत्व रहा। भारत का इतिहास इस सत्य का अपवाद नहीं है। गणतन्त्रों के स्वर्णिम उषाकाल के उपरान्त राजतंत्र का दैदीप्यमान आलोक क्रमशः सामन्तशाही की रजनी के घन कुहुक में निमग्न रहा।

सामन्तवाद में धर्म का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। दलित शोषित वर्ग की वर्तमान दशा की व्यवस्था का सबसे सरल उपाय धर्म है, जिसके अनुसार वर्तमान स्थिति उसके पूर्वजन्म के कर्मो का फल है, जिसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं है। मनु तथा दूसरे शास्त्रकारों ने इस सामन्तवादी प्रथा का समर्थन कर राजा प्रजा के कर्तव्यों की विशद व्याख्या की है। शासक वर्ग क्षत्रिय और पुरोहितों ब्राह्मणों का यह समझौता सर्वदेशीय होने पर भी भारत में बहुत गहरा था। भारत के राजपूत युग (८०० ई०-१२०० ई०) तक समाज के आधार सामन्ती आदर्श ही थे। युरोप के साहसी वीरों के समान यहां के राजपूतों के जीवन का उद्देश्य युद्ध और प्रेम ही था। राजपूतों के अतिशय विलास, [illegible], एवं अनैक्य की भावना से उनका अपकर्ष हुआ और भारत पर मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना हुई। सामाजिक व्यवस्था वही रही। समाज अब भी दो वर्गों में विभक्त था—शोषित और शोषक। राजपूत सामन्ती संस्कृति के ध्वंसावशेष पर जिस इस्लामी शक्ति का निर्माण हुआ, उसमें सामन्ती सभ्यता के सभी तत्व विद्यमान थे। धार्मिक तथा राजनीतिक अधिकार एक ही सत्ता में केंद्रित थे[1]। मुगल शासन-काल (१५२६) में भी समाज का आधार सामन्ती ही था। राजा सर्वोच्च स्थान पर था, उसके पश्चात् उसके सामन्त उमरा और मनसबदार आते थे। यद्यपि मुगल शासनकाल में उल्मा को पठान-शासन काल (१४४१–१५२६) के समान निरंकुश अधिकार एवम् महत्ता प्राप्त नहीं थी, किन्तु धर्माधिकारियों का सहयोग राजा की शक्तिवर्धन में सहायक था।

यद्यपि मुग़ल सम्राट पवित्र सच्चे धर्म के संरक्षक थे किन्तु धार्मिक क्षेत्र

---

१. भारत में मुसलमान राज्य धार्मिक राज्य ही बना रहा, मुसलमान शासक के रूप में सीज़र और पोप दोनों ही एकत्र हो गए थे, परन्तु धार्मिक विषयों में उनके विचार शरीयत नियंत्रित थे।

ईश्वरीप्रसाद—मध्ययुग का इतिहास, पृ० ८१३, १९५५ इलाहाबाद

में उन पर बाह्य नियंत्रण नहीं था। उल्मा-गण कभी मुगल शासकों पर अपना नियंत्रण न कर सके। सिकन्दर लोदी (१५१७) के समय की दशांश भी शक्ति उल्मा में नहीं थी। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आलोच्य युग में राज्य धर्माधिकारियों के नियंत्रण से परे था[१]। साथ ही फारसी जीवन के वैभव विलास की स्वर्णिम आभा से अभिभूत, भारत के सामन्ती वातावरण में मुगल सम्राटों के दरबार शोभा, सज्जा, चमक-दमक, ऐश्वर्य में अद्वितीय थे, जिसके वैभव की प्रशंसा सभी विदेशियों ने मुक्तकंठ से की है। इस वैभव की पृष्ठभूमि में सम्राट के सामन्तों की शृंखला भी थी। अन्तिम मुगल सम्राटों के काल में प्राचीन सामन्ती परम्परा के स्थानापन्न सामन्तों में वह विशेषताएँ न रहीं जिनके कारण वह राज्य के स्तम्भ थे, एवम् शक्तिवर्धन में सहायक होते थे। दुर्बल हाथों में राजदण्ड जाते ही मुगल सामन्तों में भी शौर्य का अभाव हो गया। स्वामिभक्ति कर्तव्यपरायणता की भावना न्यून हो गयी थी, और उनके निकृष्ट गुण प्रकाश में आने लगे।

मुगल शासन की यह उल्लेखनीय विशेषता थी कि सभी कर्मचारी (सिविल आफिसर) सैनिक पदस्थ मनसबदार थे। शासन तथा अन्य क्षेत्रों में यह सामन्त अत्यन्त प्रभावशाली थे। महावतखाँ ने जहाँगीर को गद्दी पर से उतार कर नूरजहाँ सहित बन्दी बना दिया था। समय और अवसर पाकर ये अमीर अत्यन्त शक्तिशाली हो जाते थे। मुगल शासन की सन्ध्या में जब राजदण्ड पकड़ने वाले कर प्रकम्पित और अशक्त थे, सम्राट अमीरों के हाथों के खिलौने बने हुए थे। मुगल दरबार अमीरों की उच्चाकांक्षाओं की रंगभूमि हो गयी थी। शक्तिशाली अमीर ही समस्त शक्ति के केन्द्र और सत्ता के नियामक थे। फर्रुख-सियर (१७१९) के समय सैयद भाइयों और तूरानी सरदारों की शक्ति निर्बाध हो गई थी। वस्तुतः 'अपहरण की प्रथा' का सामन्तों की नैतिकता और स्वामिभक्ति पर घातक प्रभाव पड़ा[२]। सामन्त यह भलीभांति जानते थे कि परिश्रम अथवा

१. "The Mughal State never became a theocracy though the emperor was the guardian and protector of Islam. The body of Ulma was mostly a time serving heira-crhy, intent upon gaining court favour and therefore, incapable of maintaining high ideals".

खोसला—मुगल किंगशिप एण्ड नोबिलिटी पृ० १८८, १९३० इलाहाबाद

२. It also made the Mughal Nobility a selfish herd prompt in deserting to the winning side in every war of succe-ssion or foreign invasion, because they knew that their land and even personal property was not legally assured to them, but depended solely on the pleasure of the king de-facto.

सरकार—मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १७६, कलकत्ता

अकर्मण्यता, स्वामिभक्ति अथवा प्रवंचना, कर्तव्य-परायणता अथवा कर्तव्य-विमुखता का उनकी मृत्यु-उपरान्त एक ही निश्चित परिणाम होगा। उनकी संचित सम्पत्ति, धनराशि राजकोष में सम्मिलित कर ली जायगी। उनका परिवार उसके उपभोग से वंचित हो जावेगा। अतः वह अपने जीवन काल में ही वैभव और विलास का आकण्ठ पान कर लेना चाहते थे।

सामन्ती व्यवस्था का विलासवैभव और नारी

उल्लिखित कारणों से सामन्तों में नैतिकता का कोई मूल्य ही नहीं रहा था। उनके जीवन का चरम उद्देश्य वैभव और विलास ही था। उनका आदर्श था, फारसी विलास-वैभव-प्रदर्शन की प्रवृत्ति को प्रधानता देने वाला मुगल शासक। अतः उसके अनुकरण में फारसी मौलिकता और विलासिता इन सामन्तों के जीवन का एक आवश्यक अंग बन गई थी। अनागत दुःख (अपहरण) के भय से पलायन कर इन सामन्तों ने नारी के सुरभित आंचल एवम् मदिरा की मादकता का सहारा लिया। सम्राट के अनुकरण पर इनके अन्तःपुर में भी विवाहिताओं एवं रक्षिताओं का समुदाय था। नारी उनकी विलासिता का एक उपकरण, विश्रान्ति के क्षणों की संगिनी मात्र थी। विलास और वैभव की उस अतुलित राशि में निवास करने वाली नारी, उसका एक अंग मात्र थी, उसकी उससे पृथक सत्ता अथवा व्यक्तित्व न था।

सन् ११९३ ई० को भारत के इतिहास के पृष्ठों पर हिन्दू जाति के पराभव की व्यंगमयी कुटिल कहानी समय ने लिख दी थी। प्रेम और युद्ध को जीवन का लक्ष्य समझने वाले, व्यक्तिगत सत्ता एवम् अहं के पोषक राजपूतों के ध्वंस पर मुस्लिम साम्राज्य की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। शताब्दियाँ बीत चुकी थीं, राज्याधिकारियों का परिवर्तन हो चुका था, किन्तु समाज अपने उन्हीं अगतिशील सामन्ती आदर्शो पर स्थित था। अशिक्षा और मोह की छाया में व्यक्ति जन्म लेता, पलता और मर जाता। फारसी जीवन-दर्शन और मुगलकालीन आन्तरिक शांति की क्रीड़ा में, विलास और वैभव को प्रधानता देनेवाली, किन्तु नारी और शोषितों के अधिकारों को कुचलने वाली, सामन्ती-परम्परा अपने अभिनव रूप में पनपी थी। शासक विलासप्रिय बने और शासित उनका अनुकरण करने में प्रतिष्ठा और गौरव समझते थे। अतः विलास के इस उद्दामवेग के समक्ष, तत्कालीन समाज की परम्परा में नैतिकता और सदाचार के बन्धन और नियम केवल एक पक्ष पर ही घटित होने लगे। नारी तो बहुत पहले से ही पराधीन और विवश होकर अनादर की पात्री थी, शिक्षा और उपनयन के अभाव में उसकी गणना शूद्रों में होने लगी थी। यज्ञ उपासनादि धार्मिक कार्यों में नारी पति की सहधर्मिणी न होकर जीवन के कतिपय मादक क्षणों की संगिनी थी।

तत्कालीन समाज के धार्मिक सम्प्रदाय तो नारी के प्रति विराग की भावना रखते ही थे, जैसा कि कहा जा चुका है। समाज में नारी के प्रति दो विरोधी मनोवृत्तियाँ समाज में व्याप्त थीं। एक ओर आध्यात्मिकता को प्रधानता देने वाला

विरागी वर्ग उसको मानवोन्नति का अवरोध मान कर उससे दूर रहने का निर्देश देता था, दूसरी ओर विलास और भौतिकता-प्रधान वर्ग उसे जीवन की अत्यावश्यक सामग्री मानकर उसके सान्निध्य को सुखमय मानता था। इस रूढ़िग्रस्त वातावरण में नारी व्यक्तित्वहीन अशक्त थी। इन्हीं अगतिशील परम्पराओं के मध्य वह जन्म लेती। निग्रह एवम् आत्मदमन, आज्ञापालन एवम् पतिपरायणता का उपदेश पाकर अपरिपक्व अवस्था में श्वसुर-गृह में प्रवेश करती। अपनी सामाजिक मर्यादाओं एवम् परम्पराओं में केन्द्रित, अनादर अथवा आदर प्राप्त कर जीवन व्यतीत कर देती थी। उसमें न स्वाभिमान की भावना ही होती और न मातृत्व के गर्व, पत्नी की गरिमा की अनुभूति ही। फिर भी उसका जीवन त्याग और बलिदान का जीवन था[१]।

भारत के इस्लाम के साथ सम्पर्क ने परोक्ष रूप से उसकी नारी-भावना को भी प्रभावित किया। राजधर्म के अनुकरण ने भारतीय समाज के आदर्शों की नींव हिला सी दी। इस्लामी संस्कृति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवजागृति का संदेश लिए थी। मुहम्मद साहब के औदार्य ने मुस्लिम नारी के पथ पर से अवरोध तिरोहित कर उसे प्रशस्त किया था। मुसलमानों के सामाजिक जीवन की मार्ग-निर्देशिका उनकी धर्म-पुस्तक कुरान है[२]। उसमें स्त्री-पुरुष को समान पद दिया गया है[3]। इस्लाम में नारी की कानूनी स्थिति श्रेष्ठ थी। जबकि हिन्दू स्त्री को साधारण दशा में केवल माता के स्त्री धन पर ही अधिकार प्राप्त था, इस्लाम में पुत्री माता बहिन तथा पत्नी के रूप में नारी को सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त था[४]।

---

१. "७१२ ईस्वी के मुहम्मद बिन कासिम के अरब आक्रमण से लेकर १७०७ ई० में मुगल साम्राज्य के पतन तक भारतीय शालीनता का इतिहास नारी अपने रक्त से लिखती रही। यह इतिहास हजार वर्षों के जौहर का इतिहास था, संसार की जातियों का आना-जाना, भारत की बार-बार की पराजय का मूल्य, भारतीय नारी के गौरव का वितन्वक।"
भगवतशरण—भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण पृ० २६४, १९५० बनारस

२. जफर—सम कल्चरल ऐस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया पृ० १९५, १९३१ पेशावर

३. "Thou' art my wife, the wife must be of the same quality (as husband) in order that things may go rightly. The married pair must match each an other look at a pair of shoes and boots".
जलालुद्दीन रूमी—मसनवीज आफ जलालुद्दीन रूमी पृ० १२६, निकल्सन सीरीज

४. कैलाशनाथ शर्मा—भारतीय समाज संस्कृति तथा संस्थाएँ पृ० २६७, १९५२ कानपुर

मुहम्मद साहब के आविर्भाव के पूर्व अरब में नारी पुरुष वर्ग के अत्याचार, प्रपीड़न से त्रस्त थी। पुरुष की विलासी प्रवृत्ति एवम् क्षुद्र स्वार्थ उसके जीवन को एक दुःस्वप्न मात्र बनाएँ हुए थे। विवाह मानव विकारों को सयंमित करने, पशुवृत्ति का विरोध करने वाले न होकर वासनापूर्ति के साधनमात्र थे। मुहम्मद साहब से पूर्व अरब में पुत्री-जन्म एक अभिशाप समझा जाता था। बर्बर अरब कन्या को उत्पन्न होते ही भूमि में गाड़ देते थे। उनके यहां कब्र ही सबसे उपयुक्त दामाद समझा जाता था[1]। अन्य भौतिक सम्पत्ति के समान विधवा भी अपने पति के उत्तराधिकारी को प्रदान कर दी जाती थी[2]। मुहम्मद साहब ने मातृ शक्ति का यह अनादर, नारी के नारीत्व का क्रूर उपहास, राष्ट्रविधात्री का यह शोषण देखा और उनके समदर्शी हृदय में करुणा, ग्लानि, दया की मिश्रित भावनाओं का उद्वेलन हुआ। उन्होंने मानवता के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश नारी जाति के तमाच्छन्न जीवन में प्रभात का आलोक दान दिया। अमर्यादित सामाजिक जीवन की समाप्ति, विवाह की संख्या के सीमा निर्धारण के साथ ही इस्लाम में नारी अपने नूतन अधिकारों के साथ शक्तिमयी हो गई।

इस्लाम के अन्तर्गत नारी

मुहम्मद साहब ने पत्नियों की संख्या चार तक केन्द्रित कर दी। अरबों में पत्नी त्याग मन की तरंग पर निर्भर था, उसका उन्होंने नियमन किया। कन्याओं की जीवित समाधि का विरोध किया[3]। स्त्री और पुरुष दोनों पर पवित्रता का समान बन्धन था। प्रत्येक स्त्री को अपने दहेज, परिचारक, आवास पर अधिकार था। विवाह-विच्छेद तथा तलाक विहित था। पति की मृत्यु पर स्त्री को समस्त दहेज तथा पति की सम्पत्ति का भाग प्राप्त होता था। पत्नी अपने पति के नाम पर आवश्यक ऋण प्राप्त कर सकती थी। वय-प्राप्त कुमारी को विवाह के लिए बाधित नहीं किया जा सकता था। परित्यक्ता को पुनर्विवाह का अधिकार था। स्त्री को कानूनी अपराध अथवा नियम भंग के लिए पुरुष का आधा दण्ड मिलता था।

अपने पति की अनुमति से नारी विवाह-विच्छेद कर सकती थी। किन्तु तो

---

१. अबू मुहम्मद इमासुद्दीन—इस्लाम और ग़ैर मुस्लिम विद्वान (इस्लाम और स्त्री) पृ० १८०, १९४९ प्र० स० बनारस

२. अबू मुहम्मद इमामुद्दीन—इस्लाम और ग़ैर मुस्लिम विद्वान (इस्लाम और स्त्री) पृ० १८०, १९४९ प्र० स० बनारस

सी. कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एण्ड हर वेज, पृ० ९७, लंदन १९२२

३. अबू मुहम्मद—इस्लाम और ग़ैर मस्लिम विद्वान पृ० १९०, १९५२ बनारस

सी. कालिवर राइस—पर्शियन वूमन एण्ड हर वेज़, पृ० ९६

भी इस्लाम के अन्तर्गत भी नारी के जीवन में अनेक विषमताएँ बनी रहीं। कोई भी स्त्री चार पत्नियों अथवा रक्षिताओं में से एक होने में विरोध नहीं कर सकती थी[१]। विवाहों की सीमा निर्धारित हो जाने पर भी सरल विवाह विच्छेद के कारण नारी की दशा एवम् सामान्य नैतिकता में कोई उत्थान नहीं हुआ। पुरुष को विवाह-विच्छेद का निर्विरोध अधिकार था, किन्तु स्त्री को इस विषय में कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। इस्लाम स्त्री-शिक्षा के विपक्ष में था। प्राचीन अरब में पर्दे का प्रचार न था किन्तु कुरान के चौबीसवें शरह के एक पद्य में पर्दा-प्रथा की घोषणा है[२]। यह नियम जब नवीं ईसवी में इस्लाम के सन्देश के साथ फारस में लागू हुए तो वहां की नारी के उत्थान में सहायक न हो सके[३]। फारस में स्त्रियों को पहले से ही यह इस्लाम प्रदत्त विशेषाधिकार उपलब्ध थे। इस्लाम के पवित्र नियमों ने पुरुषों को नवीन विश्वास एवम् दृढ़ता प्रदान की, किन्तु नारी की दशा में दुख और दैन्य की ही प्रधानता रही[४]।

'हरम' शब्द पवित्रता का द्योतक है, किन्तु उसके साथ ही स्त्री-पुरुष के स्वच्छन्दतापूर्ण मिलन पर नियंत्रण हो गया। 'हरम' के सीमित जीवन में, विचारों के आयात-निर्यात का अवसर उपलब्ध न होने के कारण मुस्लिम नारी की बुद्धि संकीर्ण हो गई। उसकी धारणाएं अगतिशील बन गईं, और जीवन के प्रति दृष्टिकोण सीमित और संकुचित हो गया। फारस की स्त्रियों के लिए तो पर्दा राष्ट्रीय गौरव ही रहा है[५]।

इस्लामी परंपरा, एवम् लोकोक्तियों में नारी के प्रति दृष्टिकोण

प्रत्येक जाति के इतिहास में ऐसे युग आए जब विराग एवम् तप की

---

१. वाल्टर एम गैलिकन्स—विमेन अन्डर पोलोगैमी, पृ० ३७, लंदन १९५४

२. कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एन्ड हर वेज़, पृ० १०२, १९२२ लंदन

३. "It did very much to improve the position of Arabian Woman, but when the ammended laws and customs were passed on to the women of Persia it meant a retrograde step for them as they had long enjoyed an honourable and influential position".
सी० कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एन्ड हर वेज़, पृ० ९५, १९२२ लंदन

४. सी० कालिवर राइस—पर्शिग्रन वूमेन एन्ड हर वेज़, पृ० ९५, १९२२ लंदन

५. "A Nation's greatest asset is a Pardanashin".
सी० कालिवर राइस—पर्शियन वूमेन एण्ड हर वेज, पृ० ९० १९२२ लंदन

प्रवृत्ति, समाज में निवृत्ति-मार्ग की भावना की प्रधानता के कारण नारी को कुप्रवृत्ति और पतन के प्रतीक रूप में चित्रित किया गया है। इस्लाम में भी परम्पराओं ने नारी को शैतान के कोड़े बताकर उसे अविश्वसनीय तथा अपकर्ष का कारण घोषित किया[1]। एक ओर नारी को मानवता का अभिशाप बताया जा रहा था, वहीं मुहम्मद साहब जननी के चरणों तले ही स्वर्ग बता रहे थे[2]। नारी विषयक यह विरोधी भावनाएं, उसकी प्रशंसा और निन्दा की परम्पराएँ भारत के समान इस्लाम के प्रदेश में भी पनप चुकी थीं[3]। ये ही परंपराएँ भारत में आई और फलतः भारतीय नारी की स्थिति में कोई सुधार उपस्थित न हो सका। मुस्लिम स्त्रियों की श्रेष्ठ कानूनी स्थिति भी नारी के लिए ग्राह्य न हो सकी। स्त्रियों के विषय में मुसलमानी परम्परा देश के अनुसार परिवर्तित होती गई। सामान्यतः तुर्क अपनी स्त्रियों को अधिक स्वतन्त्रता देते थे। अपनी भारतीय बहिन की तुलना में फारस की स्त्री उन्नति कर रही थी। भारत में मुसलमानों ने अरबी आदर्श का अनुकरण किया, जिसने स्त्री को अत्यन्त निम्न स्तर में रखा था। विलासिता की प्रधानता के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अस्वस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत हुए। लोग स्त्रियों से उसी मात्रा में पवित्रता की आशा करते थे, जिस मात्रा में पुरुषों में इसका अभाव था[4]। मुगल शासकों का प्रेरणा-स्थल फारस ही था। फारसी आदर्शों के आधार पर ही उनका एक बड़ा सा अन्तःपुर होता था, जिसमें असंख्य पत्नियां एवम् रक्षिकाएं प्रश्रय पाती थीं। मुगल सम्राट अपने घर की वृद्धा महिलाओं माताओं एवम् बहिनों का अत्यन्त आदर करते थे, तथा उनकी भावनाओं

---

१. "Women are whips of Satan".
"Obediencc to a woman will have to be repented".
"Trust neither a king, horse, nor a woman"
"What has a woman to do with the councils of a nation". —वाल्टर एम गैलिकन्स
विमेन अंडर पोलीगैमी पृ० ४७, लंदन १९१४

२. "Paradise lies at the feet of mother".
इस्लामिक कल्चर, १९५१ हैदराबाद

३. "I have not left any calamity more deterimental to mankind than woman". "A bad omen is found in a woman house and horses". "The world and all things in it are valuable but the most valuable than all is a virtuous woman".
कान्विर राइस—पर्शियन वूमेन एण्ड हर वेज़ पृ० ९९, १९२२ लंदन

४. **दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० ३९०, १९५६ दिल्ली**

को ठेस नहीं पहुंचाते थे[१]। वे समय असमय पर गृह अथवा राजनीति से संबंधित विषयों पर उनसे परामर्श लेते थे। "राजनीतिक जीवन और स्त्रियाँ" के अन्तर्गत बताया जा चुका है कि मुगलों के शासन संचालन में उनकी गृह नारियों का भाग रहता था[२]। किन्तु अपनी विलासी प्रवृत्ति की परितुष्टि के लिए मुहम्मद साहब द्वारा निर्धारित चार पत्नियों की सीमा मुगल राजाओं के लिए अमान्य थी। ये इच्छानुसार विवाह करते तथा सुन्दरी दासियों को रक्षिता बना लेते थे। विवाह के मूल में राजनीतिक कारण भी होते थे। इन विस्तृत अन्तःपुरों के प्रबन्ध के लिए अनेक दासियों तथा रक्षा के लिए नपुंसक प्रहरी रखे जाते थे। साधारणतः 'हरम' में विभिन्न जातियों की २००० तक स्त्रियाँ होती थीं। उनसे प्रत्येक के पृथक कर्तव्य थे। कुछ राजा की पत्नी, पुत्री अथवा रक्षिताओं की सेवा में रहतीं, कुछ स्त्रियाँ संगीत का निरीक्षण करतीं, और कुछ राजपरिवार की महिलाओं को शिक्षा देने का कार्य करतीं। बादशाद दासियों द्वारा नगर व राज्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पत्र पढ़वा कर सुनता था[3]। महलों का जीवन विलास एवम् सौख्य से पूर्ण था। बेगमों को धन द्वारा प्राप्त समस्त सुख-सामग्री सुलभ थी।

वास्तव में मुगल सम्राटों के लिए नारी जीवन का एक आवश्यक उपकरण थी[४]। राज्य-विस्तार के लिए जाते समय, मृगया, युद्ध अथवा राज्यप्रबन्ध की यात्रा में सदा अन्तःपुर (हरम) अपनी पूर्ण साज-सज्जा एवम् वैभव के साथ प्रस्तुत रहता था। नारी के प्रति उपभोग की भावना ही उनमें प्रधान थी।

---

१. "बाबर की सात बुआ हिन्दुस्तान आईं। इन सबके लिए जगह जागीर और पुरस्कार निश्चित हुए। चार वर्ष तक जब तक वह आगरा रहे हर शुक्रवार को अपनी बुआ से मिलने जाते थे।"
गुलबदन बेगम 'हुमायूंनामा' सम्पादक ब्रजरत्नदास
पृ० २४, २५, ३३, सं० १९८० काशी

२. रामप्रसाद त्रिपाठी—सम ऐसपेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन
पृ० १०९

३. "These news-letters were commonly read in the king's presence by woman of mahal at about nine O'clock in the evening, so by this means he knows what is going on in his kingdom".
मनूची—स्टोरिया द मोगोर, वालूम दूसरा, पृष्ठ संख्या ३३१, विलियम इर्विन अनुवादित १९०७

४. "For all the Mohommadens are very fond of women who are their principal relaxation and almost their only pleasure".
मनूची—स्टोरिया द मोगोर, विलियम इर्विन अनुवादित पृ० ३४२

हरम की महिलाओं का जीवन

'हरम' शब्द की व्युत्पत्ति अरबी है जिसका अर्थ पवित्र है। क्रमशः यह शब्द अन्तःपुर के लिए प्रयुक्त होने लगा। 'हरम' में पर्दे का कठिन नियंत्रण था। वह कोषागार था जहाँ सुन्दरतम नारियाँ मुगल शासकों की वासना परितृप्ति के लिए बन्दी सी रहती थीं। मुगलकालीन चित्रकला के साक्ष्य पर उनको अपने प्रासाद के समीपस्थ उद्यान में भ्रमण की स्वतन्त्रता थी। राजकुमारियों, रानियों, अथवा रक्षिताओं को उनके पद के अनुसार वेतन अथवा पेन्शन मिलती थी। राजमहल के रोमानी वातावरण में रहनेवाली यह नारियाँ अपने सौन्दर्य परि-वर्द्धन एवम् रक्षण के लिए सतर्क रहती थीं। अनेक प्रकार के उबटन, अंगराग सुरमा, मिस्सी, इत्यादि उनके प्रसाधन थे। उनकी आभूषणप्रियता, वैभव एवम् प्रदर्शन की इच्छा चरम-सीमा पर रहती थीं। वह दिन भर में कई बार वस्त्र परिवर्तन करतीं, उनके रत्न जटित वस्त्रों में कवि की कल्पना मूर्त हो उठती। प्रायः तीन से पांच लड़ियों के हार उनकी ग्रीवा से कटि तक लटका करते थे। एक मुक्ता-गुच्छ सिर के मध्य भाग से मस्तक के केन्द्र तक पहुंचता था, जिस पर सूर्य या चन्द्र अथवा पुष्पों से सादृश्य रखनेवाला रत्न जटित आभूषण पहनती थीं[1]। अवकाश के समय में यदाकदा संगीत द्वारा वह अपना मनोरंजन करती थीं। उनके मनोरंजन के अन्य साधन कबूतर उड़ाना, शतरंज, चौपर, गंजीफा खेलना, पतंग उड़ाना आदि थे। काव्यरचना भी उनके अवकाश काल का एक आमोद था। गुलबदन बानू, सलीमा बेगम, जेबुन्निसा स्वयं काव्य रचना करती तथा साहित्य को प्रश्रय देती थीं। प्रायः बेगमें अवकाश काल में फारसी प्रेम कथाएं पढ़तीं अथवा सस्ता प्रेम काव्य सुनतीं[2]।

राजमहलों में नैतिकता का कोई महत्व न था। मदिरा का निर्बाध प्रयोग होता था। केवल राजपूत रानियों को छोड़कर राजभवन की महिलाएं मदिरा का साधारण पेय के रूप में प्रयोग करती थीं। मुगल राजकुमारियों का जीवन समस्त भौतिक सुखों से परिपूर्ण होने पर भी रिक्त रहता। वैभव के विलास मन्दिर में भी सूनापन रहता था। अकबर ने राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा

---

१. मनूची स्टोरिया द मोगोर, दूसरा वालूम, पृ० ३३६, १६०७

२. "Among those some teach reading and writing to princess, and usually what they dictate to them are amourous verses. And the ladies obtain relaxation in reading books called Gulistan and Bostan, written by an author called Seikh Sadi Chiragi and other books treating of love very much the same as our romances, only they are still more shameless".

मनूचीः—स्टोरिया द मोगोर दूसरा भाग, पृ० ३३१

रोकने के कारण, अपने उत्तराधिकारियों के लिए पुत्रियों का विवाह न करने का नियम बना दिया था। इससे अवैध संबंधों का आधिक्य हो गया। सौन्दर्य की हाट, रूप की प्रतिद्वन्द्विता में प्रति क्षण एक दूसरे को तुच्छ बनाने को प्रस्तुत 'हरम' की स्त्रियों के समक्ष कर्मण्यता, अथवा उत्सर्ग का अवसर न था। यह अन्तःपुर वैभव और विलास में इन्द्रलोक की समता करता था। किन्तु यह युद्ध प्रांगण भी था, जहाँ ईर्षा एवम् द्वेष, कपट एवम् सन्देह के घात-प्रतिघात होते। नैतिकता के शव पर, वासना की झंझा में कुचले हुए नारीत्व पुष्प धूल-धूसरित होते रहते।

भारतीय सामन्तों में इस्लामी सभ्यता का अनुकरण

भारतीय सामन्तों एवम् उच्च वर्ग में भी दरबारी विलासिता प्रश्रय पा रही थी। राजा के अनुकरण पर छोटे रूप में सामन्त भी उसी साज-सज्जा के साथ अन्तःपुर रखते थे। उनके गृहों में भी वही हीरे मोती की जगमगाहट, मधुबाला के नूपुरों की रुनझुन थी। अरबी-फारसी संस्कृतियों के प्रभाव से उनके जीवन में भी अधिक कृत्रिमता, एवम् विलास की अभिरुचि प्रधान हो गई थी। राजा के अनुकरण पर अभिजात वर्ग में पर्दे का प्रचार अधिक हो चला। राजपूत सामन्तों में भी अनेक पत्नी एवम् रक्षिता होती थीं। रक्षिताओं तथा पत्नीत्व की मर्यादा पा लेने वाली दासियों के कारण नारी के प्रति दृष्टिकोण में अनादर की भावना स्वाभाविक थी। अन्तःपुर की असूर्यम्पश्या महिलाओं की पवित्रता की रक्षा के लिए यहाँ भी नपुंसक दास थे। बाहर जाने के लिए पर्दा अथवा पालकी का व्यवहार होता था।

जिस प्रकार जीवन के सभी क्षेत्रों में सामन्त एवम् उमरागण मुगल शासकों का अनुकरण करने का प्रयास कर रहे थे, उसी प्रकार राजमहल की रानियाँ, उनका वैभव पूर्ण कृत्रिम जीवन सामन्त नारियों के आदर्श बने थे। दिवस भर में कई बार वस्त्र परिवर्तन करना, प्रसाधन के नवीनतम साधनों का प्रयोग करना, सुकुमारता की प्रतिमूर्ति बन कर संगीत तथा अन्य केलि-क्रीड़ाओं में व्यस्त रहना ही उनकी दिनचर्या थी।

आलोच्यकाल में मुगल साम्राज्य की दुर्बलता से स्वतन्त्र सामन्त राज्यों की स्थापना होने लगी थी। स्वामिभक्ति, कर्तव्य-परायणता का परित्याग कर सामन्त राज्यलिप्सा के लिए निकृष्ट कार्य भी करने को तत्पर थे। जिस परम्परा अथवा काल में वह जन्म ले रहे थे, उस समय क्षुद्र स्वार्थ के लिए पुत्र पिता का विरोध कर रहा था। रक्त सम्बन्ध की ममता को त्याग कर बन्धु-बन्धु की हत्या कर रहा था। राजनीतिक षड्यन्त्रों, प्रवंचनाओं के इस युग में सभ्यता संकुचित थी, मानव की रचनात्मक प्रतिभा कुंठित हो गई थी। इस पृष्ठभूमि में पला हुआ पुरुष कई विवाह करता था, रक्षिताओं को प्रश्रय देता था। अनाचार को आश्रय देकर वह नारी से एकनिष्ठ-पतिव्रत की आशा करता था, यह तो स्वाभाविक ही

है। पेल्सएवर्ट ने इन सामन्त तथा उमराओं के गृहों की नारी के जीवन का सजीव चित्रण किया है[1]।

वैभव एवम् सामन्ती परम्परा में पली नारी शारीरिक परिश्रम को असम्मान-जनक समझती थी। उच्च वंशों में विधवा विवाह की प्रथा नहीं थी। सामंत की मृत्यु पर उसकी अनेक स्त्रियां अपने व्यक्तिगत वैमनस्य व द्वेष को लेकर एक ही चिता पर भस्म हो जाती थीं। वैभव के स्वप्निल अंचल, विलास के मधुकानन में विश्राम करने वाली इन नारियों का जीवन पुष्प-शैया की भांति न था। एक सामान्य सन्देह पर अथवा अकारण ही वह पति द्वारा परित्यक्त की जा सकती थी। ऐसी दशा में निरुपाय नारी, जिसने परिश्रम करना जाना ही नहीं था, पथ की भिखारिणी, दासी अथवा पतिता बन जाती थी, या आत्मघात कर लेती थी। विश्व के इतिहास में मध्ययुग सामन्ती सभ्यता का जीवन रहा है। समाज के अल्प-संख्यक वर्ग ने अपनी स्वार्थपूर्ति का आधार शोषण बनाया। इसी शोषित वर्ग में नारी भी थी, जो शताब्दियों से उसके अत्याचार प्रपीड़न एवम् अन्याय को मूक होकर सह रही थी। स्वर्ण-रजत की जगमगाहट से नयनों को चकाचौंध करने वाले इस युग के समाज का मापदण्ड धन और स्वार्थ था। सुरा की माद-कता, नूपुर-ध्वनि की मधुरता, और वासना की तरलता में समस्त विधि-निषेध और नैतिक आदर्श डूब गए थे। इस विलास-जर्जर सामन्ती परम्परा में नारी की गरिमा एवम् गौरव विनष्ट हो गया था[2]।

मुग़ल साम्राज्य से प्रभावित सामन्ती जीवन में नारी अपने आदर्शों से अवश्य

---

१. उनके कुत्सित एवम् अनाचार पूर्ण जीवनका चित्रण कर पेल्सीवर्ट आगे कहता है:—

"These wretched women wear indeed the most expensive clothes, eat daintiest food, and enjoy all worldly pleasures, except one and for that one they grieve saying they would willingly give anything in exchange for a beggar's poverty".

पेल्सवर्ट—'जहांगीर' स इंडिया सं मोरलैन्ड पृ० ६६।

२. "सामन्त युग के स्त्री-पुरुष सम्बन्धी सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यन्त संकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री का शरीर यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अचल छोर को हमारी मध्ययुग की सती और हमारी बाल-विधवा अपनी छाती से चिपकाए हुई है, और दूसरे छोर को उस युग की देन वेश्या। "न स्त्री स्वतन्त्रयर्हति" के अनुसार उस युग के आर्थिक विधान में भी स्त्री के लिए कोई भी स्थान नहीं और वह पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती रही।"

पन्त—आधुनिक कवि : भूमिका : पृ० २३, स० वि० २००३, इलाहाबाद

पतित हो गई, किन्तु राजस्थान की मरुभूमि, चित्तौर की गौरवमयी स्थली में नारी के प्रति विलास भावना होते हुए भी उसका गौरव स्पृहणीय था । यद्यपि राजस्थान में भी सामन्तवादी परम्परा के अनुसार नारी वासना-तृप्ति का साधन थी, उसके सौन्दर्य को प्रधानता दी जाती थी । किन्तु राजपूत नारी जिस संस्कृति में पलती, जिस शिक्षा से अपने आदर्शों को पोषण देती वह अखण्ड पातिव्रत, अमर त्याग और बलिदान की होती थी । अतः उसके रोम-रोम में स्वदेशाभिमान, आत्म-गौरव और सतीत्व की उदात्त भावनाएँ स्फुरित रहती थीं । समय आने पर विलास-क्रीड़ा-रत-कुसुमकोमला सुकुमारियाँ अपमान एवम् दासता की अपेक्षा अग्नि-मालाओं का आलिंगन सुखद समझती थीं । राजपूत नारी साहस की प्रतिमूर्ति होती थी । पति को वह अपने ही हाथों से सामरिक-सज्जा में सज्जित करती कि वह युद्ध में विजय अथवा मरण का ही वरण करेंगे[1] । किन्तु पारस्परिक वैमनस्य एवं संघर्ष, मुगल तथा अन्य आक्रमणकारियों के आक्रमण के कारण राजपूत नारी का जीवन अनिश्चित परिस्थितियों का मध्यबिन्दु रहता था । वह राजनीति की शतरंज के मोहरे बना दी जाती थीं । मित्रता रखने के लिए कन्या-सम्प्रदान सर्वोत्तम उपाय था । प्रायः विवाह की मंगल बेला रक्त से लाल हो उठती थी, एवम् अनन्त अभिलाषा और अनुरागमयी नारी को चिता में ही पति साहचर्य मिल पाता । प्रायः विवाह [illegible] द्वारा ही निश्चित किए जाते थे, किन्तु कभी-कभी राजपूत कुमारियां अपने गौरव एवम् मान की रक्षा के लिए स्वेच्छा से भी वरण करती थीं[2] । राजपूत नारियों के रणक्षेत्र में साहस एवम् शौर्य दिखलाने के उदाहरण भी मिलते हैं[3] । चित्तौड़ के सरदार चन्द्रावत ने नारीत्व की गौरव-रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग किया । यह घटना राजस्थान की ही नहीं, प्रत्युत मानवता के इतिहास का एकमात्र उदाहरण है । चन्द्रावत की नवविवाहिता पत्नी ने पति को अपनी ओर से निश्चिन्त करने के लिए अपने हाथों से सिर काट कर स्वामी के पास भेजा[4] । स्वामिपुत्र-हित अपने पुत्र की बलि देने वाली इतिहास विश्रुत पन्नाधाय राजस्थान की ही नारी थी[5] । संकट काल एवम् विपत्ति के तम में भी राजपूत नारी

---

१. सखी अमीणा कंत री पुरी यह प्रतीत
   कै जासी सुर घुमड़ै कै आसी रण जीत
   बाँकीदास—'डिंगल में वीर रस' सम्पादक मोतीलाल मेनारिया पृ० ६७
२. रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती का राजसिंह को पति मानकर पत्र भेजना ।
   पद्मराज जैन—मेवाड़ गौरव पृ० १२६, १९८३ वि० स० कलकत्ता
   हनुमानसिंह रघुवंशी—मेवाड़ का इतिहास, पृ० २५८
३. पद्मराज जैन—मेवाड़ गौरव, पृ० ८५, १९८३ वि० स० कलकत्ता
४. पद्मराज जैन—मेवाड़ गौरव, पृ० १३२
५. पद्मराज जैन—मेवाड़ गौरव, पृ ८८

का विवेक सतत जागरुक रहता था। आपत्तिकाल में रक्षा के लिए उन्होंने न केवल हिन्दुओं को ही प्रत्युत मुसलमानों एवम् अंग्रेजों को भी राखी-बन्द भाई बनाया[1]।

राजपूतों में जौहर की प्रथा अधिक प्रचलित थी, युद्धकाल में निराशा के चरम क्षणों में पुरुष केसरिया बाना धारण कर मरने और मारने टूट पड़ते तथा स्त्रियां अग्नि की क्रोड़ में सो जाती थीं। पदलिप्सा, धन लालसा में राजपूतों ने अपनी कन्याएँ यवनों के अन्तःपुर का शृंगार करने को दीं। उनकी तलवारों का पानी राजधर्म का सहयोगी हो गया। उनके गृह की कन्याओं ने भी अंतर के प्रभंजन वीरत्व के प्रलयंकारी नाद को संयमित कर बलि-पशु के समान परिवार-हित में सहयोग दिया।

इस्लाम के संपर्क, पर्दे की प्रथा के प्रचार, समाज की पतनोन्मुख मनोवृत्ति के कारण सार्वजनिक जीवन में नारी का कोई स्थान न था। समाज की स्त्री-पुरुष का अबाध सम्मिलन स्वीकार न था, किन्तु जनसाधारण में मातृशक्ति के लिए श्रद्धा की भावना थी[2]। वृहत जनसमूह में भी वह एकाकी जा सकती थी, तथा अवध्य थी। सामाजिक जीवन में दाम्पत्य संबंध मर्यादित थे, किन्तु वह शूद्रवत् मानी जाती थी। शिक्षा के अभाव के कारण वह परिवार में भी समुचित सम्मान नहीं पा सकती थी। केवल पौराणिक द्वारा सुनी हुई धर्मकथाएं ही उनके जीवन-पथ के आदर्शों का निर्माण करती थीं। उपनयन के स्थगित हो जाने, विलास की प्रधानता होने के कारण विवाह अवस्था बहुत पहले ही कम हो गई थी। केवल क्षत्रिय परिवारों में १४-१५ वर्ष की अवस्था के बाद विवाह होता था[3]। बौद्धिक योग्यता, शिक्षा आदि के अभाव में परिवार में उसकी उपेक्षणीय स्थिति थी। अतिशय विलास के इस युग में पुरुष बहु-विवाह करता, किन्तु नारी के लिए आदर्श विधान और कड़ा हो गया। आलोच्ययुग में विश्व के सभी राष्ट्रों में धर्मशास्त्रकार पति ही को परमेश्वर बता चुके थे। भारतीय स्मृतियाँ भी इसका समर्थन कर चुकी थीं[4]। पुरुष के ऊपर नैतिकता अथवा एक पत्नी-व्रत का कोई सामाजिक बन्धन नहीं था। साहित्य में भी पातिव्रत की यह भावना व्यापक हो रही थी तथा 'सहज अपावन नारि' के लिए उद्धार का एकमात्र उपाय पति-सेवा ही बताया जा चुका

---

१. बूंदी की राजमाता ने कर्नल टाड को राखी भेजी
टाड—कर्नल टाड का भ्रमण वृत्तान्त, पृ० १०५६
संग्रामसिंह की रानी कर्णवती ने हुमायूँ को राखी भेजी
—हनुमानसिंह रघुवंशी—मेवाड़ का इतिहास, पृ १४६

२. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन
पृ० ४३७, १९३८ बनारस

३. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन, पृ० ४२६

४. सी० बैंडर—विमेन इन एंशिएंट इंडिया, पृ० ५५, लंदन १९२५

था[1]। उस रूढ़िग्रस्त वातावरण में नारी की मर्यादा एवम् पवित्रता देव-मन्दिर में नूपुरध्वनि में अश्रु बहा रही थी। पवित्र उत्सवों पर मन्दिरों तथा संस्कारों में, गृह में नर्तकियों का नृत्य धर्म एवम् समाज का अंग बन गया था। बाल-विवाह, विषम-अवस्था के विवाहों से नैतिकता का स्तर और भी गिर गया था।

सामाजिक जीवन के अन्तर्गत कहा जा चुका है कि आलोच्ययुग में संयुक्त-परिवार प्रणाली थी। पत्नी की स्थिति का निर्धारण पितृसत्ता-प्रधान आदर्श पर हुआ था। नारी का परिवार से पृथक कोई व्यक्तित्व नहीं था। उसके जीवन की पूर्णता, चरम सार्थकता आदर्श पत्नी एवं माता बनने में ही थी। साधारणतः पति के जीवन काल में पत्नी को गृह व्यवस्था में पूर्ण अधिकार था। इस समय वह गृहलक्ष्मी, सास-श्वसुर की स्नेहपात्री तथा गृह के अन्य सदस्यों के आदर एवम् स्नेह की भाजन थी। वह अन्नपूर्णा कही जाती थी और ममता, कर्मण्यता और कर्तव्य-परायणता उसकी विशेषताएँ मानी जाती थीं। निम्नवर्ग एवम् श्रमिकवर्ग की स्त्रियों का जीवन परिश्रम को पाप समझने वाली अभिजात वर्ग की स्त्रियों की तुलना में कठोर अवश्य था, किन्तु वह तुलनात्मक दृष्टि से आत्म-निर्भर थी। परित्यक्त किए जाने पर वह दूसरा विवाह कर सकती थी। जनसाधारण में नारी का जीवन सामान्यतः सन्तोषमय था। उसे परिवार के व्यक्तियों का सौहार्द्र उपलब्ध था। उत्सव, पर्वों की व्यवस्था, धार्मिक कृत्यों के विधान में उसे अपने सामाजिक अधिकारों का अभाव खटकता न था[2]। गृह-प्रबन्ध की संलग्नता में वह आत्म-तुष्ट थी, उस मूक पशु के समान जो किसी भी खूंटे से बांध देने पर कुछ समय पश्चात् चवर्ण कार्य करने लगता है। परिवार की परम्पराओं में सीमित नारी ने अपनी परिस्थिति से समझौता-सा कर लिया था। यद्यपि तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक विषमताओं में उसे उन्नति एवम् गौरव-उपलब्धि के अधिक अवसर नहीं थे, किन्तु अपने परिवार के मध्य वह सुखी थी। अल्टेकर के अनुसार नारी जीवन की यह विषमताएँ केवल सैद्धान्तिक पक्ष ही में घटित होने वाली थी, अथवा उभयनिष्ट थीं, केवल कुछ विराग-प्रधान प्रवृत्ति के व्यक्ति ही उसे शूद्र के समकक्ष घोषित करते थे। सामान्य व्यक्तियों के लिए वह पवित्रता, धार्मिकता एवम् आध्यात्मिकता की प्रतीक थी। वह राष्ट्रीय संस्कृति की संरक्षिका थी, एवम् संस्कारों के विधानों की विधात्री थी[3]।

●

१. तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १,
सं० रामचन्द्र शुक्ल—पृ० २८६, संवत् १९८० काशी

२. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४३६

३. अल्टेकर—पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृ० ४३६, ४३७

साहित्यिक प्रतिक्रिया

साहित्यिक प्रतिक्रिया

आलोच्यकालीन जीवन के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काल अपनी क्रोड़ में अनेक परिवर्तनों को लिए है। इस काल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण द्वितीय अध्याय में, एवम् उन विशिष्ट परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में नारी के स्थान का मूल्यांकन भी उसी अध्याय में किया जा चुका है। अब देखना यह है कि राजनीतिक ऊहापोह, सामाजिक विशृंखलता, धार्मिक क्रान्तियों एवम् आर्थिक वैषम्य के इस युग के नारी सम्बन्धी सामन्तवादी दृष्टिकोण का परिफलन काव्य के चित्रपट पर किन रूपों में हुआ।

अकर्मण्यता एवम् अव्यावहारिकता के कारण व्यक्तिवादी राजपूतों के साम्राज्य-स्थापन के स्वप्नों का प्रभात हो चुका था। उनकी मनोरम कामनाओं के ध्वंस पर यवनों की राज्यलक्ष्मी क्रीड़ा कर रही थी। हिन्दू देव-मूर्तियों का निर्बाध विनाश, सोमनाथ की रक्षा में किया गया वीरों का आत्मोसर्ग, नारी मर्यादा अपहरण जन-हृदय की श्रद्धा पर व्यंग्य कर रहा था। जनता के अधरों पर यह मूक प्रश्न, गजेन्द्र के विपत्ति भंजन भगवान, द्रौपदी की टेर सुनकर आनेवाले कृष्ण क्या कर्ण-कुहरों को बन्द किए हुए हैं, एक भयानक सन्देह, विध्वंसक अविश्वास की झंझा लिए हुए था। साहित्यिक क्षेत्र में इसी समय भक्ति का पुण्य प्रवाह आया[1]।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा निष्कर्ष निकाल कर कुछ विद्वानों ने मध्ययुग के हिन्दी साहित्य को पराभूत, हतदर्प जाति की मानसिक प्रतिक्रियाओं का अंकन बताया है, जिसमें उसकी आशा-निराशाओं, विफलताओं और कुंठाओं ने अभिव्यक्ति

---

१. "ऐसे समय दक्षिण से भक्ति का आगमन हुआ जो बिजली की चमक के समान इस विशाल देश के इस कोने से उस कोने तक फैल गई। इसने दो रूपों में अपने आपको प्रकाशित किया। यही वह दोनों धाराएँ हैं जिन्हें निर्गुण व सगुण धारा का नाम दे दिया गया है। इन दोनों साधनाओं ने दो पूर्ववर्ती धर्ममतों को केन्द्र बनाकर ही अपने आपको प्रकट किया, सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अथवा नाथपंथी साधकों के निर्गुण परब्रह्म को।"

हजारीप्रसाद द्विवेदी—'मध्यकालीन धर्मसाधना' पृ० ६१,

स० १९५२ इलाहाबाद

पाई है। तत्कालीन वातावरण में किसी अन्य प्रकार के साहित्य का सर्जन असंभव था, द्विवेदी जी ने इस तर्क को निर्मूल सिद्ध किया है[1]।

तत्कालीन राजनीतिक जीवन में अवसाद एवम् नैराश्य की छाया व्याप्त थी। धर्म के क्षेत्र में भी वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों द्वारा मन्त्र-तन्त्र एवम् कर्मकाण्डों को प्राधान्य दिया जा चुका था। जनसाधारण सिद्धों एवम् योगियों की बानियों तथा उनके सिद्धान्तों से अभिभूत था, किन्तु शास्त्रविद् पण्डित ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों और गीता पर भाष्य लिखकर भक्ति के नवीन सिद्धान्तों की उद्भावना कर रहे थे, इन सबसे पोषण और प्रौढ़ता प्राप्त भक्ति के प्रवाह से जन-हृदय को शक्ति तथा सांत्वना मिली। रामानुजाचार्य द्वारा शास्त्रीय पद्धति पर प्रतिपादित भक्ति निर्बल का अवलम्ब बनी। गुजरात के श्री मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित वैष्णव सम्प्रदाय से प्रेरणा पाकर जयदेव के कृष्ण-राधा प्रणय की रागिनी अमर हो उठी।

ईसा की पंद्रहवीं शती में रामानन्द की शिष्यपरम्परा में रामानुज ने विष्णु-अवतार राम की उपासना के लिए सम्प्रदाय की स्थापना की। वल्लभ ने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति लेकर कृष्णोपासना की नवीन परम्परा का प्रवर्तन किया। इस प्रकार सगुण भक्ति-मार्ग की राम-कृष्ण काव्यधाराओं का प्रारम्भ हुआ। इन विशिष्ट साधनाओं के अतिरिक्त जनसाधारण के लिए सुलभ सामान्य भक्ति-मार्ग निकालने का प्रयास हो रहा था। नाथपंथी योगी जन-सामान्य के लिए जाति-पाँति के भेदभाव से परे एक सामान्य भक्तिमार्ग को निकालने की चेष्टा कर चुके थे, किन्तु उनकी साधना में हार्दिकता का अभाव था। कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्तिमार्ग में हृदय पक्ष को प्रधानता दी गई[2]।

---

१. "मैं इन दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ, अगर यह बातें मान भी ली जावें तो भी यह कहने का साहस करता हूं कि फिर भी इस साहित्य का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि दस सौ वर्ष तक दस करोड़ कुचले हुए मनुष्यों की बात भी मानवता की प्रगति के अनुसन्धान के लिए केवल अनुपेक्षणीय ही नहीं बल्कि अवश्य ज्ञातव्य वस्तु है। ऐसा कहके मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"

हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २

२. "कबीर ने जिस प्रकार निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदान्त का पल्ला पकड़ा उसी प्रकार ईश्वर की भक्ति के लिए सूफियों का प्रेमतत्व लिया और अपना निर्गुण पंथ बड़ी धूमधाम से निकाला।"

रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४,

स० २०१२ काशी

हिन्दी साहित्य में भक्ति की यह दो धाराएँ काव्य में प्रस्फुटित हो दो शताब्दियों तक बराबर समानान्तर चलती रहीं। निर्गुण काव्यधारा की दो शाखाएँ हो गई— सन्तकाव्य तथा सूफी काव्य। सगुण काव्य का पर्यवसान कृष्ण एवम् राम-भक्ति धारा में हुआ। प्रेम-मार्ग अथवा सूफी-काव्य में कवियों ने कल्पित प्रेम-कहानियों, हिन्दू घर की प्रचलित लोक-कथाओं को लेकर लौकिक प्रणय द्वारा दिव्य प्रेम की व्यंजना की। इन सूफी कवियों ने परमात्मा को स्त्री और जीवात्मा को पुरुष मान कर उसके प्रति प्रणय-निवेदन किया। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त को लेकर, रामभक्त कवियों द्वारा दैनिक जीवन के कर्मक्षेत्र में राम के आदर्शात्मक चरित्र की अवतारणा की गई। तुलसी ने अविश्वास की झंझा से त्रस्त जनता को जीवन-मार्ग पर चलने का मधुमय पुण्य प्रकाश रामचरितमानस द्वारा दिया। वल्लभ ने भगवान कृष्ण के आनन्दमय रसेश्वर स्वरूप को लेकर जिस प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रचार किया, अष्टछाप द्वारा अभिव्यंजना पाकर वह जन-हृदय के अत्यन्त निकट थी।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही वीरकाव्य की गौरवमयी परम्परा चली आ रही थी। इस वीरकाव्य का वर्ण्य विषय युद्ध और प्रेम, वीर और शृंगार ही था। नारी नख-शिख चित्रण, युद्धवर्णन इन वीर-गीतों के आवश्यक अंग थे। आलोच्यकाल में यद्यपि वीरता और शौर्य को प्रश्रय देने वाले राजपूत अधिकार-च्युत हो गए थे, किन्तु वीरगीतों की परम्परा अनवरत चल रही थी। पराभव के अवसाद के मध्य भी चारण-चारणी वीररसात्मक काव्य का सर्जन कर रहे थे। इन वीर-काव्यों में नारी के दो रूप मिलते हैं, युद्ध में विजेता की अधिकृत वस्तु बनने वाली रूपसी कामिनी और वीरता से पूर्ण आदर्श रूप।

आलोच्यकाल के अन्तर्गत मुगल शासनकाल में देश बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था, अतः वैभव अपने चरमोत्कर्ष पर था। फारसी और ईरानी संस्कृति के सम्पर्क से विलासिता को प्रश्रय मिला। युग की प्रवृत्ति के प्रभाव से कालान्तर में कृष्ण-भक्ति शाखा की प्रेमलक्षणा भक्ति का पर्यवसान, [illegible] प्रणय-लीला वर्णन में हो गया। शाही दरबारों में प्रश्रय पाए हुए साहित्य में सस्ते प्रेम एवम् विलासिता को प्रश्रय दिया गया। रीति एवम् अलंकार को काव्य की आत्मा मानने वाले इन रीतिकालीन कवियों ने रस, अलंकार और नायिकाभेद पर काव्य रचना की[1]।

---

१. "इसमें सन्देह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक् समावेश पहले-पहल आचार्य केशवदास ने ही किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।"

रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३२
सं० २०१२, काशी

रीतिकाल में कवि और आचार्य का एकीकरण हो गया। जब तक काव्य में अलंकारों का निर्देश, नायिकाओं के नवीनतम भेदों की उद्भावना न होती, वह उस युग के मापदण्ड पर खरा न उतरता। इस युग में तीन प्रकार की कविताएं सामने आती हैं :—शृंगार, भक्ति और रीतिविषयक। पर साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति रूढ़िवादिता और शृंगार-परायणता थी। संस्कृत साहित्य के विभिन्न सम्प्रदाय और वादों में ध्वनि, रस और अलंकार ग्रहीत हुए, शृंगार का रसराजत्व सर्वमान्य था। शृंगार के विभिन्न रूपों में उद्दीपन-विभाव ने ही कवियों को अधिक आकर्षित किया। नारी शृंगार के उपकरण रूप में प्रस्तुत हुई।

साहित्य जीवन की ही अभिव्यक्ति होता है। युग की परिस्थितियों से प्रभावित मानव की आशाएँ, आकांक्षाएँ तथा विचारधाराएँ तत्कालीन साहित्य में व्यंजना पाती हैं। कवि अथवा साहित्यकार अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता, एवम् आदर्शों को रखते हुए भी समकालीन परिस्थितियों के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता है। जिस देश एवम् काल में साहित्यकार उत्पन्न होकर, पालित-पोषित होता है, उसकी परिस्थितियाँ साहित्यकार के उपचेतन मन पर अपनी स्थायी एवम् अमिट छाप लगा देती हैं। आलोच्य साहित्य इस स्वयंसिद्ध सत्य का अपवाद नहीं है। साहित्य की विभिन्न धाराओं के कवियों पर उनकी समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्पष्ट है। आलोच्यकाल के प्रारंभ में समाज में धर्म को प्रमुखता मिली थी। इहलोक की असारता से विमुख मानव परलोक चिन्तन में रत था। अतः स्वभावतः ही वह आध्यात्मिक साधना में बाधक पुत्र-कलत्र-धन की मोहमाया के परित्याग के पक्ष में था। अतः भक्तिकाव्य की सभी धाराओं ने सैद्धान्तिक मतभेद होते हुए भी विराग और संयमपूर्ण जीवन को ही काम्य बताया। आध्यात्मिक साधना के सर्वप्रमुख अवरोध, माया के सबसे प्रबल आकर्षण नारी के परित्याग की प्रवृत्ति सन्तकाव्य, रामकाव्य तथा कृष्णकाव्य में मिलती है। तत्कालीन सामाजिक विषमताओं के मध्य नारी की हीन, अनैतिक स्थिति ने ही उनको नारी के वासनामय, कृष्ण रूप के अंकन की प्रेरणा दी।

समय के अनवरत गतिमान चक्र के साथ जीवनगत परिस्थितियों एवम् आदर्शों में भी अन्तर हुआ। मुगलों की सफल राजनीति की क्रोड़ में विश्राम करती हुई विलासिता की छाया ने युग और समाज को आच्छन्न कर लिया था। शृंगार के मदमत्त प्रवाह में नैतिक मान बह गए थे। तत्कालीन समाज में व्यक्ति का उद्देश्य सौख्य एवम् विलास की उपलब्धि ही था। अन्य विलास सामग्रियों में नारी भी परिगणित की जाती थी। इन परिस्थितियों के मध्य विकसित साहित्य में शृंगार रस का बाहुल्य होना स्वाभाविक था। इन विलासपूर्ण परिस्थितियों का प्रभाव रीतिकाव्य की अतिशय शृंगारिकता और विलास की भावना के रूप में स्पष्ट है। इन शृंगारी कवियों ने शृंगार रस के अंग-उपांगों पर काव्य रचना की। नायिकाभेद, ऋतुवर्णन,

नखशिख-चित्रण काव्य के आकर्षक अंग बने। इन शृंगारी कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण कौतुक अथवा मनोविनोद का ही है। आलोच्य वीरकाव्य का अधिकांश भाग इसी भोग-प्रधान वातावरण में प्रणीत हुआ। अतः उसमें वीर रस के उद्रेक के स्थान पर शृंगारी भावनाओं का ही प्राधान्य है। इन वीरकाव्यों में वर्णित नारी का ओजस्वी, शौर्यपूर्ण रूप उसके कामिनी रूप में प्रच्छन्न हो जाता है।

: ३ :

वीरकाव्य में नारी

हिन्दी साहित्य के पुण्य प्रभात में रण और विलास दोनों में राजाओं के सहचर चारणों ने, मां भारती के चरणों में वीरगाथा की श्रद्धांजलि अर्पित की। उस समय वीररस के आलम्बन थे संघर्ष [illegible] सामन्त। सामान्य मानापमान पर शोणित की धारा बहा देना, मिथ्या अहम् की पुष्टि और सुन्दरी नारी की प्राप्ति के लिए संहार लीला करना जिनका सिद्धान्त था। इन वीरों के हृदय में शौर्य एवम् प्रताप का मदमत्त प्रवाह था और साथ ही स्वर्गादपि-गरीयसी जननी जन्मभूमि के लिए अनन्त अनुराग और श्रद्धा की भावना। अपनी कुल-मर्यादा के लिए प्राणोत्सर्ग करना अत्यन्त गौरवास्पद समझा जाता था। इनकी कुल-ललनाएँ भी संघर्ष और शौर्य की दोला पर आत्मोत्सर्ग एवम् देश-प्रेम के पाठ पढ़ती थीं। विलास-शैया की सुन्दरी जीवन-धन को अपने हाथों ही रणसज्जा में सजातीं। युद्ध में पति की गौरवमयी मृत्यु उनकी काम्य थी, चिता और सहमरण ही उनकी अनन्त सुहाग-शैया थी। राजस्थान का डिंगल-काव्य नारी हृदय की गौरवपूर्ण भावनाओं से आन्दोलित है[1]। रण के वाद्य सुनकर कामिनी भयभीत नहीं होती थी, प्रत्युत रण उनके क्षात्रधर्म के आदर्श के अनुसार एक महोत्सव था, जिसमें भाग लेकर वीरगति प्राप्त हुए पति की सहगामिनी बनना राजपूत रमणी के लिए पुण्य एवम् कल्याणमय था[2]।

समय ने हिन्दू जाति के गौरव पर पराभव की कालिमा को आच्छादित कर

---

१. "घर आंगण माहे घणा, त्रासै पड़िया पड़ाव।
युद्ध आंगन सोहे, जिके बालम बास बसाव॥"
बांकीदास—डिंगल में वीर रस, पृ० ७५, प्र० स० १९९७

- मोतीलाल मेनारिया

२. "आज घरै सासू कहै, हरख अचानक काय।
बहू वलेंया हूलसै, पुत्र मरेबा जाय॥"

सूर्यमल्ल—डिंगल में वीर-रस पृ० १०५

"नायण आज न मांड़ पग, काल सुणीणे जंग।
धारा लागी जै धणी, तो दीजै घण रँग॥"

सूर्यमल्ल—डिंगल में वीर-रस पृ० १०६

२ और ३ संख्या के उद्धरण कविराज सूर्यमल्ल की रचना से उद्धृत हैं जो आलोचयकाल से आगे के हैं।

दिया। राजपूत-वंशोत्पन्न मानसिंह महानता को बिसरा कर विजेताओं के प्रताप से अभिभूत हो उनसे रोटी-बेटी के सम्बन्ध करने लगे। पराभूत देश के कवियों के समक्ष वीररस के आलम्बन न थे, भस्मावगुण्ठित अग्निकण के समान यत्र-तत्र शौर्य एवम् वीरत्व के छिट-पुट उदाहरण उपलब्ध थे। आलोच्यकाल में राजस्थान में कवियों ने चारणकाल की वीर एवम् शृंगार रस की मिश्रित परम्परा को स्थायित्व दिया। राजस्थान में १५०० से १८०० तक बातों, ख्यातों, मुक्त छन्दों के रूप में वीर-काव्यों की परम्परा चलती रही। इस काल में वीर-काव्य का नेतृत्व ब्रजभाषा के कवियों ने किया। ब्रज की कोमलकान्त पदावली वीर रस की सम्यक अभिव्यक्ति करने में असमर्थ थी, अतः प्राचीन डिंगल के अनुकरण पर ब्रजभाषा को मोड़ा गया। किन्तु युद्ध-क्षेत्र की भीषणता के लिए प्रस्तुत नादात्मक कठोरता एक असफल प्रयास बन गई। इस काल के वीर काव्य-सृष्टा, एकाध अपवादों को छोड़कर सामन्ती जीवन की निश्चिन्तता, वैभव एवम् विलास की भूमिका के अभिनेता थे। युद्धक्षेत्र का व्यावहारिक अनुभव उन्हें न था, अतः वर्णन के लिए उन्होंने पूर्ववर्ती चारणों का ही सहारा लिया। पर आलोच्यकाल के वीर-काव्य में भी नारी के दो रूप मिलते हैं—वीर और शृंगारी[1]। यद्यपि इस समय भी नारियों के प्रताप और शौर्य के उदाहरण मिलते हैं, पर युग की परिस्थितियों तथा विलासिता के कारण वीर-काव्य में भी उसके शृंगारिक रूप को ही अधिक प्रधानता मिली[2]।

परवर्ती वीर-काव्य का वर्णनीय विषय सामन्त-युग का उच्छृङ्खल शौर्य, नारीत्व की महिमा और वीरों का आत्मोत्सर्ग था, किन्तु इस काल में प्रशस्ति के रूप में ब्रज-भाषा में काव्य रचना की एक नवीन परम्परा प्रस्तुत हुई। इन कवियों की प्रवृत्ति चरित्र-चित्रण की ओर न थी। ऐतिहासिक सामग्री की बहुलता होने पर भी, इनके काव्यों में इतिवृत्तात्मक शैली का आश्रय लेकर व्यक्तियों, घटनाओं और वस्तुओं का उल्लेख मात्र मिलता है। मानव हृदय की सूक्ष्म वृत्तियों

---

१. "उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के फलस्वरूप शृंगार की प्रेरणा बन गया। एक ओर राजनीतिक विषमताओं ने जहाँ उसको जलकर भस्म हो जाने की शक्ति दी वहीं सामाजिक क्षेत्र में उसकी सुलभता, सरलता और सौन्दर्य ने उसके व्यक्तित्व को अनुरंजक मात्र बना दिया। वाह्य और आन्तरिक कारणों के कारण उनका जो रूप बना उसमें दो भावनाएँ प्रधान थीं—शौर्य और शृंगार।"

सावित्री सिनहा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० २४, १९५३ दिल्ली

२. "वीर-काव्य के नाम पर लिखे साहित्य में नारी के ओजस्वी रूप प्रायः नहीं मिलते हैं। इस युग की हिन्दी रचनाओं में चित्रित नारी चण्डी और दुर्गा नहीं केवल कामिनी है।"

सावित्री सिनहा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० २५

के विश्लेषण, भावनाओं के घात-प्रतिघात के चित्रण की क्षमता इन कवियों में न थी। उन्होंने अपने पात्र-पात्रियों की परम्परागत विशेषताओं का ही उल्लेख किया है। शृंगारिक भावना के अनुरोध से नारी के रूप-चित्रण में नख-शिख एवम् सौन्दर्य का निरूपण हुआ। नायिका के रूप में उसका चित्रण कर नारी-भेदों का परिगणन हुआ। इन वीर-काव्यों में नारी का दूसरा रूप उज्ज्वल एवम् महान है। उसका विकास कर्तव्यपथ पर दृढ़ रहने वाली वीर क्षत्राणी, पतिहित सर्वस्वार्पण करने वाली सती, वीरता एवम् शौर्य के उन्मेष द्वारा कर्तव्य-भावना को जागरूक करनेवाली महिमामयी जननी के रूप में हुआ है[1]। रीतिकालीन युग के वासनात्मक शृंगारपूर्ण वातावरण में नारी का यह रूप कमल-पत्रवत् के विलासिता की विषाक्त छाया से परे है।

इस युग में काव्य रचना करनेवाले चारण अथवा चारणी राज्याश्रित होते थे। विलास और यौवन की उग्र दीपावली मनानेवाले स्वामियों की छत्रछाया में शृंगार काव्य की बहुलता अस्वाभाविक नहीं है। फिर भी वीर काव्यों का सर्जन होता रहा। वस्तुतः आलोच्यकाल और उसके बाद के समय में पराभव की धूमिलता में भी कुछ चारण वीरता, पवित्रता और कल्याण के प्रतीक रहे हैं। नारी-भावना वीरता और शौर्य की भित्ति पर कर्तव्य के रंगों से मूर्त हुई है।

नारी का शृङ्गारिक रूप

आलोच्यकाल हिन्दी साहित्य की दो धाराओं को मिश्रित करता है। उसका परवर्ती युग भक्ति-काल और उत्तरकाल रीतिकाल की संज्ञा से अभिहित हुआ। तत्कालीन समाज में शृंगार का उन्मुक्त प्रवाह बह रहा था, राजाश्रय में रहने वाले कवियों का कार्य आश्रयदाताओं की विरुदावलि का गान तथा विभिन्न प्रकार के नारी-रूपों एवम् प्रवृत्तियों का ही वर्णन कर उनकी विलासभावना को उत्तेजित करना था। मुगल शासन की शान्ति में विलासिता की तन्द्रा में युग और समाज अंगड़ाई ले रहा था। अतः वीर-काव्य में भी नारी का शृंगार-सौरभ की मादकता से बोझिल स्वरूप ही दृष्टिगत हुआ। उसके वीरांगना, वीर माता और क्षत्राणी के प्रांजल रूप को शृंगार के धूम ने प्रच्छन्न-सा कर दिया। वस्तुतः नारी का यह शृंगारिक चित्रण रासो की परम्परा से उत्तराधिकार में प्राप्त था। इन रासो-ग्रन्थों में अभीप्सित सुन्दरी के नख-शिख का सांगोपांग निरूपण होता था। इस प्रवृत्ति को उत्तरवर्ती वीर-काव्यों में प्रधानता मिली।

जटमल (१५६६-७१ ई०) १६२३-२८ सं, मान (१६२० ई०) १६७७, सं. सूदन (१७६३ ई०) १८२० सं० के आसपास, लाल (१७०७ ई०) १७६४ सं० के आसपास और केशव (१५५५-१६१७ ई०) १६१२-७४ सं०, यहां तक कि शृंगार

---

१. छत्र-प्रकाश में छत्रसाल की माता लालकुँवरि ठकुरानी की प्रत्युत्पन्न मति, वीरता एवं आत्मोत्सर्ग, पृ० ६३—६५ तक
लाल —छत्रप्रकाश (सं० श्यामसुन्दर दास)

की तन्द्रा में वीरत्व का सिंहनाद सुनाने वाले भूषण (१६१३ ई०) १६७० सं० भी नारी को विलास-शैया, प्रसाधन, कामकेलि एवम् दौर्बल्य से पृथक न देख सके। इन चारणों के आश्रयदाताओं में से अधिकांश ने मुगल आधीनता स्वीकार कर, उनके विलास एवम् वैभव की आधारशिला पर स्थित जीवन-दर्शन को आदर्श मान लिया था। अतः उनके आश्रित कवियों के लिए नायिका-भेद-वर्णन[1], नख-शिख वर्णन का काव्य सर्जन स्वाभाविक ही था। इस काव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि स्वयंवर की प्रथा उस समय केवल रूढ़ि-निर्वाह मात्र थी। वस्तुतः नारी भी अन्य उपभोग-सामग्रियों के समान एक आवश्यक उपकरण थी। जिसके पास शौर्य शक्ति एवम् धन की बहुलता होती, वही उसे हस्तगत कर सकता था। रूपवती नारी को देखकर अथवा उसका रूप-वर्णन सुन कामातुर व्यक्ति लालायित हो उठते। राघवचेतन अलाउद्दीन के समक्ष पद्मिनी के रूप का चित्रण करता है, यह चित्रण रीतिकालीन कविता के समान ही है[2]। मान के राजविलास में भी नारी का जो अल्प चित्रण हुआ है उसमें भी नख-शिख वर्णन की प्रधानता है[3]।

सूदन के सुजान-चरित में भी नारी के वर्णन में उसके भोगमय और शौर्य-पूर्ण दोनों रूप छिपे हुए हैं। युद्ध के लिए सन्नद्ध सुजानराज अन्तःपुर में जाकर पहले मदिरापान करता है, पुनः उसके कक्ष में शृंगार एवम् काम क्रीड़ा का नग्न चित्रण मिलता है। शृंगार की मादकता में लीन कामिनी को पति को रण के लिए

---

१. जटमल कवि—गोरा-बादल की कथा—पृ० स० १०–१४ तक
स्त्री भेद वर्णन : १६६१ सं० प्रयाग

२. "सेत स्याम अरु अरुण नैन राजीव विराजत
कीर चंच नासिका, रूपा रमाहू लाजत
बीजा जिमि चमकत कान्ति जिमि कुन्दन सोहै"

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृ० सं० ११

"हरि लंक अंक कंचन वरण नार सकल सिर मुकुट मणि
अलावद्दीन सुलतान सुणि पदमिन लक्खण पद मणि"

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृ० सं० १२

३. "भगिनी जस घर एक मन शुभ लच्छिमी समान,
वेष बाल षोरस बरस, नख शिख रूप निधान।
कहिए शुभ राजकुमारी, अच्छी अपच्छरी अनुसारी,
वपु शोभा कंचन बसी, हरिहर ब्रह्मा मनहरनी।
सचि, सुरभि सुकोमल सारी, कब्बरि मनि नागिनि कारी,
सिर मोती मांग सुराजै, रावरी कनक माथ राजै।"

मान—राजविलास पृ० १०४, १०५ ना० प्र० स० काशी

प्रोत्साहन देने का अवदान कहां है, राजा अवश्य उसे सांत्वना देता है[1]। इन वीर काव्यों में नारी के शृंगारी रूप की प्रधानता है। केशव के वीरसिंहदेव चरित में तो नारी केवल विलासिनी एवम् कामिनी के रूप में चित्रित हुई है। वह नित नूतन प्रसाधन, वेषभूषा से निज को सज्जित करती है, अनेक प्रकार से अपना मनोरंजन करती है। वीरसिंहदेव का उसकी अनेक पत्नियों के साथ जलक्रीड़ा का विवरण भी मिलता है।

नारियों की दिनचर्या

कहीं वह परस्पर संलाप करती हुई, आनन्द एवम् हर्ष की दोला पर तरंगित हो रही है, कहीं प्रिय के अवगुणों का कथन कर रही है और कहीं उसका गुणानुवाद। कहीं वीरसिंहदेव की अनेक पत्नियाँ शुक सारिकादि पढ़ा रही हैं। उनकी पार्वती, पद्मावती आदि अनेक रूपसी स्त्रियाँ हैं जिनके साथ वीरसिंहदेव विहार करते हैं[2]। उनके प्रासाद की यह नारियाँ विविध ललित कलाओं में पारंगत हैं[3]। राजा वीरसिंह देव के अन्तःपुर में रीतिकालीन वैभव एवम् विलास का वातावरण है उसमें सुन्दर मखमली गलीचों एवम् जड़ाऊ पलंगों की सज्जा है। महाराजा वीरसिंहदेव अनेक सुन्दरियों द्वारा सेवित हैं[4]। केशव के वीरसिंहदेव-चरित में

---

१. "बैठे एक आसन सुबासन के बासन से,
भूषन उजासतु प्रकासु बहु कीनौ है।
सरस विलोकि फेरि करके परस भए,
वरस परस दोऊ, रति भति कीनो है।"

सूदन—सुजान चरित पृ० ३५ से ३८ तक

२. "कहुं माननि मान समेत, कहुं मनावति सखि सुख हेत।
सारो कनि पढ़ावत एक, परवाने गुनि हंसत अनेक॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २५१

"कोऊ उर सींचत तरुमूल, कोऊ तोरति फूले फूल।
एकै चतुर चुगावति मोर, लीनै सारो सुक चितचोर॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६८

३. "सूक्ष्म वाणी दीरघ अर्थ, पढ़ति पढ़ावति सुकनि समर्थ।
दक्षिण दशा कहावै वाम्, गुन गन वलित सु अबलानाम्॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६९

४. "सदननि ते निकसी सुन्दरी महाराज के पायन परी।
मानौ सेवति भांति अनन्त, निधिपति को निधि मूरति वन्त॥
बहुरि कुंकुमा चन्दन वारि, चरण पखारे वारिय चारि॥"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६१

"अचल चित्त, चितवन चल बनी, सुन्दर चातुर बन मनधनी,
उर अन्तर मृदु उरज कठोर, सुद्ध सुभाव भाव चितचोर।"

केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६६

श्रृंगार एवम् विलास में रत रहने वाली रीतिकालीन नारी के रूढ़ रूप का ही चित्रण मिलता है। अग्निमालाओं को पुष्पशैया समझने वाली वीर, कर्तव्यपरायण नारी का अभाव है। इस सामन्ती वातावरण में नारी का कर्तव्य मान करने, गप मारने और शुकसारिका पढ़ाने में ही सीमित है। सर्वत्र वह मानिनी अथवा संयोग [illegible]ललिता नायिका है, जननी के कल्याण-विधायक रूप के दर्शन इस काव्य में कम होते हैं।

तत्कालीन समाज में नारी

श्रृंगार के उस युग में जब मर्यादा और सीमा को तोड़ कर विलास का प्रवाह अबाध बह रहा था, पवित्रता के एकपक्षीय आदर्श तथा पातिव्रत पर अधिक बल दिया जा रहा था। पत्नी के वांछित गुण थे, मूक सहनशीलता धरती के सदृश धैर्य। पति को अनेक स्त्रियों से विवाह करने के लिए समाज द्वारा अधिकार था, साथ ही अपनी अतृप्ति और तृष्णा की पूर्ति के लिए वह रक्षिताओं को प्रश्रय दे सकता था। जब निरीह और मूक नारी एक ही व्यक्ति के साथ बन्धनबद्ध हो जाती थी और उससे अपेक्षा की जाती थी कि पति के निधन के पश्चात् उसके पार्थिव अवशेष के साथ वह अग्नि का आश्रय ले[1]। किन्तु यद्यपि नारी विलास परितृप्ति का साधन थी, बहु-विवाह भी प्रचलित था, किन्तु इन समस्त सामाजिक विषमताओं के मध्य भी मुख्य पत्नी पति के धार्मिक कार्यों में सहयोग देकर सह-धर्मिणी के आसन को सुशोभित करती थी[2]।

भूषण द्वारा नारी-चित्रण

युग और राज्य से विद्रोह करने वाले अमर वीरकाव्यकार भूषण (१६१३ ई०) १६७० सं० ने भी नारी को उसकी तथाकथित सुकुमारता, दुर्बलता और हीनता से पृथक रखकर नहीं देखा। उन्होंने अपने [illegible] में उदात्त विशेषताओं का समावेश किया, पर उन वीरों को जन्म देने वाली, मांसपिण्ड में भावनाओं की दीप्ति देने वाली आदर्श जननी का त्याग और महत्त्व उनके युग की विलासिता की चमक से उद्भ्रान्त नयन देख न सके। उनके द्वारा वर्णित नारी रूप में प्रमुखतः मुगल तथा यवन नारी की दयनीय दशा का ही चित्रण है। संभवतः पर-दारा-हरण को पवित्र व्यापार समझने वाले शत्रु यवनों की असूर्यम्पश्या, ललित, कुसुम-कोमला नारी की दुर्दशा के अंकन से राष्ट्रीयता के अमर पुजारी के आहत उर को यवनों के मर्मस्थान का स्पर्श करने में परितोष

---

१. "पति पतिनी बहु करै, पतिनी न पति बहु करहीं।
पतिहित पत्नी जरहि, पति न पत्नी हित वरै॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० १८,४ सं० २०१३ प्रयाग

२. "रानी पारवती तिहिकाल, बोली सुमति, सत्तितिहि बाल,
जोरी गांठ विवेक विचारि, वाम अंग सोभी सुखकारि॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० १८४

मिला होगा[1]।

नारी श्रृंगार का उपकरण

भूषण द्वारा प्रस्तुत विवरण से ज्ञात होता है कि नारी वैभव और विलास की दासी बन अपने नारीत्व एवम् महत्व को बिसरा बैठी थीं। कवि ने इन भोग और विलास में रत अरिनारियों की आनंदमयी दिनचर्या के साथ उनकी वर्तमान दीन दशा की विषमता दिखाई। सूदन ने भी समान चित्रण किया है[2]।

---

१. "शिवा जी के भीषण आक्रमण के भय की अनवरत छाया में वैभव की उन सुकुमार प्रतिमाओं को ऐश्वर्य की नश्वरता व राजलक्ष्मी की चपलता का आभास मिलता है। घटित अघटनाओं का संघटन करने में निपुण निर्मम नीति का नग्न नृत्य देखने को बाधित होना पड़ता है।"

हरीश वत्रा—"रीतिकाल के दो अमर वीर काव्यकार भूषण और लाल : सप्तसिन्धु १९५५ : पृ० ४१

"उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग
सोई निसिदिन सगवग चली जाती है,
आती अकुलाती, मुर्झाती न छिपाती गात
बात न सोहाती बोलै अति अनखाती है,
भूषन भनत बली ताहि के सपूत सिवा
तेरी धाक सुनै अरि नारी बिलखाती है,
जोन्ह में न जाती, वे ही धूप में चलि जाती पुनि
कोऊ करे थाती, कोऊ रोती पीटि छाती ॥"

भूषण—शिवा बावनी, पृ० ८ : भूषण ग्र० हरिऔध :

२. "भूषन भनत पति बांह बहियां न तेऊ
छहियां छबीली ताकि रहिया रुखन की,
बालिया बिथुर ज्यों आलिया नलिन पर
लालिया मलिन मुगलानिया मुखन की।"

भूषण—शिवा बावनी : भूषण ग्रन्थावली : पृ० ५

"अतर गुलाब रस चोवा घनसार सब
सहज सुवास की सुधि बिसराती है,
पल भर पलंगा ते भूमि धरति पांव
भूली पान खात फिरै बान बिलखाती है।"

भूषण—शिवा बावनी, पृ० १०

"जार जार रोती क्यों बजार मीरजादी यारो
जिनका छिपाउ महताब आफताब से"

सूदन—सुजान चरित, : राधाकृष्णदास : पृ० १७१

नारी का असत रूप

आलोच्य वीरकाव्य में युग की आदर्शविहीन संस्कृति के प्रभाव से ऐसी नारियाँ भी मिलती हैं जिनके लिए क्षुद्र स्वार्थ ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। केशव के वीरसिंहदेव-चरित की कल्यानदे और छत्रप्रकाश की हीरादेवी दोनों ही ऐसी नारी हैं। कल्यानदे क्षत्रिय आदर्शों को त्याग देती है[1]। हीरादेवी कपटपूर्ण है, और अपने स्वार्थ हेतु निकृष्ट कर्म भी करने को प्रस्तुत हो जाती है[2]।

नारी का वीर रूप

आलोच्य वीर-काव्य में नारी वीरांगना, वीर प्रसविनी के रूप में बहुत कम दृष्टिगत होती है, किन्तु कहीं-कहीं पर उसका यह कल्याणमय रूप सुप्त कर्तव्य भावना को जाग्रत कर देश और समाज के उत्थान में सहायक होता है। लाल और मान, जटमल और सूदन इन समस्त कवियों के काव्य में नारी का वह सत और ओजस्वी रूप मिलता है, जो चिरकाल से वन्दना और उपासना का पात्र रहा है। रीतिकालीन वैभवमय, विलासयुक्त वातावरण में चित्रित नारी के इस रूप में सक्रियता और विवेक, त्याग और कर्मण्यता की भावना है। जननी और जाया दोनों ही रूपों में उनके चरित्र के इस पक्ष की सुन्दर व्यंजना हुई है।

'गोरा-बादल की कथा' की पद्मिनी एक वीर नारी है। मर्यादा की रक्षा और वंश का सम्मान उसके लिए सौख्योपयोग से बढ़ कर है। वह अपने पति से प्राणों के मूल्य पर भी सम्मान के गौरव की रक्षा करने की विनय करती है[3]। बादल की माता का वात्सल्यपूर्ण हृदय सहजभाव से अपने जीवन के आश्रय बालक की क्षेम के लिए चिन्तित है, वह बादल की स्त्री को उसे रण से विमुख करने को भेजती है। बादल की नव-विवाहिता पत्नी पहले अपने पति को विलास सुख के

"खारौ खतरानी कतरानी सतरानी फिरै
वांमनी विन्यानी तुरकानी थररानी है।
काइथी अरोरी थोरी वैसनि तमोरी गोरी
काछिनी किरानी और भट्यानी महारानी है।
हीरी बहु कीरी नरनीरी तीरी पीरी भई
सूरज के तेज चन्द्रकला ज्यों परानी है।"

सूदन—सुजान-चरित, : राधाकृष्णदास : पृ० १६८

१. केशव—वीरसिंह देव चरित—पृ० ६६-२०१३ सं० प्रयाग

२. लाल—छत्रप्रकाश पृ० ५५, ५६, व ६८

३. "तजिए पीव प्रान, अवर को नार न दीजै,
काल न छौड़ै कोइ सीस दै जग जस लीजै।
मत कलंक लगावो आपको भो सत खो बेजान,
कहै राणि पदमावती रतनसेन राजान।"

जटमल—गोरा-बादल की कथा पृ० २३

लिए आमन्त्रण देती है, किन्तु उसका वीर रूप जागरूक हो उठता है। उसके महिमापूर्ण नारीत्व में वीर क्षत्राणी बोल उठती है, विलासिनी कामिनी मूक हो जाती है[1]।

समर में विजय पाकर लौटे हुए पति का बादल की पत्नी अभिनन्दन करती है। युद्ध में वीरगति पाने वाले गोरा की पत्नी बादल से पूछती है कि "गोरा क्या रण से भाग गए अथवा समर भूमि में काम आए?" यह विदित होने पर कि गोरा वीरतापूर्वक लड़ कर परलोक वासी हुए क्षत्राणी नारी का स्वाभिमान तुष्ट हो जाता है[2]। सूदन के 'सुजान चरित में' भी नारी स्वधर्मपालन में रत है[3]। पति मृत्यु के उपरान्त अग्नि का आलिंगन करना उस युग की परम्परा थी। सभी काव्यों में नारी जौहर करने अथवा सती होने को प्रस्तुत है। छत्रप्रकाश में सभी रानियाँ पति-मृत्यु पर अग्नि में प्रवेश करती हैं[4]। इन वीरकाव्यों में नारी केवल सुकुमार, कामिनी विलास शैया की अंकशायिनी, काष्ट पुत्तलिका मात्र नहीं है, उसकी प्रत्युत्पन्नमति आपत्तिकाल में भी जागरूक रहती है। छत्रसाल के पिता रोगक्लान्त हो 'सहरा' की ओर जा रहे थे, सेना विश्वासघात करती है। शत्रु द्वारा आक्रमण होता है। उस समय लालकुँवरि ठकुरानी कटार द्वारा शत्रु सेना का संहार करने को प्रस्तुत हो जाती हैं। सुमनादपि-कोमला नारी अवसर आने पर वज्रादपि कठोर होकर मूर्तिवती दुर्गा और रणचण्डी का रूप धारण करती है। वह वीर नारी पति-हित प्राणोत्सर्ग कर कवि की लेखनी में अमर हो गई[5], क्षत्रिय-जाति की पवित्रता, पातिव्रत तथा वीरता के प्रांजल आदर्शों के अनुसार शत्रु-हस्त में पड़ने

---

१. "कन्ता रण में पैसता मत तू कायर होइ,
तुम्हें लाज मुझ मेहणों भलो न भाषै कोइ।
कायर केरे मांस को गिरझवा कबहुं न खाइ,
कहा कुपाइण मुख कहै हम हीं दुश्मन जाइ"।

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृ० २८

२. "भला हुआ जो भिड़ मुआ, कलंक न आया काइ,
जस जपै सब जगत में हिवरण दूढ़ों जाइ।"

जटमल—गोरा-बादल की कथा, पृष्ठ ३३

३. "वीर बाम विहँसि विहँसि कै विमान चली
हरिमन हरषि बजायौ बीन हास मैं"।

सूदन—सुजानचरित पृ० २०७

४. लाल—छत्रप्रकाश पृ० ५७

५. "को हो तुम आवत वाढ़ै चंपति को हम तजै न काढ़ै
जौहर पहिल हमारे ह्वै है, और छांह तब इनकी छ्वै है।"

लाल—छत्रप्रकाश पृ० ६०

की अपेक्षा लालकुँवरि ने मृत्यु का आलिंगन श्रेयस्कर समझा[1]।

मान के राज-विलास में नारी के दृढ़तामय, आदर्शात्मिक रूप की किंचित झलक एक बार मिलती है, जब रूपनगर की राजकुमारी दिल्लीश्वर के विवाह-प्रस्ताव के साथ वैभव-लिप्सा को ठुकरा देती है एवम् स्वयंवर का निश्चय करती है। क्षत्रिय कन्या के रूप में विधर्मी के साथ विवाह न करके राजसिंह को पत्र द्वारा पति निर्वाचित कर अपनी आन की रक्षा करती है[2]।

आलोच्य वीर काव्य में चित्रित नारी के दो रूप हैं रूप गौरव की आभा से दीप्त रूप और शृंगारमय रूढ़ रूप। पद्मिनी, गोरा की पत्नी, लालकुँवरि आदि नारियों में राष्ट्र-गौरव, पातिव्रत और आदर्श के प्रति मोह है। गोरा की पत्नी का ओजस्वी रूप उन राजपूत कुमारियों का प्रतीक है जो सस्मित मुख से अग्नि-मालाओं का आलिंगन करती थीं। यद्यपि समकालीन परिस्थितियों, युग की शृंगार की व्यापक प्रवृत्ति के कारण इन कवियों की नारी-भावना नख-शिख, नायिका भेद से प्रभावित है। प्रायः नारी का चित्रण केलिभवन की शोभावर्द्धक सामग्री के पूरक के रूप में हुआ है। जीवन्त चरित्रों से प्रेरणा के अभाव में इन कवियों ने वीरांगना का अत्यल्प चित्रण किया है, किन्तु इस अत्यल्प चित्रण में ही सती के सतीत्व, पत्नी की दृढ़ अनुरक्ति, वीरांगना के विकट साहस का आभास तो मिल ही जाता है। इन वीरकाव्यों में नारी के जीवन के दो पक्ष ही वर्णित हैं। एक विलास और सुखोपभोग के समय की कामिनी का, दूसरा पति के प्रति उत्कट भक्ति और अनुरक्ति का, जो उनमें जौहर की ज्वाला में जलने का साहस स्फुरित करता है। यत्र-तत्र प्राप्त कुछ वर्णनों के आधार पर तत्कालीन नारी की सामाजिक स्थिति का आभास मिलता है। पुरुष इच्छानुसार विवाह कर सकता था, नारी के पातिव्रत पर अधिक बल दिया जाता था। धर्म के क्षेत्र में उसे पति की सहधर्मिणी बनने का गौरव प्राप्त था। किन्तु आर्थिक एवम् जीवन के अन्य क्षेत्रों में उसकी क्या स्थिति थी, इस विषय पर वीरकाव्य प्रकाश नहीं डालता है।

●

---

१. "बाग छुअन पाई नहीं चढ्यौ मरन को चाउ
कटरा काढ्यौ पेट में दए घाउ पर घाउ
दै दै घाउ मरी ठकुरानी, चंपतराइ दगा तब जानी
× × ×
धनि चंपति तुम राख्यौ पानी, धनि धनि लालकुँवरि ठकुरानी।"
लाल—छत्रप्रकाश पृ० ६५

२. "लहि औसर सुन्दर पत्र लिखे।
चित्र कोट धनी अवरुथ रखे
हरि ज्यौं सु रुकमनि लाज रखी
अबला यों राखहु आस-मुखी।"
मान—राजविलास, पृ० १०७, सं० लाला भगवानदीन, काशी

निर्गुण भक्ति-काव्य में नारी

: ४ :

निर्गुण भक्ति

प्रकरण १

सन्त-काव्य में नारी

"जिसे हम आजकल सन्त-साहित्य कहते हैं वह वस्तुतः 'निर्गुण-भक्ति-मार्ग' का साहित्य है[१]।" रूढ़िगत सन्त शब्द की व्युत्पत्ति और उसके विभिन्न प्रयोगों को बताते हुए श्री परशुराम चतुर्वेदी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—"फिर भी पता चलता है कि सन्त शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से उन भक्तों के लिए होने लगा था जो विट्ठल अथवा वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। इन लोगों में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम जैसे सन्तों के नाम लिए जाते हैं, जो सभी महाराष्ट्र प्रान्त से सम्बन्ध रखते थे। सन्त शब्द क्रमशः उनके लिए रूढ़ हो गया और कदाचित् अनेक बातों में उन्हीं के समान होने के कारण कबीर तथा अन्य ऐसे लोगों का पीछे से वही नामकरण हो गया[२]।"

सन्त-काव्य की पृष्ठभूमि

अनन्त और असीम, अनादि और अपार्थिव की साधना में रत भारतीय चिन्ता, आत्मा और परमात्मा की अभेदता एवम् एकता का निदर्शन करती रही है। अवसर एवम् स्थान के अनुकूल आध्यात्मिकता की यह धारा सतत प्रवाहित होती रही। पन्द्रहवीं शताब्दी में इस धारा ने जो रूप धारण किया वह निर्गुण सन्त-सम्प्रदाय के नाम से अभिहित हुआ[३]। सन्त-काव्य का ब्रह्म सुरभि से भी सूक्ष्म, अतीन्द्रिय और गुणातीत है। सन्तों का यह निर्गुण ब्रह्म कोई अभूतपूर्व वस्तु नहीं है, प्रत्युत इसमें अनादि काल से आगत ब्रह्म-चिन्तन की धारा को ही सुसंगठित आकार मिला है।

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी—मध्यकालीन धर्म-साधना, पृ० ८७, प्र० सं० १९५५ ई०

२. परशुराम चतुर्वेदी—उत्तर भारत की सन्त-परम्परा, पृ० ७, प्र० सं० २००८ प्रयाग

३. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० १ प्र० सं०, २००७ वि० लखनऊ

आदि पुस्तक वेद में बहुदेववाद को समर्थन मिला है, किन्तु ऋग्वेद के पश्चिमांश में एकदेववाद की मान्यता के साथ सर्वात्मवाद के बीज भी उपलब्ध है। साम और ऋग्वेद काल में यज्ञों एवम् कर्मकाण्डों की जटिलता बढ़ गई थी और वही एकमात्र लक्ष्य रह गया। ऋग्वेद में सृष्टा की कल्पना हो चुकी थी तथा उसे पुरुष हिरण्यगर्भ, विश्वकर्मा एवम् प्रजापति की संज्ञा दी जा चुकी थी। अथर्ववेद में स्त्री देवताओं की प्रधानता मिली[१]। बुद्ध के उपरान्त बौद्ध साधना कामिनी और कांचन का योग पाकर भ्रष्ट हो गई। संघ जीवन का आदर्श शृंगार के प्रवाह में बह गया, मठ विलास की रंगभूमि बन गए। पंच मकार उनकी साधना में सर्वथा ग्राह्य थे। जिस युग में निर्वाण के लिए प्रज्ञा-पारमिता का भोग आवश्यक माना जाता था, उसी योग की पृष्ठभूमि पर आविर्भूत हो गोरखनाथ ने इस वामाचार का खण्डन करते हुए ब्रह्मचर्य को श्रेयस्कर बताकर हठयोग का प्रचार किया। नारी को उन्होंने सर्वथा त्याज्य बताया[२]।

सन्तकाव्य के उद्भव काल की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण हो चुका है। राजनीतिक अधःपतन, आर्थिक असन्तोष, धार्मिक अस्वास्थ्य, सामाजिक एवम् नैतिक पतन के मध्य सन्त कवियों ने निर्गुण ब्रह्म को अपने हृदय की अपरिमित श्रद्धा और भक्ति से ग्राह्य बनाकर सर्व-साधारण के समक्ष बाह्याचार एवम् कर्मकाण्ड से परे उपासना का एक सरल और सीधा मार्ग रखा। इन सन्त कवियों पर विभिन्न मतों एवम् सम्प्रदायों, विचारों एवम् दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा। उनका निर्गुण ब्रह्म उपनिषद् एवम् वेदों में वर्णित है। यौगिक क्रियाएँ-घट शून्य गगन में विहार, उलटवासियों की अटपटी बानी, हठयोगियों एवं सिद्धों से स्पष्टतया प्रभावित हैं। इनका भाव-पक्ष एक ओर भारतीय वेदान्त के ब्रह्म को ग्रहण करता है, दूसरी ओर सूफियों की उपासना

---

१. "सारांश यह है कि अथर्ववेद में हम उन सभी भावनाओं के अंकुर पाते हैं जो पीछे चलकर शैवमत, शाक्तमत और तन्त्रमत के रूपों में विकसित हुई और जिसमें छन कर जिन्होंने सन्तमत के सिद्धान्तों को जन्म दिया।"

धर्मेन्द्र—सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० ५५, पटना

२. "गुरु गोरखनाथ द्वारा निर्दिष्ट योगसाधना के अन्तर्गत बीज रूप में प्रायः वे ही सब बातें प्रधानतः दीख पड़ती हैं, जिनका प्रचार आगे चल कर कबीर साहब आदि सन्तों ने किया।"

परशुराम चतुर्वेदी—उत्तर भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५८, २००८ प्र० सं० प्रयाग

पद्धति के प्रभाव से उसे प्रेम का विषय बनाता है[1]। इन सन्त कवियों में कबीर १४५६ सं० (१३९९ ई०), रैदास १६०० सं० (१५४३ ई०), धर्मदास १५७५ सं० (१५१८ ई०), नानक १५२६ सं० (१४६९ ई०), दादूदयाल १६०१ सं० (१५४४ ई०), सुन्दरदास १६५३ सं० (१५९६ ई०), मलूकदास १६३१ सं० (१५७४ ई०), अक्षरअनन्य १७१० सं० (१६५३ ई०), प्राणनाथ १६७७ सं० (१६२७ ई०), दरियाद्वय १७३१ सं० (१६७४ ई०) और १८२७ सं० (१७७० ई०) तथा कवयित्रियाँ दयाबाई १७७५ सं० (१७१८ ई०), सहजोबाई १७४३ सं० (१६८६ ई०) आदि हुई।

सन्त कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण

सन्तों के लिए इंद्रिय-निग्रह का जीवन काम्य एवम् साध्य था किन्तु इन सन्तों ने वाह्य विश्व के कमनीय उपकरणों से पलायन नहीं किया। अधिकांश सन्त गृहस्थ-धर्म का पालन करते थे, उन्होंने अति मात्राओं का निषेध कर गृहस्थ जीवन में मध्य मार्ग को ग्रहण किया। दादू और कबीर के शब्दों [illegible] और परित्याग के मध्य मार्ग द्वारा मुक्ति की उपलब्धि करना था[2]। संसार के कर्मक्षेत्र, काम, क्रोध, मद, मोह के संघर्ष से पराजय मान लेना वह कायरों का काम समझते थे, उनसे

---

१. "इस प्रकार उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद के साथ हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद, और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया।"

रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७७, द. स., सं० २०१२ काशी

"विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने से पता लगेगा कि संत मत के प्रवर्तक तथा उनके संतों के अधिकांश मंतव्य-यथा शून्यागमन में सुरति का आरोप तथा परमानन्द का आस्वादन योग की क्रियाएं और उनका अभ्यास, भक्ति में रहस्यवाद, गुरू का गौरव जांतपांत, तीर्थ व्रत, आडंबर-पूर्ण विधि-निषेध आदि पाखण्डों का खंडन आदि-उन्हें गोरखनाथ के दल से पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले थे। इन योगियों ने उन्हें वज्रयानी व सहजयानी सिद्धों से लेकर, और उन पर आस्तिकता का रंग चढ़ा कर तथा उनकी अश्लीलता व ऐन्द्रिकता का परिहार करके उन्हें गौरवान्वित व परिष्कृत किया।"

धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी—संतकवि दरिया एक अनुशीलन, पृ० ६८

२. "ना हम छाड़े ना ग्रहै ऐसा ज्ञान विचार,
भद्धिभाव सेवै सदा दादू मुक्ति द्वार।"

दादू—दादूदयाल की बानी, पृ० १७०

"भजूँ तोको है भजन को तजूँ तोका है आन।
भजन तजन के मध्य में सो कबीर मनमान॥"

कबीर—कबीर वचनावली, पृ० २७ श्यामसुन्दरदास आ० स० १९९६ वि० काशी

द्वन्द्व कर उन पर विजय पाना शूरवीर का कार्य है । अपने शरीर को संसार में रखते हुए अपने मन को राम में लगा दो । कष्ट, विपत्ति, अथवा उसकी ज्वाला तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर पावेंगी[1] । सन्तों का मध्य-मार्ग जगत का सापेक्षिक दृष्टि से अस्तित्व मानता है । जब मानव जगत के मोहक प्रलोभनों से संघर्ष कर शाश्वत सत्य की उपलब्धि कर लेता है, तब उसके लिए इस जगत का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है। विश्व के संघर्ष से परांगमुख होना भगवद्भक्तों के लिए अगौरव की वस्तु है उसे मानव के अभ्यन्तर में चलने वाले इस युद्ध में शूर का भाग लेना है, इसके लिए दृढ़ता एवम् लगन आपेक्षित है । सन्तों का आदर्श संसार के मध्य निर्लिप्त एवम् अनासक्त भाव से रहना है । यह अनासक्ति वाह्य आचरणों से संबंधित न होकर अभ्यंतर की वस्तु है । इसी अनासक्ति का संबल लेकर सन्तों ने गृहस्थ जीवन में मुक्ति पा ली[2] । इन सन्त कवियों के अनुसार आत्मपीड़न द्वारा कभी सम्यक मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती । मानव तन परमात्मा तक पहुँचने की साधना का एक सोपान है, अतः उनका पूर्ण संरक्षण एवम् सदुपयोग वांछित है। इन सन्तों की साधना अन्तर्मुखी थी । समस्त वाह्याचार आदि के वह घोर विरोधी थे, उनके अनुसार काबा और कैलाश, मन्दिर और मस्जिदों में ढूंढ़ने के स्थान पर भगवान से अपने हृदय में साक्षात्कार किया जा सकता है, केवल शुद्ध हृदय की एकनिष्ठ भक्ति वांछित है[3] । सन्तों में लोकहित की भावना अधिक मिलती है। वह अपनी समस्त कामनाओं और इच्छाओं को ईश्वर के अर्पित कर देते थे, प्रभु के साथ तादात्म्य पाकर उनकी इच्छा ईश्वरेच्छा हो जाती और उनकी समस्त विभूति सर्वजनहिताय थी । इन निर्गुण सन्तों की साधना का स्वरूप व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक प्रयासों में ही केन्द्रित था । उनका भगवद्-प्रेम विरागमूलक होते हुए भी सहजीवी प्राणियों के प्रति स्नेह का उद्रेक करता था। यह स्नेह निष्क्रिय न था प्रत्युत् अपने सहजीवियों के कष्ट परिहार के लाभपूर्ण परिणामों में प्रकट होता था। इन सन्तों ने कष्ट सहन करते हुए अज्ञान और कुसंस्कारों को हटा कर सत्य का प्रचार किया। इन सन्तों का भी

---

१. "देह रहै संसार में जीव राम के साथ,
दादू कुछ व्यापे नहीं, काल झाल दुख त्रास।"

दादू—सन्त-बानी संग्रह भाग १ पृ० ९३

२. "सतिगुरु की असी बड़ाई, पुत्र कलत्र बिचै मति पाई।"

नानक—ग्रन्थ साहब

३. "मोको कहां ढूंढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में,
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना काबे कैलास में।
ना तौ जानौ क्रिया कर्म में नहीं जोग वैराग में,
खोजी होय तुरतै मिलिहौं पल भर की तलास में।

कबीर—कबीर वचनावली, सं० श्यामसुन्दरदास पृ० १०१, १०२
आठवाँ सं० १९९६ काशी

व्यक्ति की पात्रता का मापदण्ड भक्ति ही था, तभी तो वह विषयलिप्त नृपनारी को निन्दनीय और भक्तिमयी दासी को आदरणीय बनाते हैं[1]।

संतों का नारी के प्रति दृष्टिकोण

धर्म, विराग और त्याग की भित्ति पर स्थित संत-संप्रदाय के विरागमूलक धर्म में नारी अपने कामिनी रूप तथा प्रलोभनों के साथ अवरोध सदृश थी। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र एवम् युग के विरागियों ने नारी को कामिनी एवम् तप के मार्ग की बाधा मानकर उसे गर्हित बनाया है। युग-युगान्तर तक नारी पतनकारिणी, निन्दनीय एवम् त्याज्य समझी जाती रही। यह परम्परा संस्कृत के नीति-ग्रन्थों में भी मिलती है। जैन और नाथ कवियों ने उसे योग-मार्ग की बाधा और संसर्ग से पुरुष का नाश करने वाली बताया। नाथ एवम् पन्थियों का यह दृष्टिविन्दु वज्रयानियों की घोर कामुकता एवम् इन्द्रियपरायणता की प्रतिक्रिया में विकसित हुआ था। नारी उपासना के दुष्परिणाम और अनाचारों को देखकर ही गोरख को घोषित करना पड़ा कि नारी के संसर्ग में लीन पुरुष सरिता के तट पर स्थित अनिश्चित जीवन वाले वृक्ष के समान है[2]। इसी परम्परा में सन्तों ने नारी को अविद्या का प्रतीक, माया का शस्त्र, मोह का आवरण मानकर उसकी भर्त्सना की। कबीर ने उसे नरक का द्वार माना, पलटू ने अस्सी वर्ष की जराजीर्णा में भी काम-भावना की शंका की। 'नारी निन्दा कौ अंग' 'चितावनी के अंग', के अन्तर्गत सन्तों ने पृष्ठ पर पृष्ठ भर डाले। सुंदरदास ने तो उसके समस्त शरीर को घृणास्पद एवम् भयंकर बताते हुए उसके सम्पूर्ण अंगों की घातक बन से उपमा घटित की।

इन सन्तों ने नारी के कामजनित वासनात्मक स्वरूप को घृणास्पद और गर्हित बताया। उन्होंने काम मात्र को घृणित बताया और पुरुष और नारी दोनों को ही एक दूसरे के लिए कल्याणकारी और बन्धन स्वरूप माना[3]। नारी का सत रूप,

---

१. "सय्यद शेख किताब नीरखैं, पंडित शास्त्र विचारैं।
सतगुरु के उपदेश बिना, तुम जानि के जीवहिं मारै।
करो विचार विकार परिहरौ, तरन तारनै सोई।
कह कबीर भगवंत भजन करु द्वितीया और न कोई।।"

कबीर—कबीर वचनावली पृ० १४८, पद १२५

"नृप नारी क्यों निंदियै क्यों हेरि चेरी कौ मान।
ओह माँगु संवारै निषै को औहु सुमिरै हरिनाम।।"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली (परिशिष्ट) पृ० २५५, साखी ८७

२. "नदी तीरे विरवा नारी संगै पुरुषा अलप जीवन की आसा"

गोरखनाथ—गोरखबानी, पृ० १३७, द्वि० सं० ३००३, प्रयाग

. "नारी वैरणि पुरुष की, पुरुषा वैरी नारि।
अन्तकाल दुन्यू पचि भुए कछू न आया हाथ।।"

दादू—दादूदयाल की बानी, प० १७२

उसकी कल्याण-विधायिनी-शक्ति उनके लिए वन्दनीय एवम् प्रशंसनीय है। पतिव्रता को अत्यन्त आदर एवम् भक्ति की पात्र कहा है। नारी के जननी स्वरूप, उसके वात्सल्य की निन्दा से कबीर जैसे सन्त भी विद्रोह कर उठे। सती का आदर्श तो सन्तों को अत्यन्त ही प्रिय लगा, उन्होंने अपनी साधना की तुलना सती की साधना से की है। सन्तों ने पतिव्रता शब्द का दुहरे अर्थ में प्रयोग किया, लौकिक और अलौकिक। यह तो स्पष्ट ही है कि सन्तों ने नारी को भी भगवान् की भक्ति का अधिकारी समझा, निर्गुण सन्त कवयित्रियों की साधना इसका प्रमाण है।

यद्यपि सन्तों ने नारी को माया का ब्रह्मास्त्र, काम की कामिनी, वासना की कलुषित छाया समझ कर उसकी भर्त्सना की, किन्तु निर्गुण और सगुण दोनों से परे, अपने असीमप्रियतम के प्रति अपनी कोमल-भावनाओं की अभिव्यक्ति स्वयं नारी बन कर ही की। उन्होंने ईश्वर को पति माना तथा स्वयं पत्नी के हृदय के असीम अनुराग, एकनिष्ठा से उसकी आराधना की[१]। ब्रह्म की प्राप्ति का साधन प्रेम को माना है। आत्मा और परमात्मा का जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है, विरहिणी आत्मा प्रिय के नयनाभिराम रूप के दर्शनों की लालसा करती है। जीवात्मा का यह प्रेम पूर्वराग के रूप में प्रकट होता है। अन्तरात्मा अपने प्रिय से पृथक् होकर विरह वेदना से व्याकुल हो जाती है। विरह वेदना के यह विदग्ध चित्रण कबीर दादू सुन्दरदास, दरिया साहिब, रैदास आदि सभी सन्त कवियों एवं कवयित्रियों में मिलते हैं। यह विरह वेदना-विदग्ध स्मृति पतिगृह आई हुई नारी के हृदय में प्रियतम की स्मृति के समान है[२]।

इन संतों ने नारी बन कर अपने अविनाशी प्रियतम के साथ अभिसार किया, फाग खेला और नाना विधि केलिक्रीड़ाएँ की हैं। इनका अंतिम लक्ष्य अपने को

---

१. "सर्वात्ममूलक रहस्यवाद में माधुर्य भाव का उदय हुआ, जो कबीर और सब प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियों में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियों की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिकों ने परमात्मा को पुरुष और जगत को स्त्री रूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है, जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में उपासना होती है, और जगत के नाना रूप स्त्री रूप में देखे जाते हैं।"

श्यामसुन्दरदास—कबीर ग्रन्थावली भूमिका पृ० ५७

२. "नैहरवा हमको नहिं भावै
साँई की नगरी परम अति सुन्दर जहाँ कोइ जाइ न आवै,
चाँद सुरज जँह पवन न पानी को संदेस पहुँचावै।
दरद यह साईं को सुनावै॥"

कबीर—कबीर साहेब की शब्दावली, भाग १, पृ० ७२
१९२२, चौथी बार इलाहाबाद

परमात्मा में लीन कर देना हीं है। उपास्य के साथ एकीकरण, अभेदभाव की अनुभूति ही भक्त का चरम काव्य है। अनन्त प्रतीक्षा, अविरल साधना, विरह की मर्मान्तिक वेदना के उपरान्त वह चरमावस्था आती है, जब आत्मारूपी नारी का अनन्त के साथ चिर-अभिलाषित तादात्म्य हो जाता है। इस को संतों ने आध्यात्मिक विवाह कहा है[१]। भक्त रूपी दुलहिन इसके लिए अनेक प्रकार से सामग्री जुटाती है। भय, संकोच और लज्जा के विभिन्न भावों का स्वाभाविक अंकन इन संतों के काव्य में हुआ है।

नारी का असत रूप

त्याग और विरागपूर्ण साधना द्वारा शुद्ध हृदय ही प्रभु-भक्ति का अधिकारी हो सकता है, विश्वमोहिनी माया अपने विभिन्न प्रलोभनों, मनोरम आकर्षणों से मन को पथभ्रष्ट करना चाहती है। कामिनी उसकी सबसे बड़ी सहायिका है। उसका आकर्षण पाश अत्यन्त कठिन है, उसकी माया से निष्कृति पाना दुर्गम है। वह मानव को सत से असत की ओर उन्मुख करती है, अतः सन्तों के लिए कामिनी का सर्वथा त्याग अनिवार्य है।

कबीरदास ने नारी संग को अत्यन्त दूषित और अकल्याणकारी बताते हुए कहा है कि नारी की छाया मात्र से विषधर अन्धा हो जाता है। उन लोगों को ज्ञात नहीं क्या गति होगी जो अहर्निशि नारी के सहवास में रहते हैं[२]। कामिनी रूपी सर्पिणी से गुरु कृपा से ही निष्कृति पाई जा सकती है[३]। वह बाधिन, नित-नूतन शृंगार कर समस्त लोक को उदरस्थ कर लेती है[४]। उस नारी—चाहे स्वर्ण द्वारा निर्मित सुगन्धमयी अपनी जननी ही क्यों न हो—के पास बैठने का निषेध कबीर करते हैं[५]। नारी जिस नर के संसर्ग में रहती है उसके तीन गुणों का नाश कर देती है, वह भक्ति और मुक्ति की ओर उन्मुख ही नहीं होता है[६]। इस भव को पार करने के मार्ग में दो दुष्कर घाटियाँ पड़ती हैं, एक कनक और दूसरी कामिनी[७]। त्यागमयी पत्नी की गरिमा की विडम्बना करते हुए कबीर उसे संसार की जूठन बता कर उत्तम व्यक्तियों को उससे पृथक ही रहने का निर्देश देते हैं[८]।

---

१. "दुलहिन गावहु मंगल चार
हम धरि आए राजा राम भरतार।"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८७, पद १

२. कबीर-संतबानी संग्रह, प्रथम भाग, पृ० ५८

३. कबीर-संतबानी संग्रह, प्रथम भाग, साखी ३

४. कबीर-संतबानी संग्रह, प्रथम भाग, साखी ४

५. कबीर—संतबानी संग्रह, साखी ७

६. कबीर—संतबानी संग्रह, साखी ८

७. कबीर—संतबानी संग्रह, साखी १

८. कबीर—कबीर ग्रन्थावली पृ० ४० साखी १४ श्यामसुन्दरदास संपादित १९२८ प्रयाग

पर नारी और नारी का कामिनी रूप अधिक घृणास्पद एवम् निन्दनीय है। स्त्री संसर्ग का वाह्य रूप मनोहर है, किन्तु उसके अभ्यंतर एवम् परिणाम में घोर नर-संहारक विष है[१]। कामिनी रूपी काली नागिन के घातक प्रभाव से केवल यह लोक ही नहीं, प्रत्युत् त्रिलोक अभिभूत है, केवल हरिभक्त, अपनी भक्ति के प्रभाव से इससे निर्लिप्त एवम् मुक्त रह सके[२]। चरणदास (१७०३ ई०) १७६० सं० भी परस्त्री और अपनी पत्नी दोनों को ही घोर आपत्ति घोषित करते है। इस कामिनी के मनोमुग्धकारी स्वरूप ने सुर, असुर, यक्ष और गंधर्व को भी वशीभूत कर लिया है[३]। मलूकदास आकर्षणमयी कामिनी के नयन कटाक्षों की ओर दृष्टि-पात करने का ही निषेध करते हैं[४]। महात्मा धरनीदास (१६५६ ई०) १७१३ सं० नारी को बिजली एवम् धन को फाँसी बता कर राम की कृपा से ही दोनों से रक्षा होना संभव बताते है[५]। साथ ही वह हरिजन स्नेही वेश्या को हरिजन से लजाने वाली पत्नी से श्रेष्ठ बतलाते हैं[६]। भक्त दादूदयाल का कथन है कि कनक और कामिनी रूपी दीपशिखा की मनोहर ज्योति पर पतंग बन कर सारा संसार जल भरता है। उन्होंने नारी को नागिन और बाघिन बता कर उसके दंश को निदानहीन बताया[७]। उसका मुख से नाम लेने, एवम् आंख से देखने तक को वह अकल्याणकारी मानते है[८]।

नारी निन्दा, उसको घृणित बतलाने के विषय पर निर्गुण कवयित्रियाँ मौन हैं, केवल पार्वती ने चित्त को कामिनी के पास रखने का निषेध किया है[९]। विद्वान् कवि सुन्दरदास ने तो नारी शरीर को ही नारीत्व माना है। उसके वाह्य रूप मात्र को सुन्दर बताया है। उन्होंने उसके शरीर की उपमा सघन बन से दी है[१०]।

---

१. कबीर—कबीर ग्रन्थावली पृ० ३६, सा० स० ४
२. कबीर—कबीर ग्रन्थावली पृ० ३६, सा० स० १
३. चरनदास—चरनदास की बानी, पृ० २६ और १०६
४. मलूकदास—मलूकदास की बानी, पृ० ७३
५. धरनीदास—धरनीदास की बाती (संतबानी संग्रह) पृ० ११५
६. धरनीदास—धरनीदास की बानी (संतबानी संग्रह) पृ० ११६
७. दादूदयाल—दादूदयाल की बानी, पृ० १२३, सा० ७२
८. दादूदयाल—दादूदयाल की बानी, पृ० १३१, सा० १६१
९. "धन जोबन की करै न आस, चित्त न रखै कामिनी पास"
सावित्री सिनहा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ में उद्धृत पृ० ५०
१०. "कामिनी की देह मानौ कहिए सघन वन
उहाँ कोउ जाइ सो तौ भूलि के परतु है।

वह उसे विष के अंकुर और फूलवाली विष की लता बताते हैं। उनके अनुसार नारी के रूप की सराहना और प्रशंसा करने वाले महागँवार हैं[1]।

सामान्यत: समस्त संत कवियों ने नारीके कामिनी रूप की निन्दा एवम् भर्त्सना की है। उसे घृणित, भयप्रद, हानिकारक, अभिशापपूर्ण बतलाया है। यह सन्त कवि सहजयानियों एवम् वज्रयानियों की नारी उपासना देख चुके थे, उसका वीभत्स रूप देख कर उन्हें नारी की ओर से विरक्ति एवम् ग्लानि होना स्वाभाविक ही था। उन्होंने देखा कि योग एवम् विराग का प्रथम सोपान इन्द्रिय-निग्रह ही है जबकि लोक और समाज की नैतिकता शिथिल हो गई है। नारी समाज की भोगलिप्सा का साधन मात्र है। इसी दृष्टिविन्दु से सुन्दरदास ने नारी की सुन्दरता वर्णन करने वाले काव्य को समाज के लिए बीमार की मिठाई के समान घातक बताया है[2]।

नारी के सत् रूप का चित्रण

संतों का आदर्श था नारी पति को परमेश्वर मान कर, सदा उसका निर्विरोध आज्ञापालन एवम् सेवा सुश्रूषा करने वाली, पतिव्रता हो। नारी के पतिव्रता रूप को उन्होंने अत्यन्त उच्च बताकर उसकी एकनिष्ठा और त्याग को वन्दनीय बताया। अपने पति के शव के साथ आत्मोत्सर्ग करने वाली सती उसके अनुसार महान् है। नारी का कर्तव्य है कि वह पति ही को अपना धर्म-कर्म [illegible] समझे। जो नारी अनेक कष्टों और संतापों को सहन करती हुई, अपने घर के दु:ख को पर

कुंजर है गति कटि केहरि को भय जामै,
बेनी काली नागिनीऊ फन कौ धरतु है।
कुच है पहार कामचोर रहै जहाँ
सांधिकै कटाक्ष बान प्रान को हरतु है।
सुन्दरदास एक और डर तामै
राक्षस बदन षाऊँ षाऊँ ही करतु है।"

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ४३७

१. "विष की भूमि माहि विष ही के अंकुर भए
नारी विष बेलि बढ़ी नख शिख देखिए
× × ×
विष के तन्तु पसारि उरझाए आँटी भरि
सब नर वृक्ष पर लपटी ही लेषिए
सुन्दर कहत कोउ एक तउ बचि गए
तिनकै तौ कहू लगा लागी नाहिं पेषिए।"

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ४३८, पद २

"सुन्दर कहत नारी नखशिख निंद रूप
ताहि जे सराहै तेतो बड़ेई गंवार है।

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली पृ० ४३८, पद १

२. सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ४४०

घर के वैभव से श्रेष्ठ मानती है, वही पतिभक्त नारी के नाम से अभिहित की जा सकती है।

वस्तुत:, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सन्त-सम्प्रदाय में पतिव्रता शब्द के दोहरे अर्थ हैं। लौकिक पतिव्रता से उनका तात्पर्य सामान्य स्त्री से है जो एकनिष्ठ भाव से अपने पति की सेवा और उपासना करती हुई अपने परिवार-धर्म का पालन करती है। जिसके लिए चरणदास के शब्दों में पर घर के वैभव से अपना दैन्य श्रेयस्कर है[1]। विशेष, अथवा अलौकिक पतिव्रता से सन्त कवियों का तात्पर्य भक्त है जिसमें इष्ट के प्रति अटल अनुरक्ति एवम् एकनिष्ठा अपेक्षित है। उसी प्रकार 'व्यभिचारिनी' शब्द का भी सामान्य और विशेष दो रूपों में प्रयोग किया गया है, इस विषय का पूर्ण विश्लेषण आगे नारी के प्रतीक रूप में होगा।

प्रतीक रूप में नारी

सन्तों का उपास्य निर्गुण और निराकार ब्रह्म है, जो निरुपाधि और निराकार है। निर्गुण में भी कुछ गुणों का आरोप, उपासना और भक्ति-साधन में आवश्यक है। उपनिषदों के निराकार ब्रह्म में भी उपासना के लिए गुणों एवम् सम्बन्ध भाव का आरोप किया गया। भक्ति-भाव की अतिशयता में सन्त कवियों ने भी परमात्मा के साथ सांसारिक प्रेममूलक संबंध स्थापित किए। जिस गूढ़ातिगूढ़, उत्कट भक्ति, दृढ़ अनुरक्ति एवम् समर्पण की भावना की अभिव्यक्ति वह अपने उपास्य के प्रति करना चाहते थे, वह केवल दाम्पत्य भाव में ही संभव हो सकती थी। अत: नारी को असत और माया का प्रतीक मानते हुए भी उसी के हृदय की कुसुम कोमल भावनाओं का अवलम्ब लेकर, स्वयं प्रभु की बहुरिया बन कर सन्तों ने इष्ट के प्रति प्रणय निवेदन किया।

प्रत्येक देश के आध्यात्मिक इतिहास में भक्तों ने दाम्पत्य भाव के प्रतीक के द्वारा ही भगवान् के प्रति प्रेमाभक्ति की व्यंजना की। मध्यकालीन ईसाई योगी परमात्मा के साथ इस संयोग को ही आध्यात्मिक विवाह कहते थे, सूफी काव्य में भी इसी रूपात्मक भावना को प्रश्रय मिला है। हिन्दू धर्म में पुरुष और प्रकृति एवम् समस्त क्रीड़ा विस्तार का प्रतीक पुरुष और नारी को ही माना गया है[2]। निर्गुण सन्तों ने काव्य सम्बन्धी रूपक सन्तों से लिया, किन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार उन्होंने परमात्मा को पुरुष मान कर उसकी उपासना की है। इन भक्त कवियों के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र पुरुष है, अन्य सभी भक्त उसकी पत्नियाँ हैं। दादू, कबीर

---

१. "अपने घर का दुख भला, पर घर का सुख छार।
ऐसे जाने कुलवधू सो सतवन्ती नार॥"

चरनदास—संतबानी संग्रह, पृ० १४७, दो० ४

२. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—पृ० ३५४ (अनु० परशुराम चतुर्वेदी) सं० २००७ लखनऊ

आदि के इसी प्रकार के कथन हैं[१] ।

स्वकीया भाव से उपासना

वैष्णव कवियों ने भी दाम्पत्य भाव के रूपक द्वारा अपने हृदय की कोमल अनुभूतियों को इष्ट के प्रति व्यंजित किया किन्तु उन्होंने प्रभु को प्रेमी मानकर स्वयं को परकीया अथवा प्रेयसी माना । सन्तों ने स्वकीया के आदर्श को ही प्रांजल और पवित्र माना है । उन्होंने सती और पत्नी का ही अपने ऊपर आरोप किया ।

प्रेम के दो रूप, संयोग और वियोग

प्रेम की दो दशाएँ, संयोग और वियोग; साहित्यिक भाषा के संभोग एवम् विप्रलम्भ; का नामकरण सन्तों ने विरह और मिलन किया । सन्तों के मिलन में प्रिय और प्रेमी, उपासक और उपास्य का पूर्णरूपेण तादात्म्य हो जाता है, अतः सन्तों ने सूफियों के समान मिलन का अधिक चित्रण नहीं किया, किन्तु मिलन से पूर्व की विरहानुभूति, संयोग की उत्सुकता, प्रिय के गुण तथा अपनी अयोग्यता का स्मरण कर चिन्ता, अभिसार की तैयारी, मिलन समय की सकुच और लज्जा आदि का चित्रण सन्त कवियों के काव्य मे बड़ा यथार्थ एवम् मार्मिक मिलता है ।

विरह-चित्रण

साहित्य के रसराज शृंगार के प्राण विप्रलम्भ का काव्य और भक्ति दोनों ही क्षेत्रों में समादरणीय स्थान है । रहस्यवादियों ने विरह को आत्मा की अन्धेरी रात (Dark night of the soul) कहा है । हिन्दी के सन्त कवियों कबीर, दादू, नानक, मलूक, सूरदास, मीरा, रज्जब, रैदास के काव्य में उनकी विरहिणी आत्मा की अनन्त प्रियतम के प्रति व्यापक विरह की भावना मिलती है । नारी रूपी साधक ईश्वर पति की प्राप्ति की साधना के पथ पर अग्रसर हो तो है, आशा उससे आँखमिचौनी करती है, वेदना क्रीड़ा । कभी नैराश्य का गहनतम उसके हृदयतल को आच्छन्न कर लेता है । चरमनिराशा और अवसाद के इन क्षणों में विरहाकुल आत्मा की पुकार साहित्य में अमर हो गई है[२] ।

अनन्त प्रियतम की प्रतीक्षा की घड़ियाँ, उसका विरह भी अनन्त है । उसकी निर्निमेष नयनों से प्रतीक्षा करते-करते नयनों में झाई पड़ती है और नाम-स्मरण

---

१. "पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग ।
जै जै जैसी ताहिसौं, षेलैं तिसही रंग ।।"
दादूदयाल —दादूदयाल की बानी, पृ० ३४, साखी ५७

२. "तलफि तलफि विरहिन मरै, करि करि बहुत विलाप ।
विरह अगिन में मरि गई, पीव न पूछी बात ।।"
दादू—दादूदयाल की बानी भाग २, पृ० ७०

से जिह्वा में छाले, पर वह निष्ठुर प्रियतम नहीं आता[१]। विरह सर्प के दंशन से उद्विग्न विरहिणी का चित्त मंत्र-तंत्र से अप्रभावित है[२]। सन्तों का यह विरह व्यापक होकर धरती और आकाश दोनों को ही भस्मीभूत कर देता है[३]। असीम के विरह में आकुल प्रिय के शुभदर्शन को लालायित आत्मा के लिए विरह विपत्ति और दुख ही साथी है[४]। नारी का जीवन असीम त्याग और उत्सर्ग का इतिहास होता है। सन्तहृदय में स्थित विरहिणी प्रिय दर्शन के लिए, उसके स्वागत समय के आरतीदीप की सज्जा में अपने शरीर का दीपक बनाकर प्राण की बत्ती डालकर, रुधिर के तेल से स्नेहदान कर मिलन की सतत प्रतीक्षा करती है[५]।

आत्मा और परमात्मा का यह वियोग बड़ा दीर्घ है, रात्रि भर के वियोग के उपरान्त चकवी तो अपने प्रिय से मिल जाती है, किन्तु राम से बिछुड़ी आत्मा दिवा-रात्रि के अनेक चक्रों के उपरान्त भी दर्शन-लाभ नहीं कर पाती[६]। उस निष्ठुर प्रियतम को अपने उपासकों को तड़पाने ही में सुख मिलता है[७]। इन संत कवियों के विरह चित्रण में विरहिणी हृदय की भावनाओं, अभिलाषाओं एवम् अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। विरहिणी की प्रतीक्षा जन्म-

---

१. "अंखिया तो झाई परी पन्थ निहार-निहार।
जिभ्या तो छाला पड़ा राम पुकार-पुकार॥"
कबीर—संतबानी संग्रह, पृ० १५

२. "विरह भुवंगम तन डंसा मंत्र न लागै कोय।
नाम वियोगी ना जियै जियै तो बाउर होय॥"
कबीर—(कबीर) संतबानी संग्रह, पृ० १५

३. "कबीर चिनगी विरह की तन पड़ी उड़ाय।
तन जरि धरती हू जरी, अम्बर जरिया जाय॥"
कबीर—कबीर संतबानी संग्रह, पृ० १५ सा० ३४

४. "विरह भयो बिछावना ओढ़न विपत्ति विजोग।
दुख सिरहाने पायतन कौन बना संयोग॥"
कबीर—संतबानी संग्रह, पृ० १५, सा० ३४

५. "यहि तन···कब मुख देखो पीऊ···॥"
कबीर—संतबानी संग्रह, पृ० १६

६. "चकवी बिछुड़ी···राति···॥"
कबीर—संतबानी संग्रह, पृ० ७, दो० २

७. "बौरी ह्वै चितवत फिरूँ हरि आवै केहि ओर
छिन उठूं छिन छिन गिर परूँ राम दुखी मनमोर॥"
सहजोबाई—संतबानी संग्रह, भाग १, पृ० १७१, दोहा ५

जन्मान्तर की प्रतीक्षा है। प्रियतम युग-युगान्तर से पृथक है, किन्तु विरहिणी असीम धैर्य से तपस्वी की भाँति विरह की मर्मान्तिक वेदना को सहती है। वह अधजली के समान है[1]। कहीं विरहिणी पागल के समान प्रियतम को इतस्ततः खोजती हुई घूमती है कहीं वह दुखिनी पथिक से प्रिय की आगमन तिथि उसकी कुशलक्षेम पूछती है[2]। विरहिणी की साधना और अनन्यता चातक के समान है[3]।

वेदना और दुख, करुणा और शोक, रुदन और अश्रुधारा के मध्य ही प्रियतम की प्राप्ति हो सकती है, हास्य और उल्लास के मध्य उसे ढूंढ़ना व्यर्थ है[4]। सुन्दरदास की नारी, अपलक नयनों से प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है, उपहार के लिए यौवन का अर्घ्य लिए। उसे अपने अंजलि के जल के समान क्षणभंगुर यौवन की व्यर्थता, एवम् नश्वरता पर विषाद है[5]। विरहिणी की दुविधा में पड़ी हुई, पीड़ा और वेदना के झूँक झूलती हुई दशा का सादृश्य गीली लकड़ी से दिखाया गया है। विरहिणी अपनी पीड़ा और वेदना के साम्राज्य की राजा अथवा रानी है। वस्तुतः विरह ही तो प्रेम का सुन्दरतम रूप है। जिस हृदय में विरह की अनुभूति नहीं है वह श्मशान के समान है[6]। नारी-हृदय का सान्निध्य पाकर संत कवयित्रियों के काव्य में विरहिणी का दुख और दैन्य और भी स्वाभाविक रूप में मूर्त्त हुआ है[7]।

---

१. "सुंदर विरहिन अधजरी, दुख कहै मुख रोइ
जरि बरि के भस्मी भई धुवा न विकसै कोइ।"
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ६८३, सा० १८

२. "पथीड़ा बूझै विरहिणी कहिनै पीव की बात
कब घर आवै कब मिलैं जोऊँ दिन रात।"
दादूदयाल—दादू की बानी, दूसरा भाग, पृ० ५३, १५० शब्द

३. "सुन्दर पिय के कारणें तलफै बारह मांस,
निसदिन कै लागी रहै चातक की सी प्यास।"
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ६, दो० २६

४. "हँसि हँसि कन्त न पाइए जिन पाया तिन रोय।
जो हाँसे ही हरि मिलै तो नहीं दुहागिन कोय।।"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६, दो० २६

५. "जोवन सेरा जात है ज्यों अंजुरी का नीर।
सुन्दर विरहिन बापुरी क्यों करि बाँधे धीर।।"
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ६८५, पद ४२

६. "विरहा बुरहा जिन कहो, विरहा है सुलितान।
जिस घट विरह न संचरै सो घट सदा मसान।।"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६, दो० २१

७. "काग उड़ावत कर थकै, नैन निहारत बाट।
प्रेम सिन्धु में परचो 'मन' ना निकसत को घाट।।"
दयाबाई—संतबानी संग्रह, पृ० १७१, पद ४

उद्दीपन रूप

संयोग काल में प्रिय के सान्निध्य में सुख और आनन्द प्रदान करने वाली वस्तुएँ वियोग में दुखद और काल सम प्रतीत होती हैं। चन्दन, चन्द्र ज्योत्स्ना आदि शीतल पदार्थ अग्नि के समान दाहक हो जाते हैं। वर्षा ऋतु में बादलों की उमँड़-घुमड़ दामिनी की दमक और भी वेदनाप्रद होती है[1]। सन्तों के माधुर्य भावांतर्गत रूपक के अनुसार यह जीवन नैहर है, जहाँ आत्मा अपने प्रिय से विलग होकर रहती है। किन्तु प्रिय की स्मृति प्रतिक्षण उसके हृदय में रहती है। सत्, चित आनन्द के साम्राज्य में इस अगम और अगोचर का रंगमहल है, उसी रंगमहल में प्रिय से अभिसार संतों का काम्य है। आत्मा और परमात्मा के मिलन के मूल में प्रेम की उद्दाम भावना है, इसी प्रेम की मदमाती भावना के पूर्ण विकास के लिए आध्यात्मिक विवाह की कल्पना हुई[2]। विकारहीन पावन प्रेमधारा से समस्त

"बौरी ह्वै चितवत, फिरूँ, हरि आवै केहि बाट।
सोवत जागत एक पल नहिं बिसरूँ ताहि ॥"

दयाबाई—संतवानी संग्रह, पृ० १७१, पद ४

१. "चन्दन सीतल चन्द्रमा जल सीतल सब कोइ।
दादू विरही राम का इन रमौ कदै न होइ ॥

दादू—दादूदयाल की बानी, पृ० ३६, दो० ६४

"चोवा चन्दन कुमकुमा, उड़त अबीर गुलाल,
सुन्दर विरहिन के हृदै उठति अग्नि की झाल ॥

दादूदयाल की बानी, पृ० ६८४, पद २६

"दामिनी चमकै चहुँ दिसा, बूँद लागत है बान।
सुन्दर व्याकुल विरहिण रहै कि निकसै प्रान ॥'

सुन्दरदास—सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ६८४, पद ४४

"मास असाढ़ रवि धरनि जरावै, जलत जलत जल आइ बुझावै।
रुति सुभाय जिमीं सब जागी, अमृत धार होइ झर लागी ॥
जिमी मांहि उठी हरियाई, विरहिन पीव मिले जन जाई।
मनिका मनि कै भए उछाहा, कारन कौन बिसारी नाहा ॥"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २३४

२. "हृदय में स्पष्ट भावों की स्वतंत्र व्यंजना हुए बिना प्रेम की अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती, एक प्राण में दूसरे प्राण के घुल जाने की वांछा हुए बिना प्रेम में पूर्णता नहीं आ सकती। एक भावना का दूसरी भावना में निहित हुए बिना प्रेम में मादकता नहीं आती। अपनी आशाएँ आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ और सब कुछ आराध्य के चरणों में समर्पित कर देने की भावना आए बिना प्रेम में सहृदयता नहीं आती। प्रेम की सारी

मलिनता का परिहार हो जाता है, नारी रूपी साधक विरह की अग्नि में तपकर खरा हो जाता है, तब आत्मा और परमात्मा का एकीकरण होता है। प्रेम के उस प्याले को परमात्मा के हाथ से पीकर आत्मा युग-युगान्तर को मतवाली हो जाती है।

मिलन के पूर्व की तैयारी

नारी (आत्मा अथवा भक्त) के हृदय में प्रिय के दर्शनों की उत्कट अभिलाषा के साथ आकुलता और उत्सुकता खेल रही है उसकी केवल एक कामना एवम् इच्छा है कि परम आराध्य के दर्शन होवें[1]। नारी प्रिय मिलन के लिए सोलह श्रृंगार, अभिनव साज सज्जा करती है, जब अंत में निराशा ही मिलती है तब दुख और वेदना की अतिशयता में वह चीत्कार कर उठती है[2]।

नारी प्रिय की प्रतीक्षा में है, उस लालसा में उसे शारीरिक आवश्यकताएं क्षुधा, तृष्णा और निद्रा की अनुभूति नहीं होती। सेजरिया बैरिन हो गई, जागते हुए ही विहान हो जाता है। पुनः प्रिय मिलन की इच्छा से वह अग्रसर होती है लज्जा उसके चरणों को बोझिल कर देती है, गति अटपटी हो जाती है, पुनःचढ़ चढ़ कर वह उस नीचे-ऊँचे मार्ग पर गिर पड़ती है[3]। भक्त के हृदय की नारी

व्यंजनाएँ और व्याख्याएँ एक पति पत्नी के सम्बन्ध में निहित है। रहस्यवाद के इसी प्रेम में आत्मा स्त्री बन कर परमात्मा के लिए तड़पती है सूफी मत के इसी प्रेम में जीवात्मा पुरुष परमात्मा रूपी स्त्री के लिए तड़पता है। इसी प्रेम के संयोग में रहस्यवाद और सूफीमत की पूर्णता है। प्रेम के इस संयोग को आध्यात्मिक विवाह कहते हैं।"

रामकुमार वर्मा—कबीर का रहस्यवाद, पृ० ६६, १९३२ प्रयाग

१. "वै दिन कब आवेगे माइ
जा कारन हम देह धारी है मिलिबो अंग लगाइ।"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १९१

"अविनासी दुलहा कब मिलिगो भगतन को रछपाल"

कबीर—कबीर वचनावली, हरिऔध पृ० १४०

२. "कियौ सिगांर मिलन के ताईं, हरि न मिले जग जीवन गुसाईं
हरि मेरो पिरहौं हरि की वहुरिया, राम बड़े मैं तनक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग वसेरा, सेज एक पे मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागनि जो पिय को भावै, कहि कबीर फिरि जनमि न आवै।"

कबीर—'परिशिष्ट' कबीर ग्रन्थावली, पृ० २७०

३. "तलफै विनु वालम मोर जिया
पिया मिलन की आस रहौं कब लौं खरी
ऊँचे नाँहि चढ़े जाय मने लज्जा भारी।

पतिव्रता का प्रतीक

सामान्य पतिव्रता तथा परमात्मा से एकनिष्ठ प्रेम करनेवाले भक्त को एक मानकर सन्तों ने पतिव्रता की महिमा गाई है[1]। परमब्रह्म को त्याग कर अन्य देवी-देवताओं की उपासना करनेवाले भक्त को व्यभिचारिणी माना है। व्यभिचारिणी अश्रद्धा और निन्दा की पात्री है[2]। इन भक्तों के प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। निवृत्ति-परायण, संयमशील सन्तों के अनुसार उनके काम, क्रोध, मद, मोह आदि के संघर्ष का थोड़ा बहुत आभास सती के संघर्ष से मिल सकता है[3]।

---

१. "पतिव्रता मैली भली काली कुचिल कुरूप,
पतिव्रता के रूप पर वारौ कोटि सरूप।"

कबीर—कबीर संतबानी सं० पृ० ४०

"पतिव्रता मैली भली गले कांच की पोत,
सब सखियन में यों दिपै ज्यों रवि ससि की जोत।"

कबीर संतबानी सं० पृ० ४०

"कबीर रेख स्यंदूर की काजल दिया नहिं जाइ
नैनू रमाइया रम रहा, दूजा कहाँ समाइ।"

कबीर संतबानी पृ० १९ सा० ४

"उस सम्रथ का दास हूँ कदे न होइ अकाज,
पतिव्रता नागी रहै तो उस ही पुरिस को लाज।"

कबीर संतबानी पृ० २० सा० १७

२. "पतिव्रता को व्रत गहौ विभिचारिन अंग छार,
पति पावै सब दुख नसै, पावै सुक्ख अपार।"

चरनदास—चरनदास की बानी, वेलवेडियर प्रे० १९०८, पृ० ९१

"पतिव्रता के एक है व्यभिचारिनि के दोइ,
पतिबरता व्यभिचारिनी मेला क्यों कर होइ।"

चरनदास—चरनदास की बानी, पृ० ९१

३. "कबीरदास के प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। भक्त का संग्राम शूर के संग्राम से भी बढ़कर है, सती के आत्मबलिदान से भी श्रेष्ठ है। परन्तु फिर भी यदि भक्त के आत्मबलिदान की झलक कहीं दिख सकती है तो वह सती और शूर में ही दिखती है।"

हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर पृ० १९४, १९४७ बम्बई

"कबीरदास भक्त और पतिव्रता को एक कोटि में रखते थे। दोनों का धर्म कठोर है, दोनों की वृत्ति कोमल है, दोनों के सामने प्रलोभन का दुस्तर जंजाल है, दोनों ही कांचन धर्मी हैं, ...बाहर से मृदु भीतर से कठोर बाहर से कोमल भीतर से परुष। सबकी सेवा में व्यस्त पर एक की आराधिका पतिव्रता ही भक्त के साथ तुलनीय हो सकती है।"

हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर पृ० १९१

माता का रूपक

नारी के मातृत्व, उसके स्नेहपूर्ण, वात्सल्य, अगाध ममता और क्षमाशीलता ने सन्तों के अन्तर को छुआ होगा, तभी उन्होंने भगवान को माता मानकर स्वयं को बालक माना है। ममतामयी, स्नेह-प्राणा जननी के समक्ष पुत्र का बड़ा अपराध भी क्षम्य और नगण्य होता है। वह बालक के सुख-दुख, हास-उल्लास को उससे अधिक अनुभव करती है। इसी जननी की स्नेहमयी प्रकृति की दुहाई देकर, कबीर अपने अपराध क्षमा कराते हैं[१]।

श्लेष रूप में नारी

कुछ सन्त कवि, कवि होने के अतिरिक्त विद्वान और काव्य-मर्मज्ञ भी थे। यथा सुन्दरदास जिन्होंने नारी शब्द में श्लेष का चमत्कार दिखाते हुए काव्य-रचना की है। नारी शब्द के द्विअर्थक प्रयोग में, एक से उनका तात्पर्य सामान्य स्त्री से है, दूसरे से मानव की [illegible] नाड़ी के अपभ्रंश (नारी रूप) से[२]। संकेत रूप से उन्होंने नारी के कर्तव्य एवम् आदर्श का निर्देश किया है कि उसे मृदुभाषिणी होना चाहिए। उसकी योग्यता, क्षमता पर गृह का सुख और शान्ति अवलम्बित है।

त्याग और तपस्या की जिस आधारभूमि पर सन्त स्थित थे, उसके अनुसार सन्तों ने नारी के कामिनी रूप को त्याज्य और घृणित बताया। संयम तथा आत्म-निरोध को श्रेयस्कर समझने वाले संतों ने कामी पुरुष और नारी दोनों को ही असत्

---

१. "हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न औगुन बक्सहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहे न तेते।
कर गहि केस करे जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहे कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी।"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पदावली, पृ० १२३, पद १११

"दादू कहें नहीं बस मोरा
तू जननी मैं बालक तोरा"

दादू—दादूदयाल की बानी, पृ० ७५, १७८ पद

२. "जाके घर नारी भली, सुन्दर ताके चैन।
जाके करकसा कलह करै दिन रैन॥"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ७०७

"नारी फिरै गली गली ताको लज्जा नाहिं।
सुन्दर मारयौ सरम को पुरुष घुस्यौ घर माहिं॥"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ७०८, पद १४

"भलो सयानो आइ जो समुझावै बहु भाँति।
कुलवन्ती मानै कह्यौ सुन्दर उपजै स्वांति॥"

सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ७०६, पद २२

का प्रतीक माना, क्योंकि उनका आदर्श भिन्न था[1]। काम को प्रधानता देने वाला पुरुष भी उनके अनुसार नाग है[2]। यह सन्त कवि भक्ति-साधना में काम आदि प्रवृत्तियों को सबसे बड़ा अवरोध मानते थे[3]। आकर्षणमयी नारी इसी से उनकी भर्त्सना एवम् निन्दा की पात्र अवश्य थी। पर नारी के कल्याणमय रूप पातिव्रत एवम् सतीत्व की उपेक्षा वे न कर सके। नारी हृदय के निश्छल समर्पण, आकांक्षारहित स्नेह और निश्छल भक्ति के साथ उन्होंने अपनी भावनाओं का तादात्म्य कर दिया, तथा स्वयं को अविनाशी प्रियतम की पत्नी एवम् प्रेयसी माना। नारी के वात्सल्यपूर्ण माता रूप के प्रति भी सन्तों के हृदय में श्रद्धा की भावना थी। साथ ही दीर्घकाल से धर्म के क्षेत्र से बहिष्कृत नारी को सन्तों ने भक्ति का अधिकारी माना। सन्तों के काव्य में नारी के प्रति खण्डनात्मक दृष्टिकोण, उसका प्रतीक रूप, पतिव्रता रूप के प्रति मोह और आदर की भावना तो मिलती है, पर तत्कालीन नारी की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के विषय में सन्त मौन हैं। सन्तों ने नारी के भक्ति के अधिकार को तो मान्यता दी, परन्तु उसके अन्य आर्थिक, सामाजिक अधिकारों के प्रति वे अन्यमनस्क ही रहे।

---

१. "ऊँच भवन कनक कामिनी सिखरि धजा फहराइ,
ताते भली मधुकरी संत संत संग गुन गाइ ॥"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास संपादित, पृ० २४८, दो० २ परिशिष्ट

२. "विषै कर्म की कंचुली पहिर हुआ नरनाग।
सिर फोड़ै सूझै नहीं को अगिला अभाग ॥"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, पृ ४१, दो० २१

३. "जब लग नाता जगत का तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै,, भक्त कहावै सोय ॥"
कबीर—कबीर वचनावली, हरिऔध, पृ० ९, सा० ८५

प्रकरण २

सूफी-काव्य में नारी

कबीर आदि सन्त कवियों के उपदेश, जटिल उल्टवासियों एवम् संध्या भाषा की पदावली में कहे हुए पद जनता के हृदय को नहीं स्पर्श कर सके, उनका निर्गुण ब्रह्म, सर्वशक्तिमान एवम् सर्वव्यापक होता हुआ भी एक सीमित वर्ग के ज्ञान का विषय ही बन सका। परन्तु इन प्रेमगाथाकारों ने मानव जीवन की सामान्य पृष्ठभूमि में घटित प्रेम और त्याग की लोकगाथाओं में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से प्राणोन्मेष कर जिन काव्यों की फारसी मसनवी-पद्धति पर रचना की, वे जन-हृदय की संवेदना को गुदगुदा रहे थे। इन सूफी कवियों ने भारतीय लोक-हृदय में रमी हुई हिन्दू-जीवन की आख्यायिकाओं को लेकर बाधाओं एवम् कठिनाइयों के मध्य अविचलित रहने वाले जिस प्रेम का चित्रण किया वह किसी विशेष वर्ग अथवा जाति की संपत्ति न होकर मानवमात्र का अधिकार है। इन सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम के द्वारा ही अलौकिक प्रेम, इश्कमजाजी द्वारा ही इश्क-हकीकी का चित्रण किया।

सूफी-काव्य की पृष्ठभूमि

सूफी काव्य का उद्गम स्थान फारस और ईरान ही है। यद्यपि सूफी-मत को इस्लाम का एक प्रधान अंग माना जाता है, पर मुहम्मद साहब के आविर्भाव के पूर्व ही सूफी-मत का उद्भव एवम् विकास हो चुका था। सूफियों का परम प्रेम देव-दास एवम् देवदासियों के मादन-भाव का ही परिमार्जित रूप है। जिस समय इस्लाम के अनुयायी हदीस का अपने संकीर्ण स्वार्थानुसार अर्थ लगा रहे थे। धर्म प्रचार की पवित्र भूमि सत्ता-स्थापन के लिए हिंसा एवम् रक्तपात की रंगभूमि बनी हुई थी। उसी समय प्रेम की प्रतिमा राबिया (मृ० ८०६) का आविर्भाव हुआ। वह अपने को परमात्मा की दुलहिन मान कर उसके विरह में तड़पती थी। मंसूर ने खुदा और बन्दे के अभेद-भाव को सिद्ध करना चाहा। धर्मान्धों को मंसूर के इस सिद्धान्त में इस्लाम की स्पष्ट अवहेलना प्रतीत हुई। भारतीय अद्वैत को ही अनहलक की परम अनुभूति में पर्यवसित कर हल्लाज अथवा मंसूर ने अपने उत्सर्ग से सूफी मत को बलदान किया। सत्ताधारियों की धर्मान्धता से बचने के लिए सूफी लोगों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार आख्यान तथा मसनवी के रूप में प्रतीक पद्धति से करना प्रारम्भ कर दिया। मौलाना रूमी आदि मनीषियों ने इसी रोचक प्रणाली का अवलंबन किया। मौलाना रूमी की मसनबियों की लघु-काव्य-कथाओं में कुरान का तत्व एवम् तसव्वुफ का सार निहित है। हाफिज, उमरखैयाम और रूमी इन्हीं का

अनुकरण सूफियों की काव्य परम्परा में हुआ है। इन सभी कवियों के काव्यों में प्रेम की पीर, सुरा की मादकता, आध्यात्म की तीव्रता है। इस्लाम की कृपाण की धार, उसकी दुर्दान्त हिंसा देखने के पूर्व ही भारत इन सूफी दरवेशों की प्रेम-कहानियाँ सुन चुका था। शान्ति स्थापन, धर्मोन्माद के दानव के शान्त हो जाने पर जन-साधारण उनकी ओर उन्मुख हुआ। त्याग और उत्सर्ग की भित्ति पर स्थित सिर का सौदा करने वाले प्रेम की कहानियाँ जन-हृदय के औत्सुक्य एवम् कौतूहल का केन्द्र बनी। हिन्दू-जीवन की सामान्य प्रेम कथाएँ सूफी सिद्धान्तों के साँचे में ढल कर वियोग की पीड़ा और संयोग की माधुरी में अमर हो गई।

सूफी-काव्य वस्तुत: प्रेम काव्य है। यहाँ आत्मा और परमात्मा ही प्रेम के आलम्बन हैं। असीम के अनुराग की मादकतापूर्ण मदिरा इस अनुराग को उद्दीप्त करती रहती है। सामान्यत: सुरा से मानव कुछ समय के लिए सांसारिक दुख-सुख, हर्ष-संताप, की ज्वालाओं से मुक्त हो जाता है। पर यह प्रेम-मदिरा का मतवाला सदा ब्रह्मानन्द में लीन रहता है। प्रभु के साक्षात्कार, उससे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जाने के उपरान्त साधक जिस खुमारी की स्थिति में रहता है उसकी व्यंजना सूफी कवियों ने मदिरा के प्रतीक से की है। मानस की मृदुल अभिलाषाओं का आलम्बन अल्लाह अथवा प्रेयसी मधुबाला (साकी) बन कर इस हाला को अपने कुसुम-कोमल-करों से वितरित करता है। यही मदिरा सन्तों में भी अमृत अथवा सोमरस के नाम से अभिहित हुई[1]। ईरान सदा से ही सभ्यता एवम् संस्कृति के अभ्युत्थान का केन्द्रस्थल रहा है। तसव्वुफ पर ईरान की संस्कृति का प्रभाव अधिक है।

सूफी जीवन-दर्शन

इस्लाम को मान्यता देते हुए भी सूफियों के सिद्धान्त उससे भिन्न हैं। इस्लाम सामाजिक धर्म है। वह नमाज़ रोज़े आदि पर अधिक बल देता है। परन्तु इन सूफी सन्तों के अनुसार बाह्याचार व्यर्थ है। व्यक्तिगत साधना और आत्मशुद्धि द्वारा ही मानव जीवन में इच्छित वस्तु एवम् ध्येय को पा सकता है। सूफी होने के लिए पहले तृष्णा, काम, क्रोध आदि मनोविकारों का दमन आवश्यक है। भारत में आकर तत्कालीन नाथपंथी योगियों आदि के प्रभाव से हठयोग का भी उनके सिद्धान्तों में समावेश हो गया। तत्कालीन भारतीय धर्मों से सूफी मत में कई समानताएँ हैं। भारतीय धर्मों का अद्वैत, एकेश्वरवाद की भावना, योग प्राणायाम की विधियाँ, गुरु को अधिकाधिक महत्व देना तथा असीम सत्ता के प्रति प्रेम भाव रखना, आदि सूफी कवियों में भी रही हैं। सूफी कवियों का ब्रह्म इस्लाम का खुदा ही है, तथा रसूल और पैगम्बर भी उन्हें मान्य हैं। सूफियों का ईश्वर भय

---

१. "खेचरी मुद्रा में योगी की ऊर्ध्वगा जिह्वा उसी अमृत रस का पान करती रहती है। यही अमृत सोमरस है इसको पान करने वाला योगी अमर हो जाता है।"
हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृ० ४८, ४६, द्वितीय सं० १६४७, बम्बई

का कारण नहीं, अपितु प्रेम और उपासना का पात्र है। विश्व के कण कण, प्रकृति के प्रत्येक अवयव में उसी की महिमा देख कर हृदय उससे पूर्ण परिचय कर लेता है। जीव से श्रेष्ट होने पर भी उसे जीव के सुख-दुख से संवेदना है।

सूफी अपने खुदा से संपूर्ण हृदय से प्रेम करता है, यह प्रेम और अनुराग ही उसका जीवन है। यह प्रेम ही सूफी-दर्शन अथवा सिद्धान्तों की आधारशिला है। वह लौकिक प्रेम को अपने ध्येय तक पहुंचने का सोपान मानते हैं[१]। इस प्रेम और उपासना की भावुकता के होते हुए भी सूफियों का ब्रह्म अमूर्त ही है। सूफी मत में भी संतों के समान प्रेम को सर्वाधिक महत्व मिला है। उनके अनुसार ईश्वर ने प्रेम के ही कारण संसार की उत्पत्ति की। प्रेम में मरने वाला व्यक्ति अमर हो जाता है[२]। इन सूफियों ने संतों के समान प्रेम का पथ अत्यन्त दुर्गम माना[३]। प्रेम के मार्ग का सबसे बड़ा बाधक शैतान है, यह शैतान भारतीय-दर्शन की माया ही है। जिस प्रकार माया ब्रह्म से ही उत्पन्न है, उसी प्रकार शैतान भी अल्लाह का ही अंश है। सूफी मत में सर्वात्मवाद का बहुत महत्व है। सूफी प्रत्येक वस्तु में अपने उपास्य का ही नूर, उसी का अप्रतिम सौन्दर्य देखते हैं। उस जमाल को दृष्टिगत कर ही सूफी साधक खुदा की ओर अग्रसर होता रहता है। सूफी अपने अनन्त प्रियतम के अनन्त वियोग में लीन रहता है, अतः उसने अपने काव्यों में भी वियोग को महत्त्व दिया है। वियोग मानव को अमरत्व प्रदान कर देता है[४]। अनन्त के

---

१. "यही कारण है कि सूफी साफ-साफ कह देते हैं कि इश्कमजाजी इश्क-हकीकी की सीढ़ी है। और उसी के द्वारा इंसान खुदी को भेंट कर खुदा बन जाता है।"—

चन्द्रवती पांडेय—तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृ० ११, १९४८ द्वि० सं० काशी

२. "अलष प्रेम कारन जग कीन्हा। धन जो सीस प्रेम मंह दीन्हा।
जाना जेहिक प्रेम मा जीया। मरै न कबहूं सो मर जीया।।
प्रेम खेत है यह दुनियाई प्रेमी पुरुष करत बोआई।
जीवन जाग प्रेम को कहई, सोवन मीचु को प्रेमी कहई।।"

नूरमोहम्मद—इन्द्रावती : हिन्दी के कवि और काव्य : भाग ३, पृ० ७८
गणेशप्रसाद द्विवेदी, इलाहाबाद

"भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा प्रेम जेहिं खेला
जेहि सीस प्रेम पंथ लावा, सो पृथ्वी मंह काहे आवा।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली : माताप्रसाद गुप्त : पृ० १८५, १९५२ प्रयाग

३. "गिरिवर प्रेम विकट अति ऊंचा। धाइ चढ़ासो तहाँ पहुंचा।"

उस्मान—चित्रावली : जगमोहन सम्पादित : पृ० ४४

४. "जिहि तन मन विरहा संचरै, सो जिउ जीवै नहि पुनि मरै।।"

आलम—माधवानल-कामकंदला ; हिन्दी के कवि और काव्य :
[illegible]ग ३, पृ० २०३

इस विरह में विश्व का कण कण व्याकुल रहता है।

इन सब सूफी कवियों को यजीद का मत मान्य है। इसके अनुसार जीव खुदा का ही प्रतिबिम्ब है। जीवात्मा के प्रति परमात्मा का प्रेम उसके प्रेम से कहीं अधिक है। पर अज्ञान एवम् मोह के आवरण के कारण जीव यह जानता है कि वह खुदा को प्यार कर रहा है। जीव विश्व की माया में अपने उस प्रेम को भूल जाता है तब परमात्मा अपने दूत अथवा गुरु द्वारा उसको अपना संदेश भेजता है। इसी कारण सूफी-दर्शन एवम् काव्यों में गुरु एवम् गुरु-परम्परा का बहुत महत्व है। गुरु की कृपा से ही आत्मा और परमात्मा का एकीकरण, अनलहक़ की अनुभूति संभव है। यह 'अहं ब्रह्मास्मि' का ही परिवर्तित रूप है। बेसुधी अथवा हाल की दशा में ही जीव को अद्वैत की अनुभूति होती है। उसके पश्चात् वह परमात्मा से एकीकरण के लिए व्याकुल हो उठता है। उसकी प्रेममयी दृष्टि प्रकृति की प्रत्येक क्रीड़ा में दिव्य शक्ति का आभास पाती है। हाल की दशा में अद्वैत की अनुभूति के पश्चात् साधक उसके साक्षात्कार एवम् दर्शन के लिए व्याकुल हो उठता है। यही वेदना इसके समस्त दर्शनों एवम् सिद्धान्तों का आधार है।

दाम्पत्य-भाव का प्रतीक

इन सूफियों ने अपने हृदय की उत्कट रति की अभिव्यक्ति दाम्पत्य भाव के प्रतीक द्वारा ही की। किन्तु इस प्रतीक में उन्होंने परमात्मा को स्त्री तथा आत्मा को पुरुष मान कर ही प्रेम की पीर की अभिव्यंजना की। इब्न अरबी के अनुसार ईश्वर को स्त्री रूप में मान कर उपासना करना श्रेष्ठ है[1]। फारसी-परम्परा में प्रेम की प्रबलता, विरह वेदना में पुरुष ही अधिक व्यग्र होता है। अतः इन सूफी कवियों ने आत्मा को पुरुष माना। प्रेम की उग्रता, रति की प्रबलता के कारण उनकी विरह वेदना भी तीव्र होती है, उन्हें समस्त विश्व ही अपने विरह से प्रभावित प्रतीत होता है। किन्तु यह विरह सामान्य अथवा लौकिक न होने के कारण अत्यन्त मधुर सौख्यमय है। विश्व की सृष्टि से पूर्व आत्मा परमात्मा के ही पास थी, उसका यह पार्थिव अस्तित्व निर्वासन सा है, और उसकी वियोग भावना घर की याद सी[2]।

सामान्यतः मृत्यु मानव जीवन का अवसान होने के कारण दुख एवम् शोक का कारण होती है। परन्तु सूफियों के अनुसार मृत्यु महामिलन है, मृत्यु उपरान्त जीवात्मा चिरकालीन विरह वेदना को झेल कर असीम एवम् अनन्त में लीन हो जाती है। संभवतः यही इन सूफी संतों का काम्य एकता के वैवाहिक मण्डप में परमात्मा के साथ रहस्यमय विवाह है[3]। अतः सूफी सन्तों एवम् कवियों के लिए मृत्यु, हर्ष

---

१. निकलसन—स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म, पृ० १६१, १६२१ कैम्ब्रिज

२. निकलसन—मिस्टिक्स आफ इस्लाम, पृ० ११६, १६१४ लंदन

३. रेनाल्ड निकलसन—द मिस्टिक्स आफ इस्लाम, पृ० ११६, १६१४ लंदन

एवम् उल्लास की वाहिका है। उन्होंने मृत्यु का वर्णन बड़े मनोयोग से किया है।

प्रेमगाथाओं की परम्परा और आध्यात्मवाद

जायसी ने अपने से पूर्व की कुछ प्रेम-गाथाओं का उल्लेख किया है[1]। रामकुमार वर्मा के अनुसार इन प्रेमगाथाओं का प्रारम्भ मुल्ला दाउद की नूरक और चन्दा से होता है[2]। श्रीगणेश हो जाने पर भी इन प्रेमगाथाओं की परम्परा बहुत देर से चली। जायसी के दिए हुए प्रसंग में से उनके पूर्व की केवल मृगावती और मधुमालती प्राप्य हैं, शेष अप्राप्य हैं।

मृगावती	कुतुबन	(१५५८ सं०) १५०१ ई०
मधुमालती	मंझन	(१५५० सं० ६५ सं० का मध्यकाल) १४९३ ई०, १५३८ के मध्य
पदुमावत	जायसी	(१५९७ सं०) १५४० ई०
चित्रावली	उस्मान	(१६७० सं०) १६१३ ई०
इन्द्रावती	नूरमुहम्मद	(१८०१ सं०) १७४४ ई०
माधवानल-कामकन्दला	आलम	(१६९७ सं०) १६४० ई०

इन सभी प्रेमगाथाओं के कथानक प्रेमकथाएँ हैं। प्रेम ही उनका केन्द्रविन्दु है। पद्मावत में रत्नसेन एवम् रानी पद्मावती की प्रेमकथा का चित्रण हुआ है। चित्रावली में उस्मान ने सुजान-चित्रावली तथा सुजान-कौलावती के प्रणय का वर्णन किया है। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है कि इनमें पुरुष में ही प्रेम का उत्कर्ष अधिक दिखाया गया है। विरह जनित वेदना और उद्वेग पुरुष में ही अधिक है। वास्तव में सूफी कवियों का ध्येय अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को कहानी के रूप में मनोरंजक कर जनसामान्य के समक्ष रखना था। पूर्ववर्ती कवियों ने अपने सिद्धान्तों को ही अधिक प्रधानता दी, कहानी का महत्व उनके लिए गौण था। परन्तु धीरे-धीरे मनसवी ढंग से लिखी हुई इन प्रेम-गाथाओं में साधारण

---

१. "विक्रम धंसा प्रेम के बारां, सपनावति कहँ गएउ पतारा।
मधुपा मुगुधावती लागी, गगन पूर होइगा वैरागी।
राजकुंवर बेचनपुर गएउ, मिरगावति कहँ जोगी भएउ।
साध कुंवर खण्डरावत जोगू, मधुमालती कहँ दीन्ह वियोगू।
प्रेमावति कहँ सुरसरि साधा, उषा लागि अनिरुद्ध वरलागा।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, रामचन्द्र शुक्ल, १९३५ द्वि० सं० प्रयाग
पृ० ११३, ११४

२. "धार्मिक काल के प्रेम काव्य का आदि चन्दावन या चन्दावत से ही मानना चाहिए। यद्यपि इस प्रेम कथा की परम्परा बहुत बाद में आरम्भ हुई पर उसका श्रीगणेश मुल्ला दाउद ने कर दिया।"
रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,
पृ० ३०६, १९५४ प्रयाग

प्रेम का वर्णन मात्र मिलने लगा। युसुफ-जुलेखा इस उत्तरकालीन मनोवृत्ति के उदाहरण हैं।

आध्यात्मवाद

कवियों ने इन लौकिक प्रेम कथाओं द्वारा आध्यात्मिक विचार प्रकट किए हैं। जायसी के पद्मावत, उस्मान की चित्रावली, नूर मुहम्मद की इन्द्रावती, आलम की माधवानल-कामकन्दला सभी में नायक नायिकाओं के गुण-श्रवण-चित्रदर्शन स्वप्न अथवा प्रत्यक्ष-दर्शन द्वारा उसके सौन्दर्य का परिचय पाकर व्यग्र हो उठता है। नायिका का वासस्थान अगम्य है, जहाँ पहुँच कर मानव को अनन्त सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। वह पुनः सांसारिक संतापों की धूप सहने नहीं आता है[1]। इन काव्यों पर हठयोग का भी प्रभाव है।

आध्यात्मिकता के विषय में मतभेद

इन सूफी-काव्यों के आध्यात्मिक संकेत के विषय में मतभेद है। यद्यपि जायसी ने अपना सांकेतिक कोष भी अन्त में दिया है, तथा अन्य कवियों ने भी नख-शिख-वर्णन में अलौकिकता का समावेश किया है। इस विषय पर विभिन्न विचार निम्नलिखित हैं[2] :—

---

१. "पथिक जौ पहुँचै सहि धामू, दुख विसरै सुख होइ बिसरामू।
जिन्ह वह पाइ छांह अनूपा, बहुरि न आइ सही यह धूपा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३३८

२. "सारी कथावस्तु प्रेमाख्यान में ही विस्तार पाती है, और उसमें किसी प्रकार की उपदेश देने की प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती। कथा समाप्ति पर संक्षेप में कथा के अंगों और पात्रों को सूफीमत पर घटित किया जाता है। और समस्त कथा में एक आध्यात्मिक व्यंजना (Allegory) आ जाती है।"
रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३२८, १९५४ प्रयाग

"इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित प्रेमकथाओं द्वारा प्रेम मार्ग का महत्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्व का आभास दिया है, जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है।"
रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७१, २०१२ संवत् काशी

इसी का समर्थन हिन्दी के कवि और काव्य तृतीय भाग (प्रेम-गाथा-काव्य संग्रह की भूमिका में गणेश प्रसाद द्विवेदी ने किया है।)

गणेशप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३, पृ० ९
"इन काव्यों में आध्यात्मिकता के छोटे-छोटे संकेत हैं, जो कि परम्परा का प्रभाव है। उससे इन काव्यों में किसी प्रकार की अन्योक्ति अथवा समा-

सूफी-काव्य में नारी

इन प्रेमगाथाकार सूफियों के अनुसार नारी प्यार एवम् उपासना की वस्तु है। उसे योग, त्याग और उत्सर्ग द्वारा ही पाया जाता है। बल प्रयोग अथवा कृपाण की धारा से उसे अधिकृत नहीं किया जा सकता है। उसका प्रेम लौकिक हो अथवा अलौकिक अपने में ही महान् है। सूफी कवियों में सन्तों के समान खण्डनात्मक पक्ष का अभाव है। उन्होंने नारी को असत् की प्रतीक, नरक का द्वार तप की बाधा न मानकर कल्याण एवम् सत् की विधायिका माना है। निसंशय: सूफी-मत में नारी के प्रति भव्य दृष्टिकोण होगा, तभी तो उसे उन्होंने अन्नत का प्रतीक माना है। यद्यपि कथानक के मध्य में नारी के प्रति सामान्य कथनों में उसकी दुर्बलताओं एवम् दुर्गुणों की व्याख्या कर उसे मतिहीन बताया है। उसे कामिनी और भोग की ओर उन्मुख करने वाली बताया है। सम्भव है यह कवियों के मत से सम्बन्धित न हो। उनका नारी के प्रति दृष्टिकोण तत्कालीन सामाजिक परम्परा से भिन्न है। सामान्यत: सभी सूफी-काव्यों में नारी के सत्-रूप ने ही व्यंजना पाई है। उनके अनुसार नारी का प्रेम और अनुराग पुरुष के लिए काम्य है। नारी के विमोहक सौन्दर्य पर वह मुग्ध हो जाता है[1]। यद्यपि वह नारी के ऊपर दीपशिखा पर शलभ के समान बलि होने को प्रस्तुत है[2], पर उसके इस प्रेम में वासना अथवा लोलुपता नहीं है, तभी अप्सरा को देखकर भी रत्नसेन

सोक्ति की भावना नहीं आती। इनकी लौकिकता का पर्याप्त प्रमाण इनका काम-शास्त्र-खण्ड, संयोग वर्णन आदि दे रहे हैं।"

कमल कुल श्रेष्ठ—हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्य, पृ० १७३, १९५३ अजमेर

"इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामूहिक रूप से इन कहानियों में सूफी सिद्धान्तों की व्यंजना नहीं है। ये कवि किसी अन्योक्ति को काव्य में नहीं रखते थे। ये कवि इन कहानियों के माध्यम से नैतिक व एकाध मार्मिक उपदेश देते थे। इन्हें सूफी प्रेममार्गी कहना गलत है, और भक्ति-युग के निर्गुण-काव्य की दो शाखायें बनाकर इन्हें दूसरी मे रखना महत्वहीन है।"

कमल कुल श्रेष्ठ—हिन्दी प्रेमाख्यानक-काव्य, पृ० १७३, १९५३ अजमेर

१. "पदुमावति राजा के बारी, हौं जोगी तेहि लागि भिखारी।

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७

२. "भएऊँ भिखारि नारि तुम्ह लागी, दीप पतँग होर अगएऊँ आगी।
भँवर खोज जस पावै केवा, तुम्ह काँटे मैं जिव पर छेवा।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३२८

"जेहि कारन पिव पहिरा कन्था, जीव देत हौं तेहि के पन्था।"

उस्मान—उस्मान चित्रावली, पृ० १३०

प्रभावित नहीं होता[1]।

अन्योक्ति अथवा समासोक्ति सम्बन्धी विवाद को त्याग देने पर भी सूफी-काव्यों में नारी के दो रूप दृष्टिगत होते हैं। पद्मावती, चित्रावली, मधुमालती तथा मृगावती आदि केवल सामान्य नायिका मात्र नहीं हैं, वह दिव्य शक्ति की प्रतीक हैं। सूफियों की रहस्यवादी प्रणय-मूला भक्ति के अनुसार प्रेमी अथवा आत्मा-साधक है, और प्रेमिका ईश्वर अथवा दिव्य बुद्धि है। यह दृष्टिविन्दु का अन्तर फारसी पद्धति के कारण है।

लौकिक और अलौकिक दोनों रूप

सूफियों की भावाभिव्यक्ति एवम् वर्णन शैली की सबसे बड़ी विशेषता यही है, कि उसमें नारी के दोनों रूपों का सम्यक चित्रण मिलता है[2]। वह दिव्य शक्ति की प्रतीक होने के अतिरिक्त सामान्य अस्थि मज्जा की भाव-आन्दोलित मानव-प्रतिमा भी है। अलौकिकता से समन्वित होने के साथ ही उसमें व्यावहारिकता एवम् प्रत्युत्पन्न मति भी है। नारी सुलभ ईर्ष्या, सपत्नी द्वेष की भावना से प्रेरित होकर वह सपत्नी से विवाद करती तथा द्वेष की ज्वाला में ज्वलित होती है। पातिव्रत के गौरव से सम्पन्न इन नायिकाओं में दिव्य शक्ति के साथ नारी के सहज समर्पण एवम् उत्सर्ग की भावना भी है। अतः यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि सूफी काव्य में नारी लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों में चित्रित की गई है। अलौकिक रूप में वह परम शक्ति, ज्योति, साधक की साधना, उपासना और भक्ति की पात्री है। लौकिक रूप में वह पुरुष की प्रेयसी और पत्नी है। गृह के कर्मक्षेत्र, विविध पारिवारिक सम्बन्धों में उसके सत् एवम् असत् रूप की व्यंजना हुई है।

अलौकिक रूप

परम शक्ति की प्रतीक नारी अलौकिक एवम् दिव्य स्वरूप से समस्त विश्व को मोहाभिभूत कर लेती है। उस्मान की चित्रावली संसार की मणि है, देवगण भी जिसके तेज-पुंज के समक्ष नत हैं। ब्रह्म के समान वह विरोधी गुणों से पूर्ण है, प्रकट होते हुए भी वह सामान्य जन की दृष्टि से परे है। चारों वेदों के रहस्य से अभिज्ञ ब्रह्मा तथा निष्काम सेवक शंकर भी उस अदृश्य तेज समन्वित शक्ति की अगाधता को पा न सके। साधारण जन के माया तथा भौतिक प्रलोभनों के आवरण से आच्छन्ननयन उसको देखने में असमर्थ है। यद्यपि वह इस सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हो रही है,

---

१. "भलेहि रंग तोहि आछरि राता, मोहि दोसरे सौ भाव न बाता।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६१

२. "इस परोक्ष अथवा गुह्य प्रेम की व्यंजना की विशेषता यह है, उसमें लौकिक और अलौकिक रूप साथ-साथ चलते हैं। दोनों का अपना महत्व होता है।"
हरिकान्त श्रीवास्तव—भारतीय हिन्दी प्रेमाख्यान, पृ० ५७, १९५५, काशी

प्रकृति के प्रत्येक व्यापार में उसका अस्तित्व है[1]। इन दिव्य प्रतीकों का नख-शिख वर्णन भी अलौकिकतापूर्ण है। पद्मावती के भृकुटि संचालन से सम्पूर्ण विश्व अभिभूत है। उस तेज-पुंज की वन्दना देवगण करने को उत्कण्ठित रहते हैं। उसके पायलों के नूपुर में चन्द्र और सूर्य की दीप्ति झनकार करती रहती है, नक्षत्र और तारे ही उसके पैरों के आभूषण हैं[2]। इन्द्रावती का नख-शिख भी अलौकिक है[3]। इस दिव्य शक्ति की प्रतीक नारी के रूप, गुण श्रवण, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दर्शन से, रहस्यवादी भाषा में नबी अथवा गुरु द्वारा उसके नूर और जमाल का आभास पाकर साधक प्रकृति तथा संसार की प्रत्येक वस्तु एवम व्यापार को उसी अनन्त से प्रभावित पाता है। सूफी साधकों का यह सिद्धान्त कि ईश्वर का आत्मा पर उससे अधिक प्रेम होता है, भी यहाँ घटित होता है। अनेक बाधाओं तथा अवरोधों के मध्य अविचलित रहने वाले साधक के इस प्रेम को देख कर, उसकी गूढ़ता का परिचय पाकर उस दिव्य शक्ति अथवा विद्या का भी उस पर विशेष अनुराग हो जाता है, वह भी उसकी विरह वेदना से व्यथित हो जाती है। नारी के अलौकिक रूप के दर्शन-काल में, अथवा दिव्य शक्ति के साक्षात्कार में साधक उस तेजपुंज को सह नहीं पाता और उसे हाल अथवा बेसुधी आ जाती है। इस अलौकिक नारी के आकांक्षी पुरुष को स्वर्ग की अभिलाषा नहीं रहती है[4]। वह पुरुष की गुरु, उसके प्रेम पंथ की निर्देशिका होती है। इसके मोहन रूप, दिव्य तेजोमय सौन्दर्य के अवलोकन के उपरान्त साधक में दृढ़ता एवम् साहस का स्फुरण होता है, और उसके चरणों में अपने प्राण का पुष्प

---

१. "उन बानन्ह अस को न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १८९

"गगन नखत अस जाहि न गने। हैं सब बान ओहि के हने।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० १८९

२. "देवता हाथ-हाथ पगु लेहीं, पगु पर जहाँ सीस तहँ देहीं।
माथे भाग को दहुँ अस पावा, कँवल चरण लै सीस चढ़ावा।।
चूरा चाँद सुरज उजियारा, पायल बीच करहिं झनकारा।
अनवट बिछिया नखत तराई, पहुँच सकै को पावन्हि ताई।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ १९९

३. "अरु रूपवन्ती सुन्दर आहै, बिनु देखे सब ताहि सराहै।
खोलै मुख परभात देखावै, खोलैं केस साँझ होइ आवै।"

नूर मुहम्मद—इन्द्रावती : हिन्दी कवि और काव्य भाग ३ :
पृ० ९०, इलाहाबाद

४. "हौं कविलास काह लै करऊँ, सोई कविलास लागि ओहि मरऊँ।
ओहि के बार जीवनहुँ वारौं, सिर उतारि नेवछावरि डारौं।।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली (माता प्रसाद गुप्त) पृ० २६२

भी चढ़ा देने को तत्पर हो जाता है[1]।

नारी का लौकिक रूप

प्रतीक तथा कुछ विशेष स्थलों को हटा देने पर सूफी कवियों की नारी लौकिक और सामान्य हो जाती है। इनके प्रेम-प्रधान दृष्टिविन्दु के अनुसार प्रेम ही जीवन की चरम गति है। इनके पात्रों का आदर्श प्रेम-मार्ग को अपनाना ही है। नारी के लौकिक रूप में प्रेयसी के रूप की ही प्रधानता है। वह प्रेमोन्मत्त प्रेमिका सामाजिक प्रतिबन्धों को नगण्य मानती है तथा बाधा और कठिनाइयों से पराभूत नहीं होती है। उनका प्रेम नक्षत्र के समान गतिशील न होकर शिला सा दृढ़ और अविचल होता है। साधारण मानवी के समान वह वियोग की वेदना से दुखी और संयोग की सरसता में लीन हो जाती है। उसके प्रेम का पर्यवसान अन्त में विवाह होता है। विवाह के उपरान्त प्रेयसी की उद्दाम प्रेम-भावना वासना के निर्जीव विलास में निमज्जित हो जाती है। इन प्रेम गाथाकारों की भावना फारसी और सामयिक परिस्थितियों के विलास प्रधान दृष्टिविन्दु के कारण वैभव और विलास के सीमित क्षेत्र में ही केन्द्रित रही। इन समस्त कवियों की नायिका वैभव एवम् विलास में पली सुकुमारी हैं। सामान्य नारी, उसके दुख-सुख इनके काव्य में अभिव्यक्ति न पा सके। सभी सूफी नायिकाएँ पद्मावती, मधुमालती, इन्द्रावती और चित्रावली वैभव और ऐश्वर्य की ही पृष्ठभूमि में पलती हैं। पुष्पशैया पर पली यह नारी सौख्य और विलास की अमराई में यौवन और प्रणय के सुनहले स्वप्न देखती हैं। यौवनागमन के साथ ही कन्त की चाह उनके हृदय को गुदगुदाने लगती है[2]।

पुनः प्रेम का व्यापार आरम्भ हो जाता है। चित्र-दर्शन गुण-श्रवण, स्वप्न-दर्शन आदि से प्रेम का आरम्भ होता है। सामाजिक बन्धन एवम् रूढ़ियाँ कुल-लज्जा और गुरुजनों का विरोध आदि अवरोधों के मध्य प्रेम का यह पादप विकसित होता रहता है। इन सुकुमारियों का विरह ऊहात्मक व्यापारों और राजकीय शीतोपचारों से पूर्ण है। इन समस्त अवरोधों एवम् कठिनाइयों के उपरान्त विवाह हो जाता है। विवाहोपरान्त मिलन के समय की वासना एवम् कामुकता के प्रदर्शन में इन कवियों ने आध्यात्म की पावनता तथा मर्यादा का अतिक्रमण कर दिया है। इन नायिकाओं में प्रेयसी रूप के अतिरिक्त सामाजिक अथवा पारिवारिक

---

१. "सो पदमावति गुरु हौं चेला, जोग तन्त तेहि कारन खेला।
जीउ काढ़ि भुई धरौं लिलाटू, ओहि कह देहुँ हिए में पाटू।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली : माता प्रसाद गुप्त : पृ० २८५

२. "एक दिवस पदमावति रानी, हीरामन तहं कहा सयानी।
सुन हीरामन कहौं बुझाई, दिन-दिन मदन सतावै आई।
जोबन मोर भयो जस गंगा, देह-देह हम्ह लगा अनंगा।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१,
२००६ सं० काशी

जीवन के मध्य सत् और आदर्श रूप की अभिव्यक्ति कम हुई है। इनके त्याग और बलिदान की सीमा उत्सर्ग की भावना का अवसान प्रेयसी रूप में ही हो जाता है। उनमें धैर्य एवम् सहिष्णुता का अभाव है। सपत्नी के उल्लेखमात्र से द्वेष और ईर्ष्या चीत्कार कर उठती है। सामयिक प्रभाव के कारण इन प्रेम-काव्यकारों की नारी का रूप शृंगार की छाया से मलिन है। नारी-भेद कथन तथा उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नख-शिख वर्णन की प्रणाली ग्रहण में इनका शृंगारी दृष्टिकोण स्पष्ट है। पद्मावत और चित्रावली में नायिकाओं के जातिगत भेदों का उल्लेख तथा उनके लक्षणों का चित्रण हुआ है[1]। विविध जाति की स्त्रियों के वर्णन में नायिका-भेद की परम्परा का आभास मिलता है[2]।

कवियों की नारी-विषयक उक्तियाँ

इन सूफी कवियों ने नारी के स्वभाव, उसके मूल्य सम्बन्धी कुछ सामान्य उक्तियाँ की हैं, इनका कारण चाहे परम्परा रही हो अथवा युग की व्यापक विलासी प्रवृत्ति के कारण नारी को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति। यह उक्तियाँ तत्कालीन नारी की स्थिति तथा कवियों की नारी-भावना पर प्रकाश डालती हैं। पद्मावत में पद्मावती के रूप सौरभ से मतवाला होकर रत्नसेन सिंहल को प्रस्थान करता है। उसकी विवाहिता पत्नी राम और सीता का उदाहरण देकर साथ ले चलने का अनुरोध करती है। रत्नसेन उसके स्नेहसिक्त अनुरोध को ठुकरा कर सम्पूर्ण नारी जाति पर मतिहीनता का आरोप करता है[3]। वह नारी को भोग की

---

१. नारी-भेद वर्णन, राघवचेतन द्वारा तथा नखशिख वर्णन—
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० ४२९, ४३४ से ४४४ तक
उस्मान चित्रावली—पृ० २१०, २१७

२. "चली भान सो ब्राह्मन बारी, बनियाइन नाइन पनिहारी,
चली सोनारिन कंचन बरनी, रजदूती खतरिन मन हरनी।
लोनी धन हलवाइन भली, अधर मिठाई बाँटत चली।"
नूर मुहम्मद—इंद्रावती, पृ० ९५

"भै अहान पद्मावती चली, छत्तीस पुरी मैं मोहते भली।
भै कोरी संग पहिरि पटोरा, बाँभनि ठाउँ सहस अंग मोरा।
अगरवारिनि गज गवन करेई, बैसिनि पाव हंस गति देई।
चंदेलनि ठवँकन्ह पगढ़ारा, चली चौहानी होइ झनकारा।
चली सोनारि सोहाग सोहाती, औ कलवारि प्रेम मधुमाँती॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २४५, २४६

३. "तुम्ह तिरिआ मतिहीन तुम्हारी, मुरुख सो जो मतै घर नारी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २०९

सामग्रियों में सम्मिलित कर योगियों के लिए उसे अनावश्यक बताता है[१]। दूसरे स्थल पर रणोद्यत बादल उसे अबला तथा बुद्धिहीन बताता है। पुनः उसकी अचेतन भूमि से तुलना करके, तिरिया और भूमि दोनों को ही खड्ग की अनुगामिनी बताता है[२]। यह उक्ति उस समय के राजपूतों के प्रताप, नारी और प्रेम को कारण बनाकर युद्ध लड़ने की प्रवृत्ति की ओर इंगित कर रही है। राजपूतों में नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व न था। उनको अपना वर निर्वाचन करने में स्वतन्त्रता न थी। घोर संग्राम और भीषण नर-संहार नारी को लेकर ही होते थे, तथा भूमि के साथ ही नारी भी विजयी की संपत्ति हो जाती थी। नारी वासना का प्रतिरूप मान कर असत् की वाहिका तथा कर्तव्य मार्ग की वाधा मानी जाती थी। इन्द्रावती में राजकुंवर के अपने विवाहिता के प्रति कथन में इसी प्रकार की ध्वनि है[३]। चित्रावली के नायक सुजान का दृष्टिकोण तुच्छता एवम् हीनता का ही है। नारी की सुलभता के कारण उसका कुछ मूल्य नहीं था, वह पैर की जूती अथवा उपानह समझी जाती थी। उससे अन्धानुकरण एवम् अनुकूलता की अपेक्षा की जाती थी[४]। सुजान पुनः नारी को ही सम्बोधित करके उसे विवेकमयी बताता है, और कहता है कि स्त्रियों की स्थिरता के कारण लोग उन्हें देहरी कहते हैं, और वह घर संभालती है, इसलिए घरनी अथवा गृहिणी कहते हैं। अतः उसकी सार्थकता गृहजीवन के कर्तव्यों का सम्पादन करने में ही है[५]। जल में विपत्ति पड़ने पर जब चित्रावली एवम्

---

१. "जोगिन्ह कहा भोग सों काजू चहे न मेहरी चहे न राजू"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली (माताप्रसाद गुप्त) पृ० २०९

२. "तिरिया पुहुमि खरग की चेरी। जीतै खरग होइ तेहि केरी।"
× × ×
"तुम्ह अबला मुग्धबुधि जानै जाननिहार
जहँ पुरुषन्ह कह वीर-रस भाव न तहां सिगांर।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५३२

३. "तुम कामिनी मत हीनी भोग सुपावहु मोंहि।
प्रेम खींच है मो कहँ सूझ बूझ नहि तोहि।।"
नूरमुहम्मद—इन्द्रावत, हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३ में से,
पृ० ८७

४. "जैसे पनही पांव की वैसे तिया सुभाउ।
पुरुष पन्थ चलि आपनै, पनही तजै न पाउ।।"
उस्मान—चित्रावली (जगमोहन सम्पादित) पृ० १७९

५. "कहै सुजान सुनहु वर नारी। तुम सयानि औ बूझनहारी।
मेहरिन्ह कहैं लोग सब देहरी। धरै असन स्थिर सोई मेहरी।।
औ पुनि घरनि कहै सब कोई। घरहिं संभारै घरनी सोई।।"
उस्मान—चित्रावली (जगमोहन सम्पादित) पृ० १७९

कौलावती में बलिदान होने के लिए विवाद होता है, तब भी सुजान उनके प्रति ही नहीं सम्पूर्ण नारी जाति के प्रति अवज्ञा दिखलाता हुआ उन्हें बुद्धिहीन का विशेषण देता है[१]। नारी स्वभाव से ही दुर्बल आघात सहने में असमर्थ समझी जाती रही है। सुजान के न मिलने पर जब राजा दुखावेग में रुदन करने लगता है तब उससे प्रकारान्तर से यही कहा जाता है कि वह पुरुष है उसे साहस रखना चाहिए, रुदन और करुणा स्त्रियों का शस्त्र है[२]।

युग की भावनाओं के प्रभाव से नारी भोग का उपकरण तथा विलास का साधन थी किन्तु साथ ही वह पुरुष के पुरुषत्व की कसौटी थी। जब अलाउद्दीन राजा से पद्मिनी को माँगता है, तब नारीत्व की मर्यादा की रक्षा में सन्नद्ध क्षत्रिय वीर का स्वाभिमान चीत्कार कर उठता है। चाहे जितना बड़ा वैभवशाली राजा हो, किन्तु किसी की ब्याहता स्त्री को मांगना अनुचित है[३]। नारी की मर्यादा उसके गौरव की रक्षा के समक्ष बड़े-बड़े राज्य भी उत्सर्ग किए जा सकते हैं[४]। किन्तु सर्वत्र नारी की मर्यादा को यह गौरव नहीं प्राप्त था। विलास की प्रवृत्ति तथा सामन्तवादी परम्परा में नारी उपहार की वस्तु, राजनीति के दांव-पेंचों का अस्त्र, सामग्री समझी जाती थी। सोहिल राजा सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर कौलावती को मांगता है, और बलप्रयोग का भय दिखलाता है[५]। किन्तु क्षत्रिय जाति का आदर्श यही माना जाता था कि यदि कहीं स्त्री अथवा गाय की करुण पुकार सुनें तो सब प्रकार की कठिनाइयों एवम् बाधाओं को सहन कर उनकी रक्षा करना उचित है। इसके प्रतिकूल चलने से अपयश एवम् पाप का भागी होना पड़ता था[६]। नारी अवध्य थी, नारी वध महान पातक समझा जाता था। तभी माधवा-

---

१. "कहिसि मेहरिन्ह बुद्धि नहिं रति, हौं अब मरहुँ होहि सती।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० २३२

२. "जो तुम पुरुष भरो अस रोई, मेहरिन्ह का समुझावै कोई।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० ८७

३. "का मोहि सिंघ देखावसि आई, कहौ तो सारदूल लै खाई।
भलेहि साह पुहुमिपति भारी, माँग न कोई पुरुख कै नारी॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली : माताप्रसाद गुप्त : पृ० ४४७

४. "जो पै गृहनि जाइ घर केरी, का चितउर केहि काज चँदेरी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४४८

५. "जौ हित देउ तो मया करेऊ, नाहिं तो कठि करि आई लेऊँ।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १८८

६. "क्षत्री सुनि जो ना करै, तिय अरु गाय गुहारि।
पुहुमी कुल गारी परै, सरग होइ मुख छारि॥"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १४६

नल कामकन्दला में कामकन्दला की मृत्यु-हेतु अपने को समझ कर विक्रम को परिताप होता है[1]।

युग की विचारधारा के अनुसार नारी पत्नी, सहधर्मिणी न होकर दासी थी। कुश और जल लेकर कन्या का पिता उसे समर्पित करते हुए विनय करता था, कि पति उसे दासी समझ कर ग्रहण करे[2]। नारी को अपनी कुलमर्यादा तथा सामाजिक मान्यताओं में सीमित होकर चलना पड़ता था। चरित्र की पवित्रता पर अधिक बल दिया जाता था[3]। कन्या-जन्म विवाह की कठिनाइयों, परिस्थितियों की अनिश्चितता में दुख और चिन्ता का कारण था। जब तक कन्या का विवाह नहीं हो जाता था माता-पिता के ऊपर उत्तरदायित्व का भार रहता था। किन्तु वह केवल दुख का कारण न थी, प्रत्युत कभी-कभी गृह को आलोकित करने वाली होकर कन्यादान के पवित्र पुण्य द्वारा माता पिता का उद्धार करती थी[4]। नारी शरीर-विक्रय की प्रथा प्रचलित थी। इन सूफी-काव्यों में वेश्या का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। सिंघल के हाट का वर्णन करते हुए जायसी ने शृंगार हाट में रूप और यौवन का लेन-देन करती हुई, नव प्रसाधन से सुसज्जित भौंह-धनुष के कटाक्ष बाण से पुरुषों का अहेर कर रही वेश्याओं का उल्लेख किया है[5]। माधवानल की कामकन्दला स्वयं राजदरबार में नृत्य करनेवाली पातुर थी[6]। बहु-विवाह प्रचलित था। रत्नसेन के नौ लाख तथा गंधर्वसेन के सोलह सहस्र रानी थीं[7]।

---

१. "प्रथमहि तिरिया वध मै कीन्हां।"
आलम—माधवानल कामकन्दला, पृ० २१६ : हिन्दी कवि और काव्य :

२. "कहिसि लेहु यह चेरी जानी मैं संकलौ दै कुश पानी।
बोलसु जैस जग रीती, तै अपने भुजबल यह जीती।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १५४

३. "कहिसि न मुई ऐसन बारी, जे अपने कुल लाइसि गारी।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १८८

४. "आतमजा जो होत एक होत सदन उँजियार
कन्यादान दिहें ते होतै मुकुत हमार।"
नूरमुहम्मद—इन्द्रावती : हिन्दी के कवि और काव्य : पृ० ८३

५. "पुनि सिंगारहाट धनि देसा, कइ सिंगार तहं बैठी बेसा।
हाथ बीन सुनि मिरग भुलाही, नर मोहहि सुनि पैग न जाहीं।
भौंह धनुक तह नैन अहेरी, मारहिं बान सान सौं फेरी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १४५, १९५२, इलाहाबाद

६. "तिहिपुर बसै चन्द्र की कला पातुर सुनी कामकन्दला
ताको रूप बरनि को पारा, बरनत सहस्र जीभ पुनि हारा।"
आलम—माधवानल कामकन्दला, पृ० १९० (हिन्दी के कवि और काव्य)

७. जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २०७ और १५२, माताप्रसाद गुप्त

नारी का सत् एवम् आदर्श रूप

इन प्रेमाख्यानक काव्यों की नारी-भावना में आदर्श और कर्तव्य पर स्थित उत्सर्गमयी नारी के चित्रण भी मिलते हैं। स्वार्थहीन अविचल प्रेम, पत्नी की दृढ़ अनुरक्ति, तथा सपत्नी के प्रति भी स्नेह और शुभेच्छा की भावना मिलती है। पतिव्रता नारी जीवन-पर्यन्त अपने धर्म पतिभक्ति, पर अटल रहती है और पति की मृत्यु के उपरान्त उसी शैया पर चिर-निद्रा एवम् महामिलन में लीन हो जाती है। सूफी कवियों ने नारी की उदात्तभावनाओं का चित्रण भी किया है। प्रेम और स्नेह की दोला पर आदर के झूँक झूलने वाली मानिनी, रूपगर्विता नागमती पति-वियोग में अत्यन्त दीन एवम् वेदनाव्यथित हो जाती हैं। वह विरह में अपने अस्तित्व को भूल पक्षियों से अपनी विरह-वेदना कहती है। प्रियतम के वियोग में समस्त सुखद वस्तुएँ उसे दुख और वेदना से पूर्ण प्रतीत होती है। उसके विरह में हिन्दू गृहिणी के सात्विक मर्यादापूर्ण जीवन का आभास मिलता है। पति के सान्निध्य के लिए व्याकुल वह अपने अतितत्व को मिटाकर, निजत्व को विसरा कर पति के मार्ग में उड़ने वाली रज होने को भी प्रस्तुत है[1]। नागमती भौंरा तथा काग से प्रिय को संदेश कहलाती है उसकी विरह-वेदना-क्लान्त दृष्टि को यही प्रतीत होता है कि उसकी विरहाग्नि के धुँए से ही यह सब काले हैं[2]। यद्यपि उसमें मानव सुलभ ईर्ष्या, द्वेष, राग की भावनाएँ हैं पर कवि उसकी दुर्बलताओं को शीघ्र ही दूर कर देता है। अन्त में, पति की मृत्यु के पश्चात् आदर्श राजपूत ललना के रूप में वह पति के साथ अग्नि मालाओं में चिरविश्राम करती है। पद्मावती के चरित्र का विकास पहले प्रेम के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाली प्रेमिका के रूप में होता है[3]। चित्तौड़ में वह एक कुशल और दूरदर्शी गृहिणी के रूप में दृष्टिगत होती है। राजा के द्वारा अपमानित कर निकाले हुए राघव चेतन को वह कंगन देकर संतुष्ट करना चाहती है। राजा रत्नसेन के अलाउद्दीन द्वारा बन्दी बना लिए जाने पर अपनी सूक्ष्मदर्शिता से वह उसको मुक्त करा देती है। कुमुदिनी के प्रलोभन के उत्तर में दिए कथन में उसके सतीत्व एवम् दृढ़ पतिभक्ति, एकनिष्ठा का मनोहर रूप व्यंजित होता है। उसके शब्दों में विलासिनी की लिप्सा नहीं है,

---

१. "यह तन जारों छार कै कहौ कि पवन उड़ाउ
मकु तेहि मारग होइ परौ कंत धरैं जहँ पाउ।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, : माताप्रसाद गुप्त : पृ० ३६०

२. "पिय सौं कहेहु संदेसरा ऐ भँवरा ऐं काग
सो धनि बिरहें जरि गई, तेहिके धुंवा हम लाग।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३५८

३. "जौ रे जिअहिं मिलि केलि करहिं मरहिं तौ एकहि दोउ
तुम्ह पै जियँ जिनि होऊँ कछू, मोहिं जियँ होउ सो होउ॥
जायसी—जायसी ग्रन्थावली पृ० २६४

प्रत्युत पतिव्रता का आत्मविश्वास, निस्पृह प्रेम ध्वनित होता है[1]। विजयी बादल के साथ अलाउद्दीन के बन्दीगृह से मुक्त होते हुए राजा की आरती करते समय समर्पण की भावना साकार हो उठती है। वह तो अपने हृदय की कोमल भावनाओं, अपने शरीर की भेंट पहले ही दे चुकी, अब वह अपने उसी आराध्य की पूजा पूर्व-समर्पित की हुई सामग्री से कैसे करे[2]।

शत्रु के साथ युद्ध करता हुआ रत्नसिंह परमगति को प्राप्त होता है और पद्मावती नव वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर प्रिय-सहगमन को प्रस्तुत होती है। यह सहगमन, अथवा सहमरण क्षत्रिय नारी के जीवन का उज्जवलतम्, भव्य-तम् आदर्श है। यह वेदना एवम् दुख का अवसर न होकर सुख और उल्लास का समय है। जब दोनों प्रेममयी आत्माएँ अनल के क्रोड़ में वैवाहिक सम्बन्ध की अविच्छिन्नता को सिद्ध करती हुई अक्षय शृंगार एवम् विलास में लीन हो जाती हैं। नागमती और पद्मावती दोनों सती हो जाती है[3]। इन प्रियानुरागिनी सती स्त्रियों के अनुराग से स्वर्ग भी रतनार हो जाता है। उस्मान की चित्रावली में कौंलावती में आत्मोत्सर्ग की भावना का चरमोत्कर्ष दृष्टिगत होता है। वह सपत्नी तथा पति के कल्याण के लिए प्राणार्पण को प्रस्तुत है[4]। माधवानल कामकंदला

---

१. "कुमुदिनि बैन सुनाए जरे, पदुमिनि हिय अँगार जस परे
रंग ताकर हौं जारौं रचा, आपन तजि जो पराएं लचा।
एहि जग जौ पिय करिहि न फेरा, ओहि जग मिलिहि सो दिन दिन मेरा।
जोबन मोर रतन जह पीऊ, बलि सौंपौं यह जोबन जीऊ।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५१७

२. "पूजा कवनि देउँ तुम्ह राजा, सबै तुम्हार आव मोहि लाजा
तन-मन जोबन आरति करेऊँ, जीउ काढ़ि नेवछावरि देऊँ।
पथ दूरि के दिष्टि बिछावौं तुम्ह पग धरहु नैन हौं लावौं
पायह बुहारत पलक न मारौं, बरुनिन्ह सेति चरम रज झारो।
हिया सो मंदिल तुम्हारे नाहाँ, नैनन्हि पंथ आवहु तेहि माँहा।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५४७

३. "नागमती पदुमावति रानी, दुवौ महासत सती वखानी
बाजनि बाजहिं होइ अकूता, दुओ कंत लै चाहहि सूता।
एक जो बाजा भएहु विवाहू, अब दोसरे ओर होय निबाहू।
जियति जो जरिहि कंत की आसा, मुएं रहसि बैठेहि एकपासा।
जियत कंत तुम्ह हम कंठलाई, मुए कंठ नहि छाड़ति साँई
औ जो गांठ कन्त तुम जोरी, आदि अन्त दिन्हि जाइ न छोरी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५५३

४. "कहिसि कि हौ बलि देऊं, सरीरा। मकु यें दोउ लगि लागै तीरा।"
सौत के प्रति बचन—
"कहिसि कि हौं अपराधिनि तोरी करह छोह सुन बिनती मोरी"

की नायिका में नर्तकी होते हुए भी एकनिष्ठ प्रेम का चरम विकास है[१]।

नारीगत् आदर्श

इन सूफी कवियों का नारी-आदर्श भी पातिव्रत का ही है वह भी नारी की चरम गति पति सेवा ही मानते हैं[२]। सेवा ही पति को वश करने का साधन है[३]। सूफी कवियों को भारतीय नारी का त्याग, सहिष्णुता एवम् आज्ञापालन का आदर्श मान्य है। चित्रावली में सखियों द्वारा प्रदत्त शिक्षा, सुजान के इस कथन, जो घर संभाले वही गृहिणी हैं, में नारी गत आदर्श स्पष्ट हो जाता है।

असत् रूप

इन सूफी काव्यों में नारी के असत् कर्तव्यच्युत रूप भी मिलते हैं। बादल की माता, और बादल की स्त्री भी क्षणिक दुर्बलता के कारण क्षात्र-धर्म के उदात्त आदर्शों से विमुख हो जाती हैं। बादल की पत्नी नव परिणीता षोड़शी है अतः हृदय की मधुर भावनाओं एवम् श्रृंगार-लालसा में बाधा पड़ने से उसे क्षोभ होना स्वाभाविक है। वह नव-श्रृंगार सज्जा से पति को विलास सुख का प्रलोभन देकर रोकना चाहती है। पुनः यह सोच कर कि प्रिय रण-विमुख हो नहीं सकता वह उसे रण-सज्जा से प्रस्तुत करती है[५]। कुमुदिनी तथा देवपाल की दूती असत् नारी है। वह कपट पाखण्ड की प्रतीक-सी है। वह अपने टोने से असम्भव को भी संभव

रहे सदा तुम सीस पर सेंदुर भाग सोहाग।
हौ समदति हौ चरन गहि इहै मोर अनुराग।
उस्मान—चित्रावली : जगमोहन सम्पादित : पृ० २३१

१. यह हिय बज्र बज्र से, गाढ़ा, पाल्यौ बज्र बज्र मैं बाढ़ा।
जा दिन मीत विछोहा भयऊ, तवकि निखंड खंड ह्वै गयऊ।
आलम—माधवानल कामकंदला, पृ० २२०, हिन्दी के कवि और काव्य

२. सोई पियारी पियहि पिरीती, रहे जो सेवा आयसु जीती।
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३७७

३. इन्द्रावति प्यारी कहेउ, ताकहँ चाहे पीउ। जो पिय की सेवा किहे, गरब राखै जीउ।
नूरमुहम्मद—इन्द्रावत, हिन्दी के कवि और काव्य, पृ० १०५

४. पायन्ह परै लिलाट धनि विनति सुनहु हो राय।
अलक परी फंदवारि होइ कैसेहुँ तजै न पाय ॥
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५३२

५. रोएँ कंत न बहुरै तेहि रोएँ का काज।
कंत धरा मन जूझरन धनि साजे सब साज ॥
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५३४

करने की क्षमता दिखलाती है[1]। अन्य सूफी काव्यों में नारी दिव्यशक्ति के प्रतीक के सहायक, सत् रूप में ही आती है।

सूफी काव्यों की नारी भावना में मिश्रित दृष्टिविन्दु मिलते हैं। अपनी प्रगाढ़ रति की भावना की अभिव्यंजना के लिए उन्होंने नारी को परमात्मा का प्रतीक अवश्य माना और उसके विरह में साधक की विकल विरह-वेदना का चित्रण किया है। उन्होंने नारी के सत् रूपों का सुन्दरतम् विकास दिखलाया है। किन्तु कथा में किए हुए सामान्य कथनों से उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। नारी मर्यादा तथा उसका गौरव मान्य होते हुए भी सूफी कवियों के अचेतन मन में —स्वर्ग से आदम के निष्कासन का कारण हौवा की मूर्खता थी—यह धारणा छिपी हुई थी। समकालीन परिस्थितियों में अज्ञान एवम् अशिक्षा के कारण, नारी-जाति में बौद्धिक विकास की न्यूनता ने उनकी धारणा को पुष्टि दी और उन्होंने निश्चयात्मक स्वर में घोषित कर दिया कि तिरिया बुद्धिहीन होती है। मेहरी अबोध मूर्ख, विवेकरहित है, उसकी परामर्श से कार्य करने में पतन अवश्यम्भावी है। हठयोग के साथ, ब्रह्मचर्य एवम् कामिनी त्याग की भावना का भी प्रभाव उन पर पड़ा। उन्होंने भी नारी को भोग का कारण तथा माया का मूल माना। परन्तु उनके स्वर में सन्तों के समान तीव्र भर्त्सना और ताड़ना नहीं है। तत्कालीन युग में केवल भारत में ही नहीं, प्रत्युत संसार के सभी देशों में पातिव्रत धर्म में ही नारी की एकमात्र गति मानी जाती थी, इन प्रेमगाथाकारों ने भी पति-भक्ति, दृढ़निष्ठा आदि पर अधिक बल दिया है।

---

१. कुमुदनि कहा देखु, मै सोहौं, मानुस काह देवता मोह।
जस कांवरु चमारी लोना, को न छरा पाढ़ित औ टोना।।

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५१०

: ५ :

सगुण भक्ति

प्रकरण १

रामकाव्य में नारी-भावना

मध्ययुगीन जीवन की अलस, आदर्शहीन तन्द्रा में लीन हिन्दू जाति सन्तों की बानी तथा सूफी कवियों की हृदयस्पर्शी प्रेम-कथाएँ सुन चुकी थी। सन्तों का निराकार और निर्गुण ब्रह्म उनके लिए केवल कौतूहल का विषय था। सूफी सन्तों ने लौकिक प्रेमगाथा द्वारा अलौकिक प्रेम-आत्मा और परमात्मा के एकीकरण-का जो परिचय दिया, उसने अपनी मार्मिकता से उनके हृदय को स्पर्श तो किया, किन्तु मानस की मृदु भावनाएँ सामान्य एवम् व्यावहारिक जीवन के मध्य निर्गुण ब्रह्म के रहस्य के अभेद्य पट से टकरा कर बिखर गई। सामाजिक विषमता, धार्मिक विश्रृंखलता एवम् नैतिक अधःपतन के मध्य रामानन्द की शिष्य परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास आदि रामकाव्यकारों ने सगुण ब्रह्म के लोकरक्षक के रूप को जगत के कर्मक्षेत्र में अवतरित किया[1]। रामकाव्य में जीवन के समस्त क्षेत्रों में कर्मण्यता एवम् आदर्श का परिपाक हुआ है। तत्कालीन दुर्बल जीवन-दर्शन, डगमगाती हुई नैतिकता और कम्पित होती हुई कर्तव्यभूमि में इस सर्वांगीण उदात्त आदर्श ने जीवनोन्मेष किया। रामकाव्य के कवियों ने राम के लोक संग्रहकारी रूप के आलोक में श्रुति-सम्मत मार्ग का निर्देश किया। कृष्ण-काव्य की रागानुगा भक्ति के समान राम का प्रतीक भी सामान्य जनता के लिए ग्राह्य और सुलभ था[2]।

---

१. "उसी आदर्श चरित्र के भीतर अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल से उन्होंने धर्म के सब रूपों को दिखाकर भक्ति का प्रकृत आधार खड़ा किया। जनता ने लोक की रक्षा करने वाले प्राकृतिक धर्म का मनोहर रूप देखा।"

रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड (प्रस्तावना) पृ० १०१
सं० १९८०, काशी

२. "भगवान का जो प्रतीक तुलसीदास ने लोक के सम्मुख रखा है, भक्ति का जो प्रकृत आलंबन उन्होंने खड़ा किया है, उसमें सौन्दर्य शक्ति और शील तीनों विभूतियों की पराकाष्ठा है। सगुणोपासना के ये तीन सोपान हैं जिन पर हृदय क्रमशः टिकता हुआ उच्चता की ओर बढ़ता है। इनमें

तुलसी राम भक्ति को वैयक्तिक रूप न देकर मानव को पूर्ण बनाने वाली साधना मानते हैं, अतः उनका काव्य सामाजिक, पारिवारिक और आध्यात्मिक जीवन के उच्चादर्शों से अनुप्राणित है।

रामकाव्य की पृष्ठभूमि

आलोच्य रामकाव्य के कवियों के समक्ष कोई स्पष्ट आधार न था। सर्वप्रथम वैदिक रामायण में राम का उल्लेख मिलता है, परन्तु उसका काल संदिग्ध है। वाल्मीकि ने ही रामाख्यान के बिखरे कथा सूत्रों को संगठित किया। महाभारत एवम् जातकों में भी रामकथा का उल्लेख मिलता है, जैन राम कथा का अपना पृथक स्वरूप है। पुराणों में राम से सम्बन्धित प्रसंगों का आधार वाल्मीकि रामायण है। भागवत पुराण, योग वासिष्ट, अध्यात्म रामायण आदि धर्मग्रन्थों में राम ब्रह्म के गौरवमय रूप में अवतरित हुए हैं। कालिदास के 'रघुवंश', प्रवरसेन कृत 'रावण-वध' आदि संस्कृत ग्रन्थों से भी हिन्दी रामकाव्य को प्रेरणा मिली। हिन्दी भाषा में रामकाव्य की परम्परा संक्षिप्त ही है। भूपति ने १३४२ संवत् (१२८५ ई०) में रामायण लिखी, अन्य मुख्य कवि तुलसीदास १५९८ सं० (१५४१ ई०) नाभादास १६५७ सं० (१६०० ई०) केशवदास १६१२–७४ (१५५५–१६७३) और सेनापति हैं। उस युग की उच्छृङ्खल लोक-रुचि के अनुकूल न होने के कारण राम-काव्य का प्रचार अधिक न हो सका।

रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तों के विश्लेषण से रामकाव्य का दर्शन स्पष्ट हो सकेगा। हिन्दू जीवन की संचालिका शक्ति धर्म है, और धर्म एवम् दर्शन का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। अत. रामचरितमानस दर्शन के मूल तत्वों को प्रस्तुत करता है। तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तों के विषय में मतभेद है, कोई उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी और कोई अद्वैतवादी बताता है। तुलसी के राम समस्त कारणों से परे ईश है, वह अनीह, अनाम, अज सच्चिदानन्द विश्वरूप भगवान है। वेद उसे आदि अन्त हीन बताते हैं। रघुकुल अवतंश राम ही सच्चिदानन्द और व्यापक ब्रह्म हैं[1]। गोस्वामी तुलसीदास सगुण और निर्गुण

से प्रथम सोपान इतना सरल है कि स्त्री-पुरुष, मूर्ख पण्डित, राजा-रंक सब उसपर अपने हृदय को बिना प्रयास अड़ा देते हैं।"

रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड (प्रस्तावना) पृ० १३३

१. "सोई सच्चिदानन्द रामा, अज विज्ञान रूप बल धामा।
व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता, अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४७१, सं० १९८०, काशी
"तुम्ह सम रूप ब्रह्म अविनाशी, सदा एकरस सहज उदासी।
अकल अगुन अनघ अनामय, अजित अमोघ शक्ति करुनामय॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४२७, सं० १९८०, काशी
सं० रामचन्द्र शुक्ल

ब्रह्म दोनों को ही अभेद मानते हैं। परमब्रह्म ही भक्तों के प्रसादन हेतु नर रूप में अवतरित होकर मनुज सदृश लीला विस्तार करता है[१]। केशव के मतानुसार पुराण एवम् विद्वान जिसकी पूर्णता की घोषणा करते हैं, शास्त्रविद् भी जिनके मर्म को समझने में असमर्थ हैं, वही ब्रह्म भक्तों को सगुण रूप से दर्शन देता है[२]। पंचभूतों से निर्मित होने के कारण जीव ब्रह्म से भिन्न है। जीव स्वतन्त्र नहीं है, माया में वह बन्धनबद्ध हो जाता है[3]। रघुकुल गौरव राम ही ब्रह्म के रूप में माया, गुण, काल, कर्म, आदि के अधिष्ठाता हैं। समस्त जड़-चेतन को इंगित पर नृत्य कराने वाली माया राम की आज्ञाकारिणी है[४]। गोस्वामी जी को माया के दो रूप मान्य हैं—विद्या और अविद्या। विद्या अथवा माया के सद्रूप का तादात्म्य विश्व की स्थिति, एवम् संहार-कारिणी आदि-शक्ति सीता के साथ हो गया है[५]। माया का यह सद्रूप भगवत इच्छा एवम् प्रेरणा से भक्त को अपनी शरण में ले लेती है और उसमें भगवान के प्रति दृढ़ अनुरक्ति का उद्रेक करती है। राम के वाम भाग में सुशोभित आदि-शक्ति के अंश से अनेक त्रिदेवियों की उत्पत्ति होती है[६]। केशव भी जीवात्मा को सच्चिदानन्द ब्रह्म का रूप तथा माया के दो रूपों का अस्तित्व

---

१. "भगति हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तन भूप।
किए चरित्र पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४७३, सं० १९८०, काशी
"नेति नेति जेहि वेद निरूपा, चिदानन्द निरुपाधि अनूपा।
संभु विरंचि विष्णु भगवाना, उपजहिं जास अंस ते नाना।।
ऐसेहु प्रभु सेवक बस अहई, भगति हेतु लीला तनु गहई।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ६५

२. केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध (दीन सम्पादित) पृ० ३,
पं० सं० २००१, इलाबाद

३. "ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया बस भयेउ गोंसाई, बंधेउ कीर मरकट की नाईं।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४९५

४. "सो माया सब जगहि नचावा, जासि चरित्र लखि काहु न पावा।
सोई प्रभु भ्रूविलास खगराजा, नाच नटी इव सहित समाजा।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४७१

५. "श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजनि जगपालति, हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० २०६

६. "जासु अंस उपजहि गुनखानी, अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु लय होई, राम बाम दिसि सीता सोई।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ६६

मानत हैं। वह भी समस्त प्राणियों के कर्मों के मूल में माया की प्रेरणा देखते हैं[1]। माया का दूसरा रूप अविद्या अत्यन्त भयंकर है। काम, दम्भ और पाखण्ड, कपट उसके शूर हैं[2]।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-दर्शन स्वस्थ और सन्तुलित है। आदर्श और मर्यादा ही उसकी आधारस्थली है। मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में आदर्श एवम् कर्तव्य का उत्कर्ष दिखाना ही उन्हें अपेक्षित रहा। भगवान राम के लोकरक्षक स्वरूप को वर्णनीय बताकर, उस दिव्य शक्ति की कल्याण-विधायिनी शक्तियों के साक्षात्कार द्वारा उन्होंने जन-हृदय को आश्वस्त कर, उसे कर्तव्य मार्ग प्रदर्शित किया है। इनके मतानुसार कविता, यश और प्राणी वही सद और प्रशंसनीय है जो सबके लिए सुखकारक हो[3]। राम के नाम में राम से भी अधिक शक्ति है। इसी शक्ति-सम्पन्न पावन राम-नाम के मणि-दीप को जिह्वा के द्वार पर रखने से, वाह्य एवम् अभ्यन्तर दोनों में ही भक्ति एवम् विवेक का पावन आलोक व्याप्त हो जावेगा[4]। उनको समाज में वर्णाश्रम धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा अभीप्सित रही। अपने वर्ण-प्रतिपादित वेद-विहित कार्यों के सम्पादन से ही व्यक्ति सौख्य उपलब्धि कर सकता है[5]। समाज एवम् परिवार के सुसंचालन के लिए प्रत्येक व्यक्ति के

---

१. "उठो हठी होहु न काज कीजै, कहूँ कछू राम सो मान लीजै।
अदोष तेरो सुत मात सोहै, सो कौन माया इनकी न मोहै॥"
केशव—रामचन्द्रिका पर्वार्द्ध, सं० २००१ काशी

"किधौं जीव की जोति, माया न लीनी, अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी
मानौं संवर स्त्रीन से काम बामा, हनुमान ऐसी लखी रामरामा॥"
केशव—रामचन्द्रिका पर्वार्द्ध, सं० २००१ काशी, पृ० २२१

२. "व्यापि रहेउ संसार में, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखंड॥"
केवव—रामचन्द्रिका पर्वार्द्ध, सं० २००१ काशी, पृ० ४७१

३. "कीरति भनिति भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कर हित होई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १० : रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य द्वारा सम्पादित

४. "राम नाम मनि दीप धरि जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उजियार॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १४

५. 'बरनास्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय शोक न रोग॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४४६

लिए अपने लिए निर्दिष्ट धर्म एवम् कर्तव्य का पालन अभीष्ट है[१]। स्वप्न-दृष्टा तुलसीदास ने आदर्श, कल्पना और कथा का आधार लेकर जिस रामराज्य को मूर्त किया, वहाँ सर्वत्र सुख और साम्य है। उस रामराज्य की व्यावहारिक समानता में सब पुरुष एकपत्नीव्रत का पालन करते हैं, और नारी पातिव्रत को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानती है[२]। इनके अनुसार जीवन के विभिन्न सम्बन्ध त्याग और उत्सर्ग के प्रतीक है[3]। राम परिवार के सदस्यों के कर्तव्य-संलग्न रूप उनकी आदर्श भावना के ही मूर्तरूप हैं। मानव जीवन के समुचित विकास के लिए स्थापित चार आश्रमों में गृहस्थाश्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गृहस्थ जीवन के पारस्परिक व्यवहार में स्नेह, संवेदना, त्याग और ममता अपेक्षित है। गृह-जीवन की विधात्री नारी में पातिव्रत होना आवश्यक है। सभी रामकाव्यकारों ने पातिव्रत को स्पृहणीय एवम् पावन माना है[४]।

गोस्वामी जी के अनुसार धर्म दिव्य और अलौकिक वस्तु है। सत्य, शील, कर्तव्यपरायणता, अहिंसा आदि इसके विविध रूप हैं। घोर यातनाओं, कठिन कष्टों को झेल कर भी धर्म-पथ से विचलित नहीं होना चाहिए। आगम-निगम पुराण के अनुसार सत्य अद्वितीय धर्म है। संसार की समस्त सम्पदा धर्मशील के पीछे दौड़ती है। अशुचि एवम् चंचल चित्त ही अनाचार में प्रवृत्त होता है। गोस्वामी जी के अनुसार विनय ज्ञान-सम्पन्न, अहम् अभिमान विहीन, परहित-रत, हरिभजन के श्रोता और वक्ता ही सच्चे भक्त अथवा सन्त हैं। वे विषयों से निर्लिप्त रहते है तथा हर्ष, लोभ आदि भावनाओं से रहित है[५]। मानव तन को पाकर उसका सदुपयोग करना वांछित है। यौवन के ज्वर में, कुपथ्य युवती के सेवन से मानव

---

१. "सब नर करहिं परसपर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४४६

२. "एक नारिव्रत रत सब झारी, ते मन बच क्रम पति हितकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४५०

३. "राजा-प्रजा, उच्च-नीच, धनी-दरिद्र, सबल-निर्बल, शास्य-शासक, मूर्ख-पंडित, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र आदि भेदों के कारण जो अनेक रूपात्मक सम्बन्ध प्रतिष्ठित हैं, उनके निर्वाह के अनुकूल मन (भाव) वचन और कर्म की व्यवस्था ही उनका लक्ष्य है, क्योंकि इन सम्बन्धों के सम्यक निर्वाह में ही वे सबका कल्याण मानते हैं।"
रामचंद्र शुक्ल—तुलसी ग्रंथावली, तीसरा खण्ड, (प्रस्तावना) पृ० १२७

४. "धन्य सुदेश जहाँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ॥"
रामचंद्र शुक्ल—तुलसी ग्रंथावली, तीसरा खण्ड, पृ० ५०२

५. "विरति विवेक विनय विग्याना, बोध जथारथ वेद पुरानां।
दंभ, मान मद करहिं न काऊ, भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।

मदन सन्निपात से ग्रस्त हो जाता है[1]। अतः इन भोगैषणाओं से दूर रह कर राम चरणों की भक्ति ही में सुख मानना श्रेयस्कर है। काम आदि दुर्वासनाएँ तप में बाधक है, अतः इनका परित्याग अपेक्षित है। इसके साथ ही काम का ब्रह्मास्त्र नारी[2] भी साधना-पथ की बाधक है, अतः भक्तों का उससे पृथक रहना व्यक्तिगत साधना मात्र नहीं है, प्रत्युत उसमें व्यक्तिगत और लोकगत दोनों साधनाओं का समन्वय है। अतिशय भोग और मोह एवम् अतिशय वैराग्य का सन्तुलन ही उनका इच्छित मार्ग है[3]। मानव को समस्त विकारों का परित्याग कर सत्कर्मों द्वारा पुण्य का संचय करना चाहिए, क्योंकि कर्म-भोग के अनुसार ही वह दुख, सुख भोगता है[4]। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरणानुरागी हृदय को वही वस्तु और व्यक्ति प्रिय है, जिससे उनके इष्टदेव का सम्बन्ध हो[5]। वही व्यक्ति कर्तव्यपरायण,

---

गावहिं सुनहिं सदा ममलीला, हेतु रहित परहित रत सीला।
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते, कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।"

तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३२१

"विषय अलंपट सील गुनागर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।
सम अभूतरिपु विमद विरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।
कोमल चित्त दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया।
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रानसम मम तें प्राणी।"

तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४५७

१. "जोबन जर जुवती कुपथ्य करि क्यों त्रिदोष भरि मदन बाय।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, खण्ड २, विनयपत्रिका पृ० ५०७, पद १७५

२. "लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका।
एहि के एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोई भारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, खण्ड १, पृ० ३१७

३. "घर कीन्हें घर जात है, घर छांड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही, राम प्रेम पुर छाइ।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खण्ड दोहावली, पृ० १२६, दो० २५६

४. "काहु न कोऊ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० १९३

५. "जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, विनयपत्रिका पृ० ५५१, पद १७४

सुशील और साधु है, जो रामभक्त हो। रामचरणानुराग ही जीवन का सारा तत्व है। उससे विहीन व्यक्ति सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी इन्द्रायण के फल के समान अवगुणपूर्ण एवम् कटु है। उच्च-वंशोत्पन्न व्यक्ति भी यशवान, लोकोपकारी, शीलवान, रूपवान होने पर भी भगवद्-भक्ति के बिना पूर्ण नहीं है[1]।

केशव ने अपनी रामचन्द्रिका में मानव के चार साध्यों की व्याख्या कुम्भकरण द्वारा कराई है[2]। परन्तु उनके जीवन-दर्शन में युग की विलासी प्रवृत्ति की छाप स्पष्ट है। उन्होंने भी पातिव्रत पर अधिक बल दिया है तथा स्त्री को ही भोग का कारण बता कर अपनी एवम् पराई नारी के परित्याग का निर्देश किया है[3]। कवि के जीवन-दर्शन में सन्तुलन का अभाव है, आदर्शवादिता उपदेशात्मक प्रवृत्ति का रूप धारण कर लेती है, जब पुत्र माता को नारी धर्म का उददेश देता है।

रामकवि और नारी

रामकवियों में तुलसी की नारी-भावना विवाद एवम् मतभेद का विषय रही है। कतिपय विद्वानों के अनुसार तुलसी ने नारी-जाति को आदर और श्रद्धा की पात्री माना है। उनके काव्य में सत्-चरित्रों का अंकन सुन्दर हुआ है। तुलसीदास ने नारी निन्दा वहीं पर की है जहाँ पर नारी ने धर्म विरोधी आचरण किया है। अथवा उन्होंने नारी-विषयक नीति-वाक्य उद्धृत किये हैं[4]। आचार्य शुक्ल जी ने

---

१. "जो पै रहनि राम पै नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सो जाय जियत जग माहीं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबहूँ के।
मनुज देह सुरसाधु सराहत, सो सनेह सिय-पी के।
कीरति, कुल, करतूति, भूति, भलि, सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु, अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय भाग, पृ० ५५१, पद १७५

२. केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध, प्र० स० २००१, सं०, पृ० ३१०

३. "निज पति पथहि चलिए, सुख दुख का दल दलिए।
तन मन सेवहु पति को, तब लहिए सुभ गति।"
केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध, सं० २००१, पृ० १३४
"जहाँ भामिनी भोग तहं, बिनु भामिनी कहं भोग।
भामिनी छुटै, जग छुटै, जग छुटै सुख भोग॥"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, तृ० सं० १९४५, पृ० ५६

४. "तुलसीदास ने नारी जाति के लिए बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसूया, कौशल्या, सीता, ग्रामवधू आदि की चरित्ररेखा पवित्र और धर्मपूर्ण विचारों से निर्मित हुई हैं। कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निन्दा की और उन्हें ढोल गंवार की कोटि में रक्खा। परन्तु यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो विदित

तुलसी के नारी निन्दा के प्रसंगों को अर्थवाद के अन्तर्गत लाकर उनके ऊपर आरोपित नारी निन्दा के दोष के परिहार करने का प्रयास किया है। शुक्ल जी का मत है युग व्यापक विराग और तप की भावना के कारण तुलसी ने नारी के उस रूप का विरोध किया है जो तप और निवृत्ति में बाधक है[1]। माताप्रसाद गुप्त नारी चित्रण में तुलसी की अनुदारता स्वीकार करते हुए उसके कारण से अनभिज्ञता प्रकट करते हैं[2]। मिश्रबन्धुओं ने तुलसीदास को नारी-निन्दक कहा है। उनके मतानुसार तुलसी ने कौशल्या आदि के चरित्रों को इसीलिए सुन्दर और पवित्र बताया, वि वह राम से संबंधित है। शेष नारियों को सहज, जड़, अपावन तथा स्वतन्त्र होने के अयोग्य माना है[3]। कुछ साहित्यकारों का यह अनुमान है कि गोस्वामी जी की नारी निन्दा का कारण उनका नारी सम्पर्क का अभाव है। ममतामयी जननी का मृदु वात्सल्य उनके लिए एक कल्पना मात्र थी। अपनी स्त्री द्वारा फटकार पाकर वह वैरागी हुए, अतः नारी के प्रति जो विराग-भावना उनके अन्तर में थी, समकालीन नारी की दयनीय दशा एवम् साहित्य की परम्परा से प्रेरणा पाकर पनप उठी। इस कथन में अर्ध सत्य तो है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किए गए जबकि नारी ने धर्म विरोधी आचरण किए।"

रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४६४ १६३८, इलाहाबाद

१. "अतः गोस्वामी जी ने जो कहा है वह सिद्धान्त वाक्य नहीं है, अर्थवाद मात्र है।"

रामचंद्र शुक्ल—तुलसी ग्रंथावली, तीसरा भाग, प्रस्तावना, पृ० १२६, १६८ सं०

"उन पर स्त्रियों की निन्दा का महापातक लगाया जाता है। पर यह अपराध उन्होंने अपनी विरक्ति की पुष्टि के लिए ही किया है। उसे उनका वैरागीपन समझना चाहिए। सब रूपों में स्त्रियों की निन्दा उन्होंने नहीं की है। केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में, दाम्पत्य रति के आलंबन के रूप में की है—माता, पुत्री, भगिनी आदि के रूप में नहीं।"

रामचंद्र शुक्ल—तुलसी ग्रंथावली भाग ३, पृ० १२८

२. "प्रत्येक युग के कलाकार नारी चित्रण में प्रायः उदार पाए जाते हैं। किन्तु नारी चित्रण में तुलसीदास बेहद अनुदार हैं। यद्यपि उनकी इस अनुदारता का कारण अब तक रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ है। पर नारी विषयक उनकी अनुदारता एक ऐसा तथ्य है जिसको अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है।"

माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० ३०७, १६५३ इलाहाबाद

३. मिश्रबन्धु—हिन्दी नवरत्न, पृ० १६८, १६६१ सं० च० स०, लखनऊ

यथार्थ-नारी की विषम अवस्था ने नारी के प्रति तुलसी के दृष्टिकोण में विमुखता तथा हीनता प्रस्तुत की होगी।

वास्तव में तुलसी की नारी भावना के सम्यक विश्लेषण के लिए उसका चार शीर्षकों में वर्गीकरण आवश्यक है। प्रथम नारी-रूप इष्ट से सम्बन्धित नारी का है। दूसरा नारी का आदर्श रूप है, इसके अन्तर्गत कर्तव्यपरायण चरित्रो के सत् रूप के विकास के अतिरिक्त नारी आदर्श की व्याख्या भी है। तीसरा रूप समाज से उपलब्ध नारी रूप का चित्रण है और चौथा सन्त-मत के अनुसार अथवा विराग भावना से नारी निन्दा का है।

इष्ट से संबंधित नारी

परम-महिमा-सम्पन्न, समस्त विश्व को सुख एवम् कल्याण प्रदान करने वाले राम की माता कौशल्या तुलसी के आदर एवम् पूज्य भाव की पात्री हैं[1]। जगत्-जननी करुणानिधान की अत्यन्त प्रेमपात्री सीता की अनुकम्पा कवि की बुद्धि को अमलता प्रदान करती है[2]। माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि सीता, कौशल्यादि का चरित्र-अंकन पवित्र एवम् सुन्दर हुआ, क्योंकि वे उनके आराध्य की प्रेयसी और माता है[3]। वस्तुतः गोस्वामी जी की आदर्श एवम् सद्नारी की कसौटी राम का सम्बन्ध और भक्ति है। सीता, कौशल्यादि की चरित्र रेखा आदर्शमयी है, पर ये सब इष्ट को प्रिय हैं तथा इष्ट से प्रेम और भक्ति करती हैं। ग्रन्थारम्भ में कवि कौशल्यादि सब नारियों को पुनीत तथा शुभ आचरण वाली बताता है[4]। किन्तु राम-वन-गमन उपरान्त कैकेई को मन भर कर धिक्कारता रहता है। कैकेयी की वाणी कवि की कठोरता को भी लज्जित करने वाली प्रतीत होती है। उसकी जीभ रूपी धनुष से वाक्य-वाण छूटते प्रतीत होते हैं[5]। उसको रोष-तरंगिणी बताते

---

१. "बंदौ कौशल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग मांची।
प्रगटेउ जँह रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल-कमल-तुसारू ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० १२

२. "जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।
जाके जुग-पद-कमल मनावौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, पृ १३

३. माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० ३०७, १९५३ इलाहाबाद

३. "कौशल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
मति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरिपद कमल विनीत।।"
तुलसी—तुलसी ग्रथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ८३

५. "निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कुटिलता अति अकुलानी।
जीभ कमान वचन सरनाना। मलहुँ महिष मृदु लच्छ समाना।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, पृ० १७३

है[1]। नगरवासियों द्वारा भी कैकेयी को कुबुद्धि, कुटिल, कठोर, अभागी एवम् 'रघुवंश-बेनु-बन-आगी' कहलाते हैं[2]। लक्ष्मण-जननी सुमित्रा के लक्ष्मण को विदा देते समय के कथन में तुलसीदास का भक्त-हृदय ही प्रगट होता है[3]।

वन के मध्य त्यागमयी पतिप्राणा पत्नी के रूप में सीता पति के साथ विपिन-वास में भी स्वर्णादपि सुख का अनुभव करती है। प्रिय के साहचर्य, प्रियतम की स्नेहमयी स्निग्ध छाया में त्यागमयी पत्नी को कंटक भी सुमनवत दृष्टिगत होते हैं। उनके गरिमामय नारीत्व के चरम विकास की महिमा तुलसीदास उन पर रामप्रिया और जगजननी की अलौकिकता का आरोप कर न्यून कर देते हैं[4]। नृपति दशरथ के मरणकाल में सुत-वियोग के महान दुःख से उत्पीड़ित कौशल्या, सहिष्णुता एवम् धीरता की प्रतीक बन कर, स्थिर बुद्धि, विवेक और सहनशीलता का परिचय देती है। इस धैर्य और स्थितप्रज्ञ की सी मनोवृत्ति की गरिमा को भी तुलसीदास राम-महतारी की विशेषताओं के अन्तर्गत लाते हैं[5]। भरत राम विरोधी माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अपने को महान पातकी बताते हैं। वह अपनी जननी की भर्त्सना करते हैं, उसे कुमति बताते हैं। यह भारतीय संस्कृति के आदर्शों की स्पष्ट अवहेलना है कि माता के लिए पुत्र दुर्वचनों का प्रयोग करे,

---

१. "अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगनि बाढ़ी।
पाप पहार प्रगट भै सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, पृ० १७०

२. "निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिष चाहत चीखा।
कुटिल कठोर कुबुधि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन-आगी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड पृ० १७५

३. "पूजनीय प्रिय परम जहां ते। सब मानिअहि राम के नाते।
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहू तात जग जीवन लाहू॥"
× × ×
"पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति-भगतु जासु सुत होई।
नतरु बांझ भलि बादि बिआनी। रामबिमुख सुत तें हितहानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १८६

४. "सुमिरत राम तजहि जन तृन सम विषय विलासु।
रामप्रिया जग-जननि सिय, कछु न अचरजु तासु॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० २१२

५. "उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी।
नाथ समझि मन करिअ विचारु। राम वियोग पयोधि अपारु।
करनधार तुम अवध जहाजू। चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू।
धीरज धरिअ त पाइब पारु। नाहिं त बूड़हि सबु परिबारू।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० २१७

किंतु कैकेई राम विरोधिनी है[१]। दूसरे स्थल पर वात्सल्यमयी कौशल्या भरत को भी राम के ही समान स्नेह-पात्र मानती हैं। उनके स्नेहपूर्ण हृदय में सबके लिए सम-भाव है। परन्तु तुलसी उनके चरित्र की महत्ता का वर्णन न करके, उनके सत्कल्याण-विधायक रूप का कारण राम की माता होना ही मानते हैं[२]।

सामान्यत: मर्यादापालन एवम् पातिव्रत को तुलसीदास सर्वाधिक महत्व देते हैं। मर्यादा का अतिक्रमण उन्हें क्षम्य नहीं है। परन्तु इष्ट की भक्ति करने वाली, धर्मोपासना के क्षेत्र में अग्रसर होने वाली नारी के पति-त्याग को भी वह श्लाघ्य मानते हैं। कृष्ण प्रेम-मतवाली गोपियों के पतित्याग को कल्याण और सुख का आवाहक बतलाते हैं[3]। भगवद्भक्ति के कारण अपने परमपूज्य पति को कटु-वचन कहने वाली नारी मन्दोदरी उनके दृष्टिकोण के अनुसार प्रशंसनीय हैं। मन्दोदरी का पति को निर्लज्ज, मृत्यु की ओर उन्मुख होने वाला बताना हरिभक्ति के कारण क्षम्य है[४]। हरिभक्ति मय नारी अथवा नर राम को अत्यन्त प्रिय है अत: शबरी को भी योगिवृन्द दुर्लभ गति मिलती है। तुलसी राम भक्ति में संलग्न नर अथवा नारी दोनों को ही परम गति के अधिकारी मानते हैं[५]।

---

१. "कइकइ कत जनमी जग मांझा। जौ जनमित भइ काहे न बांझा।
कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रिय-जन-द्रोही।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २२१

२. "सरल सुभाय माय हिय लाए। अति हित मनहुं राम फिरि आए।
भेंटेउ बहुरि लषन-लघु-भाई। लोकु सनेहु न हृदय समाई।
देखि सुभाउ कहब सब कोई। राममातु अस काहे न होई।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग पृ० २२१

३. "बलि गुरु तज्यौ कंत व्रत बनितनि। भए मुदमंगलकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ५५१, पद १७४

४. "अब पति मृषा गाल जनि मारहु, मोर कहा कछु हृदय विचारहु।
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु, अग जगन्नाथ अतुल बल जानहु।"

× × ×

"सूपनखा की गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहि लाज विसेखी।"

× × ×

"कालु दंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि विचारा।
निकट काल जेहि आवै सोई। तेहिं भ्रम होहि तुम्हारिहि नाई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३८७

५. "नव मंह एकउ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।
सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे।
जोगि वृन्द दुर्लभ मति जोई। तो कहुं आज सुलभ भइ सोई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १ पृ० ३१५

नारी का सत् रूप एवम् नारी आदर्श

तुलसी को पारिवारिक जीवन में नारी के कल्याण-विधायक, ममतामय रूप का विकास करना अभीप्सित था। जीवन की विशृंखलताओं के मध्य, उन्होंने ऐसी नारी का अंकन किया जो गृह-जीवन में त्याग, ममता और कर्तव्य का संबल लेकर अग्रसर होती है। अपने हृदय रक्त से साधना और कर्तव्य का अभिषेक करती है। वेदना और पीड़ा, दुख और विषाद, विलास और विराग के मध्य वह सम है। सहिष्णुता और धीरता की वह मूर्त रूप है। सीता, कौशल्या, पार्वती, सुमित्रा, अनुसूया तथा मन्दोदरी आदि के चरित्रों में यह आदर्श रूप प्रतिफलित हुआ है। जैसा कि अभी कहा गया है कि इष्ट से भक्ति करने के कारण इन नारियों के चरित्र कवि की लेखनी से उज्ज्वल ही अंकित हुए हैं, परन्तु यदि तुलसी की भक्तिभावना का आरोप हटाकर देखें, तब भी यह चरित्र स्वतः पूर्ण आदर्श और पवित्र है। कौशल्या का हृदय मन्दाकिनी की वह शीतल धारा है जो पात्र-अपात्र, ऊंच-नीच का विचार किए बिना सबको समभाव से शीतलता और स्निग्धता का पवित्र दान देती है। गंभीर, गूढ़तम् आघात सह कर भी अपनी विवेक बुद्धि को अविकार रखने की क्षमता उनमें है[1]। उनके ममतापूर्ण स्नेह में सबके लिए समभाव से स्नेहधारा निःसृत होती रहती है। केवल पुत्र ही नहीं, प्रत्युत हनुमान आदि भी उन्हें पुत्रतुल्य ही प्रिय प्रतीत होते हैं[2]। उनके स्नेहपूर्ण हृदय में पुत्रवधू के प्रति भी अपरिसीम ममता है, जिसे वह जीवन-मूल के समान स्नेह-जल से पालती रहती है[3]। सीता आदर्श पत्नी हैं, और साथ ही मर्यादाशीला कुलवधू भी है। हृदय पति के साथ विपिन जाने को उत्सुक है, पर पति यहीं अयोध्या में ही रुकने का उपदेश देते हैं। पतिव्रता का हृदय क्षोभ से व्याकुल हो उठता है, किन्तु पारिवारिक जीवन की सात्विक मर्यादा का उल्लंघन न कर सास के चरण स्पर्श कर, उनके समक्ष पति से भाषण करने की अविनय के लिए क्षमा प्रार्थना कर लेती है[4]।

---

१. "कहौं जान बन तौ बड़ि हानी, संकट सोच बिबस भै रानी।
बहुरि समुझि तिय धरम सयानी, रामभरतु दोउ सुत सम जानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली प्रथम भाग, पृ० १७६

२. "कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायेउ माथ।
आसिष दीन्हीं हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ४४२

३. "कलप बेलि जिमि बहु विधि लाली, सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।"
× × ×
"जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १८०

४. "बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी।
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अविनय मोरी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८२

यह आरोप कि सीता का चित्रण मध्यकालीन गुड़ियावधू के रूप में हुआ है, ठीक नहीं प्रतीत होता है। राम द्वारा अग्नि-परीक्षा आदि के अवसर पर साध्वी सीता प्रतिरोध नहीं करती, इसका कारण उनके भारतीय ललना के संस्कार हैं। उनको अपनी पवित्रता पर अखण्ड विश्वास है, साथ ही परम पूज्य पति के वचनों का अवहेलना करना उन्हें मान्य नहीं है[1]। सीता के रूप में नारी का शास्त्रीय आदर्श मूर्त हुआ है। सुविशाल साम्राज्य की साम्राज्ञी हो जाने पर भी वह निरभिमान कुलवधू है। गृह में अनेक परिचारिकाओं तथा सुविधा के अनेक साधन होने पर भी वह स्वयं गुरुजनों की सेवा एवम् परिचर्या करती है[2]। विध्वंस एवम् युद्ध-सम्बन्धी शक्ति चमत्कार न होने पर भी उनमें पतिव्रता का तेज और गौरव है। रावण द्वारा वैभव और विलास के स्वर्णिम प्रलोभनों के समक्ष उनका एक ही उत्तर है कि या तो राम के भुजदण्ड मेरे कंठ को घेरेंगे अथवा तेरी तलवार[3]।

सुमित्रा आदर्श माता है, जिनके लिए कर्तव्य ही प्रधान है। माता की कोमलता और ममता नगण्य। बड़े भाई तथा प्रभु दोनों रूपों में आदरणीय राम की सेवा को ही वह श्रेयस्कर बताती हैं[4]। भगवती पार्वती अपने अचल पातिव्रत, दृढ़ अनुरक्ति से शिव को पति रूप में प्राप्त करती हैं और पतिव्रताओं की शिरोमणि कही जाती हैं[5]। मन्दोदरी पतिव्रता होते हुए भी पति की दुर्नीति का विरोध करती है, एवम्

---

१. "प्रभु के वचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम वचन पुनीता।
लछिमन होउ धर्म के नेमी। पावक प्रगट करहु तुम वेगी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४२६

२. "जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सकल सेवा विधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।।
जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानई। सोई कर श्री सेवाविधि जानई।
कौशल्यादि सासु गृह माहीं। सेवहिं सबन्हि मान मद नाहीं।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ४५१

३. "स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि-कर-सम दसकंधर।
सो भुजकंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३४६

४. "सिय रघुबीर की सेवा सुचि ह्वै है तो जानिहौं सही सुत मोरे।
कीजहु इहै विचार निरंतर राम समीप सुकृति नहिं थोरे।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३३५

५. "उरधरि उमा प्रानपति रचना। जाइ विपिन लागी तपु करना।
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३६

"पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कह सहस सारदा सेस।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० १०२

सद्मार्ग दिखलाती है[1]। इन सब आदर्श रूपों में तुलसीदास ने अपनी आदर्श भावनाओं को ही आकार दिया है। यही आदर्श रूप उन्हें समाज एवम् परिवार के कल्याण के लिए काम्य था। इसके अतिरिक्त कवि ने विविध स्त्री पात्रों द्वारा ही नारी आदर्श की व्याख्या कराई है। कवि के अनुसार सर्वश्रेष्ठ धर्म पातिव्रत ही है। पति-सेवा और गृह जीवन के कर्तव्यों का सम्पादन ही नारी से अपेक्षित है। भगवती अनुसूया जो उपदेश देती है, वह पातिव्रत धर्म पर प्रवचन ही है। वे माता-पिता, भ्राता आदि को परिमित सुख और आनन्द देनेवाले बताकर पति को ही समस्त सुखराशि एवम् कल्याण का आवाहक मानती हैं[2]। नारी के लिए एकमात्र नियम और धर्म मनसा, वाचा, कर्मणा पति-चरणानुराग ही है[3]। स्वभाव से ही अपवित्र नारी पतिसेवा द्वारा शुभमति पा सकती है[4]। वस्तुतः यह नारी आदर्श की व्याख्या तत्कालीन समाज के अनाचार और उच्छृंखलता के युग की नारी के लिए ही गोस्वामी तुलसीदास ने की थी[5]। गोस्वामी तुलसीदास के सामाजिक आदर्श की चेतना पात्र द्वारा स्पष्ट व्यंजित होती है। जानकी कहती है कि संसार में जितने वात्सल्य, स्नेह, ममता और प्रीति के द्योतक संबंध हैं, वे सब एक पति के बिना दुखदाई हैं[6]। पुरुष के बिना नारी का अस्तित्व प्राण-चेतनाहीन शरीर के समान है[7]।

---

१. "अस कहि लोचन वारि भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुबीर पद, अचल होइ अहिवात॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३७३

२. "कह रिषिवधू सरस मृदु बानी। नारि धरम कछु ब्याज बखानी॥
मातु, पिता, भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमित दानि भर्ता वैदेही। अधम नारि जो सेवै न तेही।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० २८६

३. "एकइ धरम एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० २८६

४. "सहज अपावन नारि पति सेवन सुभ गति लहै।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २८६, प्रथम खण्ड

५. "सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं,
तोहि प्रानप्रिय राम कहेउ कथा संसार हित।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २८६

६. "मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई।
जँह लग नाथ नेह अरु नातें। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८

७. "जिअ बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८

समकालीन नारी-स्थिति

तुलसी के युग में नारी अपनी विशिष्टता तथा मान से वंचित हो चुकी थी। उसका जीवन परतन्त्रता का दुखद इतिहास था। विवशता और आत्म-दमन, बलिदान और दासता में ही उसका जीवन व्यतीत होता था। उसके जीवन और व्यवहार के लिए आचार-शास्त्र नियत था। नारी चारों ओर से बन्दिनी थी। उसकी इसी दशा को देखकर 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई' के सिद्धान्त को आदर्श मानकर चलने वाले गोस्वामी तुलसीदास का भाव-प्रवण हृदय संवेदना से दुखित हो उठा। उन्होंने उस विधाता को दोष दिया जिसने नारी के भाग्य में पराधीनता का अमिट लेख दिया है[1]। उस युग में भी योषिता समस्त धर्माधिकारों से वंचित थी। शास्त्रज्ञान अथवा धर्म एवम् दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों के परिचय के लिए वह अयोग्य और अक्षम समझी जाती रही होगी, तभी रामकथा सुनने, सगुण-निर्गुण के भेद को समझने के लिए उत्सुक पार्वती कहती है कि यद्यपि योषिता होने के कारण आध्यात्म और वेदान्त-विषयक मतवाद पर संभाषण करने का अधिकार मुझे उपलब्ध नहीं है, किन्तु मनसा, वाचा, कर्मणा आपके चरणों की रति होने के कारण मैं इसकी पात्र हो सकती हूँ[2]। शिक्षा, ज्ञान और सम्मान से वंचिता नारी जड़ और मूर्ख समझी जाती थी। अनादर और उपेक्षा पाते-पाते स्वयं नारी ही हीनत्व से पीड़ित थी। वह अपने को स्वभावतः ही मूर्ख, सहज जड़, अज्ञ समझती थी[3]।

जिस काल और जिन विशिष्ट परिस्थितियों के मध्य व्यक्ति जन्म लेता है, वह उसके उपचेतन पर अपना प्रभाव अवश्य छोड़ देती है। आलोच्ययुग के बहुत पहले से ही नारी सुकुमारता की प्रतिमूर्ति मानी जाती थी। सौकुमार्य एवम् विलास अभिजात्य का लक्षण माना जाने लगा था। उच्च-वर्ग की नारी के लिए शारीरिक परिश्रम करना अपमान तथा अप्रतिष्ठा का सूचक था। तुलसी का युग वैभव और विलास के उत्कर्ष का युग था। विभिन्न विलास-सामग्रियों, आमोद के विविध उपकरणों के मध्य नारी के गुणों में कर्मण्यता नहीं, निष्क्रियता और सुकुमारता श्रेष्ठ समझी जाती थी। तुलसीदास अपने को इस रीतिकालीन प्रवृत्ति से पृथक न रख सके। उन्होंने सीता में इस सुकुमारता का आरोप किया[4]।

---

१. "कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४६

२. "जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० ५२

३. "अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० ५६

४. "पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० १८०

नारी भी भोग की अन्य वस्तुओं में परिगणित की जाने लगी थी। तत्कालीन अतिशय विलास के युग में नारी पुरुष की सहचरी और सहधर्मिणी न थी, प्रत्युत जीवन में आनन्द एवम् सौख्य का उद्रेक करने वाली विलास एवम् भोग की वस्तुओं में एक थी। तभी तो वन में राम से मिलने जाते हुए भरत तथा अन्य नगरवासियों की सुविधा के लिए भरद्वाज मुनि ने माला, चन्दन एवम् वनितादि भोग प्रस्तुत किए[1]। अपनी सुगमता एवम् सुलभता के कारण नारी का विशेष मूल्य न था। पुरुष इच्छानुसार विवाह कर सकता था। उसके ऊपर कोई सामाजिक बन्धन न था। समाज की इस प्रवृत्ति की छाया लक्ष्मण-शक्ति के समय राम के कथन में मिलती है[2]।

समाज में नैतिकता के बन्धन उपेक्षणीय थे। गौरवमयी नारी अपनी गरिमा से च्युत होकर, वासना-प्रेरित प्रणय-भिक्षा मांगती फिरती थी। सूर्पणखा के रूप में कवि नारी के इसी अभिसारिका रूप की ओर इंगित करता है[3]। वैदिक संस्कारों की पूर्णता के अभाव में नारी भी शूद्रों में ही सम्मिलित की जाती थी। वह भी शोषितवर्ग की थी। इसी प्रवृत्ति के स्पष्टीकरण में समुद्र ने उसकी ढोल, गंवार, शूद्र और पशुओं में गणना करके, उसे ताड़न का अधिकारी माना है[4]। उच्छृङ्खल पुरुष, अपनी कामनापूर्ति के समक्ष नारीत्व की अवहेलना कर, सती पत्नी की उपेक्षा कर दासियों को रक्षिता बना रहा था[5]। तुलसी का कलियुग-वर्णन उनके समकालीन समाज का ही चित्रण है, जिसमें नारी भी पतित होकर अपने गुणधाम पति का त्याग कर पर पुरुष की आराधना करती है[6]। उस समय के नैतिक सम्बन्धों की विषमता तुलसी के काव्य में मुखर हो उठी है, परन्तु उस समय की सामान्य नारी के हृदय में पवित्र नदियों एवम् देवी-देवताओं पर श्रद्धा,

---

१. "स्रक चंदन बनितादिक भोगा, देखि हरष बिसमयबस लोगा।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० २४१

२. "जैहों अवध कवन मुँहलाई, नारि हेत प्रिय बधु गँवाई।
बरु अपजसु सहत्यों जग माहीं, नारि हानि बिसेष छति नाहीं।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३९८

३. "रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई, बोली बचन बहुत मुसुकाई।
तुम सम पुरुष न मो सम नारी, यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३००

४. "ढोल गँवार सूद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३६६

५. "कुलवंत निकारहिं नारि सती, गृह आनहिं चेरि निवेरि गती।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खण्ड, पृ० ४८४

६. "गुनमंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० ४८३

ाकुन तथा स्वप्नों पर विश्वास था। उसके बौद्धिकता शून्य हृदय में देवा-देवताओं ी मंगल कामनाओं में अखण्ड प्रतीति थी। जानकी गंगा से करबद्ध विनय करती ़—'हे माता, मैं पति देवर सहित कुशलपूर्वक लौटकर आपकी पूजा करूं, इस मनो-ामना को पूर्ण करो[1]।' सामान्य नारी को काक तथा क्षेमकरी के बोलने में हेतेच्छु प्रिय व्यक्तियों के आने का आभास मिलता था। गीतावली में बैठी शकुन ानाती हुई कौशल्या काग को उसकी बोली फलित हो जाने पर सोने से चोंच ढ़ाने तथा दूध भात खिलाने का आश्वासन देती है[2]। क्षेमकरी की बोली सुन-र उनका व्याकुल प्रतीक्षा करता हुआ हृदय राम लक्ष्मण और सीता के आने ी तिथि पूँछ बैठता है[3]।

भारतीय संस्कृति की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि नारी के अधिकारों, उसकी सामाजिक स्थिति की अवहेलना करके भी, वह किसी भी परिस्थिति में नारी के वध की आज्ञा नहीं देती है। नारी सदा अवध्य एवम् रक्षणीय है। तुलसीदास के समाज में भी नारी का वध राजा एवम् बाल वध के समान पातक माना जाता था[4]।

परम्परागत नारी-निन्दा

परम्परा और लोकरीति के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास ने भी नारी को कामिनी रूप में ही देखा है। तप एवम् विराग को जीवन की चरम गति मानने-वाले साधु के दृष्टिकोण के अनुसार नारी माया का ही अभिराम रूप है। समस्त विश्व ही नारी के नयन-वाणों के विष से अभिभूत हो जाता है, केवल राम ही

---

१. "सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी।
पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौ जेहिं पूजा तोरी॥"
तुलसी--तुलसी ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० १९७

२. "बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता।
दूध भात की दोनी देहौं सोने चोंच मढ़ैहौं॥"
तुलसी--तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, पृ० ४०६, पद १९

३. "क्षेमकरी बलि बोलि सुबानी।
कुसल छेम सिय राम लखन कब ऐहैं अंब अवध रजधानी।
ससिमुखि, कुंकुम बरनि सुलोचनि मोचनि-सोचनि वेद बखानी॥"
तुलसी--तुलसी ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, पृ० ४०६, पद २०

४. "जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें।"
× × ×
"ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता॥"
तुलसी--तुलसी ग्रंथावली, भाग १, पृ० २२२

इसके अपवाद हैं[1]। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभादि से भी अधिक दुख तथा कष्टदायिनी माया रूपी नारी है[2]। वह जप, नियम, संयम और तपस्या को नष्ट कर देती है[3]। मानव के मुक्ति-मार्ग में बाधक अवगुणों ममतादि को पोषण देती है[4]। मानव के सदगुण बुद्धि, बल, शील, सत्य सब दुर्बल विवश मछली हैं, बंसी रूपी नारी में फंसकर सब नष्ट हो जाते हैं[5]। अतः समस्त दोषों और दुर्गुणों की स्रोत, समस्त दुख और वेदनाओं की केन्द्र नारी से दूर रहने में ही कल्याण है[6]। यह सन्तों के विरक्ति-प्रधान दृष्टिकोण से की गई व्याख्या है। इसके अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक पात्र ने नारी-स्वभाव, नारी-चरित्र की निन्दा की है। गोस्वामी तुलसीदास निगमागम-सम्मत धर्म को मान्यता देते थे, अतः मध्ययुगीन शास्त्रकारों, स्मृतिकारों, साधकों एवम् नीतिकारों की नारी के प्रति कटुता और वैराग्य की भावना, नारी के अगाध चरित्र की थाह लेने की असफलता उनके काव्य में स्पष्ट हो उठी। उनका यह मत पुराणों और शास्त्रों से प्राप्त तथा सन्तों द्वारा प्रतिपादित है[7]। अतः माया के इस वाह्य अभिराम स्वरूप—जिसमें कामिनी का रूप, उसकी मोहिनी शक्ति सबसे प्रधान है—से निष्कृति पाने का उपाय दनुज-दलन राम का यशगान है, जिससे बिना तप और योग के ही भगवत् चरणों में दृढ़ अनुराग हो जाता है। अपने इस मन को नारी-सौन्दर्य पर बलिदान होने वाले, आत्म-दान करने वाले, शलभ बनने ने बचाकर कामादि का परित्याग कर साधुजनों के

---

१. "नारि नयन सर जाहि न लागा, घोर-क्रोध-तम-निसि जो जागा।
लोभ पास जेहि गर न बंधाया, सो नर तुम्ह समान रघुराया॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३३४

२. "काम-क्रोध-लोभादि-मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

३. "जप तप नेम जलाशय भारी, होइ ग्रीषम सोखै सब नारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

४. "पुनि ममता जवास अधिकाई, पलुहै नारि सिसिर रितु पाई।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

५. "पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निविड़ रजनी अँधियारी।
बुधि बल सील सत्य सब मीना, बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

६. "अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ता ते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

७. "सुनु मुनि कह पुरान श्रुति सन्ता। मोह विपिन कहुँ नारि बसन्ता॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२०

सान्निध्य में हरि-भजन श्रेयस्कर है[1] । उस समय के समस्त धार्मिक अथवा साहित्यिक ग्रन्थ नारी के दुर्गुणों, उसके चरित्र और स्वभाव की निन्दा से पूर्ण थे। नारी स्वभाव के विषय में संस्कृत के नीति-ग्रन्थ अनेक सामान्य कथन कर चुके थे। वे उसे सदा आठ अवगुणों से पूर्ण मानते थे। विद्वानों का कथन था कि राजा, शास्त्र और युवती निरन्तर सेवा, आराधना और प्रीति युक्त हृदयासन देने पर भी वश में नहीं रहते, यह उनका स्वभाव है। तुलसीदास के खरे आदर्शवाद की कसौटी पर यदि कहीं नारी में लेशमात्र भी न्यूनता दृष्टिगत हुई, वह तत्क्षण किसी पुरुष, नारी पात्र अथवा कवि-कथन के रूप में ही नारी-निन्दक नीति-वाक्य कह देते हैं। सीता-हरण पर व्यथित राम से कवि उपरोक्त नीति वाक्य का कथन कराता है[2] । मन्दोदरी द्वारा रावण को बारंबार राम को सीता लौटाकर हरि-भजन करने की शिक्षा पर अमानव रावण समस्त नारी-जाति के स्वभाव पर साहस, झूठ, चंचलता, माया, भय, अविवेक आदि अष्ट अवगुणों का आरोप कर देता है[3] । वस्तुतः यह संस्कृत के एक नीतिवाक्य का हिन्दी रूपान्तर है। समुद्र का कथन 'ढोल गंवार शुद्र पशु नारी' भी गर्ग-संहिता के एक श्लोक का हिन्दी रूप है। तुलसीदास अपने युग की अनैतिकता काम-वासना का निर्बाध विहार देख कर, अथवा अपने हृदय में शास्त्र-अध्ययन, परम्परा द्वारा पोषित, नारी संबंधी पूर्व निश्चित धारणा के कारण नारी में वासना की प्रमुखता मानकर उसमें संयम का घोर अभाव मानते हैं[4] । नारी मात्र के लिए किया गया यह कथन स्पष्ट कर देता है कि नारी उनके लिए अवगुणपूर्ण, काम-वासना की प्रतिमा है। नारी-निन्दा की इस प्रवृत्ति में वह सन्तों के ही समानधर्मी हैं। सन्तों के समान वह भी नारी को त्रिगुणों को नष्ट करने वाली, तप-संयम की विरोधी, साधना की शत्रु मानते हैं। उनके कथनानुसार यह सत्य ज्योतिष में भी फलित

---

१. "दीपशिखा सम जुवति जन, मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद, करहिं सदा सतसंग ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३२१

२. "शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ, भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ।
राखिअ नारि जदपि उर माहीं, जुवती शास्त्र, नृपति बस नाहीं ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३१६

३. "नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं ।
साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक असौच अदाया ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ३७६

४. "भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी ।
होइ विकल सक मनहिं न रोकी, जिमि रविमनि द्रव रविहिं विलोकी ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० २९९

हुआ है, तभी कुण्डली में नारी कठोर शत्रु मृत्यु के मध्य स्थापित है[1]। वास्तव में वह नारी को अनिश्चित मनोवृत्ति वाली, सहज, अपावन और गूढ़ समझते हैं। उसके छल-प्रवंचनामय हृदय के रहस्य को समझने में मानव का कोई प्रश्न ही नहीं, विधाता तक असमर्थ है[2]। नारी की स्वतन्त्रता गोस्वामी तुलसीदास को अप्रिय रही, तभी वह स्वतन्त्र नारी की तुलना जलवृष्टि से मर्यादाहीन बनी क्यारी से करते हैं[3]। व्यष्टि और समष्टि इस पर एकमत हैं कि नारी-स्वभाव अगम और अगाध है। अबला नारी को बलवती बनाने से वह अग्नि के समान भयंकर, समुद्र के समान प्रचण्ड और काल के समान दुर्निवार हो जाती है[4]। तुलसी की नारी-भावना की विशेषता यह है कि स्वयं नारी भी अपनी जाति को तुच्छ, हीन बताती हुई कहती है कि काने, खोरे, कूबरे वैसे ही कुटिल होते हैं उनमें यदि स्त्री हुई तो कुबुद्धि का योग अधिक होता है[5]। मंथरा के कपटपूर्ण व्यवहार को वह नारी चरित्र बतलाते हैं। नारी भाव-गोपन में इतनी निपुण होती है कि नीति-विशारद राजा भी उसके चरित्र को नहीं समझ पाते हैं[6]। नारी विषयक यह कथन चाहे

---

१. "जनम-पत्रिका बरति कै देखहु मनहि विचारि।
दारुन वैरी मीचु के बीच विराजत नारि ॥"
तुलसी—तुलसी ग्रंथावली दूसरा खण्ड, पृ० १२७, दो० २६८

२. "विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल-कपट-अघ-अवगुन खानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० २२०

३. "महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ३३१

४. "सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ।
सब बिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई।
जानि न जाई नारि गति भाई॥
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रवल, केहि जग काल न खाइ॥
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १७६

५. "काने, खोरे, कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय विसेषि पुनि चेरि कहि, भरतमातु मुसुकानि॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १६३

६. "ऐसेउ पीर बिहँसि तेइ गोई, चोरनारि जिमि प्रगटि न होई।
लखी न भूप कपट चतुराई, कोटि कुटिल मनि गुरु पढ़ाई॥
जद्यपि नीति निपुन नर नाहू, नारि-चरित जलनिधि अवगाहू।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० १६८

पुरुष पात्र, स्त्री पात्र अथवा स्वयं कवि करे, उनमें समान कठोरता है[1]।

इस प्रकार विवेचन कर हम देखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास ने अधिकतर नारी की निन्दा विराग और तप की भावना द्वारा प्रेरित होकर की है, अथवा जब नारी ने कोई मर्यादा-विरोधी कार्य किया है। अपने समय और वातावरण के संस्कारों का प्रभाव उन पर पड़ना अनिवार्य था। उस युग में ही विराग प्रधान मनोवृत्ति श्रेयस्कर समझी जाती थी। विराग पथ से मानव को च्युत करने वाले विषयोपभोग को तुलसीदास ने गर्हित बताया। विषयोपभोग की प्रधानपात्री नारी होने के कारण, स्वभावतः ही उन्होंने नारी निन्दा की है[2]। आत्महित और कल्याण की साधना करने वाले व्यक्ति को काम लोभादि से मुक्ति पाना अनिवार्य है। वह पूर्णतः समझते थे कि कामी के हृदय में नारी के प्रति कितनी दृढ़ अनुरक्ति होती है[3]। अतः उसकी इस नारी-रूपी मोहपाश से निष्कृति उन्हें काम्य थी। समाज में नारी की उच्छृंखलता, आदर्शविहीनता देखकर मर्यादावादी पुरुष कवि के हृदय में नारी के प्रति क्षोभ आ जाना स्वाभाविक ही है। इस मर्यादा का आधार युग एवम् राष्ट्र निर्माण-कर्त्री में जिस उदात्त आदर्श की भावना उन्हें अभिलषित थी, उसके अभाव में उनके शब्दों में नारी के प्रति कटुता और हीनता की भावना आ गयी है। इससे यह अनुमान लगाना कि गोस्वामी तुलसीदास ने नारी का केवल कृष्ण-रूप ही देखा उसके सत् रूप की ओर ध्यान न दिया, समुचित नहीं है। नारी के सती-रूप, पति-प्रेमरता पतिव्रता के पावन स्वरूप, उसके दृढ़ नियम के प्रति उनके मन में मोह रहा होगा, तभी वह शंभु-धनुष की अटलता की तुलना सती के निर्विकार

---

१. "ये उदाहरण मानस से न केवल विभिन्न कोटि के पुरुष पात्रों द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में किए गए कथनों, वरन विभिन्न कोटि के स्त्री-पात्रों, जड़ पात्रों और स्वतः राम द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में किए गए कथनों से लिए गए है। अब हम देखेंगे कि कवि स्वतः भी जब नारी-चरित्र पर वक्तव्य देने के लिए आगे बढ़ता है, अथवा अपनी कथा के किसी वक्ता द्वारा उस सम्बन्ध में वक्तव्य दिलाता है, तो वह भी अधिक नहीं तो उतना ही क्रूर पाया जाता है।"

माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० ३०७, १९५३, इलाहाबाद

२. विषयों में सबसे प्रबल है कामोपभोग और पुरुषों के लिए इसका प्रधान साधन है प्रमाद अथवा नारी। इसलिए विषयवासना की निन्दा को अपना प्रधान लक्ष्य बनाने वाले गोस्वामी जी ने नारी-निन्दा में कोई कसर नहीं रख छोड़ी है।"

बलदेवप्रसाद मिश्र—तुलसी-दर्शन, पृ० ८०, १९९५, प्रयाग

३. "कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ५०४

चित्त से करते हैं[1]। समय की अनिवार्य आवश्यकता तथा समाज के लिए कल्याण-मय होने के कारण तुलसीदास ने पातिव्रत पर बहुत अधिक बल दिया है। पतिव्रता और भक्त दोनों प्रकार की नारी तुलसी के लिए वन्दनीय हैं[2]।

गुणशीला एवम् कर्तव्यपरायण पुत्री भी पितृ एवम् श्वसुर दोनों कुलों का उद्धार कर सकती है[3]। वास्तव में तुलसीदास को नारी अथवा पुरुष दोनों का ही आदर्श, स्वधर्म-निरत रूप ही प्रिय है। अतः कर्तव्यपरायण नारी की उन्होंने प्रशंसा की है। तुलसीदास में विरागी साधक, समाज-संस्कर्ता, नीतिकार और कवि इन चारों का योग है। उन्होंने नारी का वर्णन इसी मिश्रित दृष्टि-विन्दु से किया है। नारी से उनका तात्पर्य उस युग की विलास-रत, कर्तव्य-हीन, कुमार्ग-गामिनी नारी से है। अतः नारी और प्रमदा को एक ही समझ कर, लोक और समाज के बाधक उस रूप को उन्होंने गर्हित एवम् त्याज्य बताया। पुरुषवर्ग के होने के कारण स्वजातिगत पक्षपात की किंचित छाया आ जाना अस्वाभाविक नहीं है, यद्यपि उन्होंने नारी को कुदृष्टि से देखने वाले के वध को भी पातकहीन बताया है[4]। अतः तत्कालीन समाज की प्रवृत्ति के प्रभाव से उन्होंने नारी को विलास की सामग्री में गिना है, परन्तु अंतर के किसी कोण में नारी मर्यादा, उसकी पवित्रता के प्रति श्रद्धा एवम् आदर का भाव सतत बना ही रहा।

तुलसी के काव्य से नारी की सामाजिक स्थिति, धार्मिक अधिकारों पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। सामान्यतः नारी-विरोधी तुलसीदास ने धर्म के क्षेत्र से बहिष्कृत नारी को भी भक्ति का अधिकारी माना है, तथा भक्ति साधना द्वारा उसके मोक्ष साधन के अधिकार को मान्यता दी है[5]।

---

१. "भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरै न टारा।
डगै न संभु सरासन कैसे। कामी वचन सती मन जैसे॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १०८

२. "हिय हरषै मुनि वचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।
चलै भवानी नाइ सिर गए हिमांचल पास॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४३

३. "तापस वेष जनक सिय देखी। भयेउ प्रेम परितोष विसेषी॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २६६

४. "अनुज वधू, भगिनी, सुत नारी।
सुन सठ कन्या सम ये चारी॥
इन्हहिं कुदिष्टि विलोकैं जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० ३२८

५. "राम भगति-रत नर अरु नारी।
सकल परम गति के अधिकारी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४५०

केशव की नारी-भावना

तत्कालीन समाज में नारीत्व का सर्वोच्च आदर्श पातिव्रत ही था। अतः केशव ने भी पातिव्रत को नारी की गति बताया। उनके अनुसार नारी को कोई उपासना, प्रार्थना, धार्मिक अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं है, पति-सेवा ही उन्हें इन सब विधानों का फल देगी[1]। केशव ने नारी के सहमरण अथवा सती होने को आदर्श माना है। पुनः उन्होंने विधान के लिए आचार-विचार, एवम् कष्ट और साधना के जीवन का विधान किया है[2]। पतिव्रता को श्रेष्ठ मानते हुए और उसी को नारी-जीवन के चरम साफल्य का साधन स्वीकार करते हुए केशव पति-पत्नी के संबंध को अन्योन्याश्रित बताते हैं। पति और पत्नी दोनों ही एक दूसरे के अस्तित्व के लिए आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण हैं[3]। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि केशव ने भी नारी को भोग एवम् संसारासक्ति का कारण माना है, किन्तु उनके काव्य में नारी-भर्त्सना की प्रवृत्ति न्यून ही दृष्टिगत होती है।

केशव ने सीता के रूप में नारी आदर्श का जो महिमामय रूप प्रतिष्ठित किया है, उसमें महानता और तेजोमयी गरिमा है। सीता पवित्रता की प्रतीक, पति को देवता मानने वाली, पति सुख के लिए राजभवन के समस्त सुखों को तृणवत् परित्याग करने वाली आदर्श नारी है। उसमें सहिष्णुता, धीरता और सौम्यता है। राक्षस के घर यातना पाकर लौटने पर सती सीता को भी अपने चरित्र की परीक्षा देनी पड़ती है। कुछ समय राजभोग के उपरान्त उनके दुर्दिन पुनः दुर्भाग्य का विधान करते हैं। भरत के शब्दों में अत्यन्त सुभाषिणी, पवित्र, परमशुद्ध, अत्यन्त गरिमामयी, गर्भवती सीता का राम वेद-विधानों के विरुद्ध परि-

---

१. "जोग जाग व्रत आदि जु कीजै, न्हान मानगुन दान जु दीजै।
धर्म कर्म सब निष्फल देवा, होहि एक फल कै पति सेवा॥"
केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध दीन सम्पादित, पृ० १३५, पंचमावृत्ति २००१ इलाहाबाद

२. "नारि न तजहि मरे भरतारहि।
ता संग सहइ धनंजय झारहि॥
जो केहि विधि करतार जियावहि।
तोतेहि कंह यह बात बतावहि॥"
× × ×
"खाय मधुरात्र नहिं पाय पनहि धरै, काय मन वाच सब धर्म करि बोलो।
कृच्छ उ पवास सब इन्द्रियन जीतिहीं, पुत्र सिख लीन तन जौ लगि अतीतहीं"
केशव—रामचन्द्रिका, पृ० १३५, १३६ पं० आवृत्ति, २००१ इलाहाबाद

३. "पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मंद।
चन्द्र बिना ज्यों जामिनी, ज्यों बिनु जामिन चंद॥"
केशव—रामचन्द्रिका, पृ० २०४

त्याग करते हैं[1]। राम द्वारा दोषारोपण होने पर भी सीता शुद्ध और पवित्र हैं। बाल्मीकि मुनि उन्हें तपस्वियों की शुभसिद्धि के समान ग्रहण करते हैं[2]। अश्वमेध के लिए हुए लव-कुश और राम-लक्ष्मण आदि के मध्य संग्राम में हत वीर सती सीता के पुण्य प्रभाव से जीवित हो जाते हैं[3]। वस्तुतः केशव का नारी-आदर्श भारतीय परम्परा के अनुकूल ही है।

तत्कालीन राजदरबारों में नारी विलास का उपकरण मानी जाती थी। अन्तःपुर की साज-सज्जा, विलास-कक्ष की शोभा का वह अनिवार्य उपकरण थी। अतः दरबारी कवि केशव जिन्होंने अपने जीवन के अधिकांश दिवस वैभव की स्वप्निल छाया में बिताए, मर्यादापुरुषोत्तम राम को भी एक विलासी नायक के रूप में अंकित करें, यह स्वाभाविक ही है। पन्नगी, नगी, सुरों और असुरों की बालाएं संगीत और नृत्य से राम का मनोरंजन करती है[4]। तत्कालीन समाज की नारी संगीत वीणावादन, चित्रकला आदि में निपुण होती थीं[5]। वह वैभव और विलास की दोला पर तरंगित होती थीं, किसी प्रकार की समस्या उनके समक्ष नहीं थी। विधवा के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म सहमरण था। पुत्र-पालन अथवा अन्य किसी आवश्यक कार्य के लिए यदि जीवित रहना चाहती, तो उसका जीवन संयम एवम् निग्रह का जीवन होता था। सुविधा और सुख की समस्त सामग्रियाँ उसे त्याज्य थीं[6]। असुरों में नारी अपने देवर के साथ पुनर्विवाह कर लेती थी, पर समाज और जनमत में उसका यह कार्य श्लाघ्य एवम् प्रतिष्ठित नहीं माना

---

१. प्रिय पावनि प्रियवादिनी पतिव्रता अति शुद्ध।
जग की गुरु अरु गुर्विणी, छाँड़ति वेद विरुद्ध॥"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, पृ० २०६

२. "सर्वथा गुनि शुद्ध सीतहि ले गए मुनि राय।
अपनी तपसिन की शुभ सिद्धि सी सुख पाय॥"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, पृ० २१६

३. केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, पृ० २७२

४. "पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरी निहारि।
विविध किन्नरीन किन्नरी बजावें
मानो निष्काम भक्ति शक्ति आप आपनीस।
देहन धरि प्रेमन भरि भजन वेद गावैं।"
केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, दीन सम्पादित, पृ० १२७, तृ० सं० १९४५, इलाहाबाद

५. केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, दीन, पृ० २२०, १७३, पं० स० २००१ सं० इलाहाबाद

६. केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० १३६, पं० स०, २००१ सं० इलाहाबाद

जाता था[1]।

केशव के युग १६१२–७४ सं० (१५५५–१६१७ ई०) में भक्ति की अन्तः-सलिला पावन धारा शृंगार के कुण्ड में समाहित हो जाने को उत्सुक थी। रावण के राजगृह में स्त्रियों के विलास के चित्रण पर रीतिकालीन प्रभाव स्पष्ट है। कोई स्त्री मदिरा पान करती है, कोई सर्वप्रसाधन से सज्जित होकर नाचती है, कोई स्त्री तोता और मैना आदि को कोकशास्त्र के मंत्र पढ़ाया करती है[2]। इससे स्पष्ट है, केशव के समय की नैतिक उच्छृङ्खलता में नारी स्वयं ही विलास-रत थी। उसमें गृहिणी की गरिमा, मातृत्व का गौरव न था। विलास की सामग्री एवम् जीवन का अत्यन्त आवश्यक उपकरण होते हुए भी उसको समाज में स्थान उपलब्ध नहीं था। पर्दा था अथवा नहीं? इसका स्पष्ट विवरण नहीं मिलता है, पर अन्तःपुर की प्रथा थी। कवि के कथन से कि दशरथ के मरण पर वह सब नारियाँ जो कभी अन्तःपुर से नहीं निकली थीं, वे भी उनके शव के दर्शनार्थ बाहर निकलीं, ज्ञात होता है कि अवरोध की प्रथा थी[3]। बहुविवाह प्रचलित था। बहुविवाह द्वारा एकत्रित रूपसियों के कोषागार की रक्षा काने, कुबरे आदि अपंग करते थे[4]। इन सामाजिक विषमताओं के होते हुए भी पातिव्रत धर्म पर अधिक बल दिया जाता था। पतिव्रता नारी पवित्र तथा पूज्य समझी जाती थी। मन्दोदरी के रावण के प्रति कथन कि, पतिव्रता को साधारण प्राणी न समझो, से स्पष्ट है कि पतिव्रता आदरणीय थी[5]। नृप आदि जो भी धार्मिक क्रियाएँ करते

---

१. "जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान,
ताकी पत्नी तू करी पत्नी मातु समान।"
केशव—रामचंद्रिका पूर्वार्द्ध, पृ० २६, तृ० सं० १६४५ इलाहाबाद

२. "पियै एक हाला गुहै एक माला,
बनी एक बाला नचै चित्रशाला।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका,
पढ़ावै सुवा लैं सुकी सारिका को॥"
केशव—रामचंद्रिका पूर्वार्द्ध, दीन सम्पादित पृ० २२०, पं० सं० २००१ वि० सं० इलाहाबाद

३. "हाय हाय जहां तहां सब ह्वै रही सिगरी पुरी।
धाम धाम नृप सुन्दरी प्रगटी सबै जे रही दुरी॥"
केशव—रामचंद्रिका पूर्वार्द्ध, पृ० १५१, पं० सं०, २००१ वि० स० इलाहाबाद

४. "गूंगे कुबजे बावरे बहरे बामन वृद्ध,
यान लिए जन आइए खोरे खंज प्रसिद्ध।"
केशव—रामचंद्रिका उत्तरार्द्ध, पृ० १६७, तृ० सं० १६४५ सन्

५. "संधि करौ विग्रह करौ, सीता को तो देह।
गनो न पिय देहीन में पतिव्रता की देह॥"

थे, सब स्त्री के साथ ही सफल मानी जाती थी[1]।

केशव भी नारी को सद् मार्ग का अवरोधक, माया का ब्रह्मास्त्र, मानव की आकांक्षाओं का मूल मानते हैं। पातिव्रत को तो सभी कवियों ने ही मान्यता देकर उसे ही स्त्री के लिए सर्वश्रेष्ठ, श्रेयस्कर धर्म माना है। केशवदास को भी नारी का आदर्श प्रतिपादित रूप ही काम्य है। उन्होंने विधवा को भी तप और संयम तथा आत्म-निग्रह का उपदेश दिया। पतिव्रता के सतीत्व की मनोहर सात्विक व्यंजना के साथ ही परिस्थितियों के प्रभाव से नारी का विलास क्रीड़ारत रूप भी समक्ष आता है। केशव पतिव्रता, गुणशीला, कर्तव्यपरायण नारी के परित्याग को अकल्याण का आवाहक मानते हैं। भरत के राम के प्रति कथन में सद्नारी के प्रति मोह एवम् श्रद्धा की भावना स्पष्ट हो जाती है। केशव के काव्य से तत्कालीन सामाजिक एवम् धार्मिक जीवन में नारी की स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है।

सम्पूर्ण रामकाव्य में नारी के सामान्य विलास-वासना-परक रूप को घृणित मानकर पति-भक्ति पर अधिक बल दिया गया है। राम के चरित्र की आदर्श-वादिता को अपनी कसौटी बनानेवाले इन कवियों के लिए नारी की सामान्य दुर्बल-ताएँ क्षम्य न होकर आलोचना तथा निन्दा का कारण बनी है, किन्तु साथ ही नारी का आदर्श रूप, लोक और समाज में कर्तव्य के प्रदीप की मंजुल दीप्ति प्रशस्त करने वाला स्वरूप इनका काम्य और वर्णनीय रहा है।

केशव—रामचंद्रिका पूर्वार्द्ध, दीन सम्पादित : पृ० ३१४, पं० सं० २००१ सं० इलाहाबाद

१. "धर्म कर्म जो कछु कीजै, सफल तरुणी के साथ।
ता बिनु जो कुछ कीजई निष्फल सोई नाथ॥"
केशव—रामचंद्रिका उत्तरार्द्ध, : दीन : पृ० २३७, तृ० सं० ६१४५ सन् प्रयाग

प्रकरण २

कृष्ण-काव्य में नारी

निरंजनी नाथपंथी निर्गुणियों के उपदेश, उनके योग संबंधी जटिल कार्य-कलापों से जनहृदय श्रान्त हो चुका था। उनके द्वारा प्रदर्शित ज्ञानाश्रयी भक्ति का मार्ग जनसाधारण की रागात्मक वृत्ति के साथ सामंजस्य-स्थापन में असमर्थ था। राम के मर्यादावादी रूप की अपेक्षा रसेश्वर कृष्ण के प्रेममय रूप ने जनता को अधिक आकृष्ट किया। कृष्ण-भक्ति के आचार्य वल्लभ ने रागानुगा भक्ति का राजमार्ग, ऊंच-नीच, पुरुष और नारी सभी के लिए प्रशस्त कर दिया। इस लोक-रंजक उपासना-पद्धति में आध्यात्मिकता के साथ लौकिकता के समन्वय ने अपकर्ष और पराभव के कारण जीवन से विमुख हिन्दू जाति में पुष्टि-भक्ति के पोषण द्वारा जीवनोन्मेष किया। इन भक्त कवियों ने भगवान के प्रेम-रस-मय स्वरूप को लेकर जिस भक्ति-मार्ग, उपासना पथ को प्रस्तुत किया, वह निवृत्ति-मूलक न होकर प्रवृत्तिमूलक है। उसमें नैराश्य एवम् वैराग्य नहीं है, अपितु जीवन के आशा से उज्ज्वल पक्ष का चित्रण हुआ है। वल्लभाचार्य से पुष्टिभक्ति की दीक्षा पाकर अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण जीवन की माधुरी का रसमय स्रोत प्रवाहित कर दिया।

राधा-कृष्णोपासना का विकास

ईसवी सदी से चार शताब्दी पूर्व ही वासुदेव और कृष्ण का एकीकरण हो चुका था। महाभारत और पुराणों में नारायण एवम् विष्णु का कृष्ण के साथ जो एकीकरण हुआ था, उसमें कृष्ण का रूप गीता के अनासक्ति-योग का उपदेश देने वाले योगिराज कृष्ण का था, व्रजभूमि में गोचारण, वंशीवादन कर कुंजों, वनों में व्रजांगनाओं के साथ विहार करने वाले गोपाल-कृष्ण का नहीं। सर्वप्रथम हरिवंश तथा वायुपुराण में गोपाल-कृष्ण का उल्लेख मिलता है। कृष्ण अथवा वासुदेव एक ऐतिहासिक पुरुष होकर भी परम दैवत के पद को प्राप्त कर सके, किन्तु राधा का व्यक्तित्व ऐतिहासिक नहीं है। उनके अस्तित्व के विषय में दो संभावनाएं की जाती हैं[1]। चौदहवीं सदी के अन्त में भागवत संप्रदाय के नए

---

१. (अ) "राधा कृष्ण से संबंधित आभीरों की प्रेमदेवी रही होगी। आरम्भ में केवल वासुदेव से बालकृष्ण का एकीकरण हुआ, अतः आर्य-ग्रन्थों में राधा का उल्लेख नहीं है। पीछे बालकृष्ण को प्रधानता होने पर बालक देवताओं की सभी बातें आभीरों से ली गई।"

रूप के साथ राधा-कृष्ण संपूर्ण भाव तथा काव्य-जगत की वस्तु हो गए। आराधित: शब्द से भी राधा की कल्पना की जाती है[1]।

कृष्ण-काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

कृष्ण-काव्य का आधार प्रेमाभक्ति की परम्परा है, और वल्लभ की प्रेमाभक्ति का उत्स श्रीमद्भागवत है। इन काव्यकारों के अनुसार माया से रहित ब्रह्म ही जगत का कारण है। जगत और जीव दोनों ही ब्रह्म की लीला के विस्तार हैं। वह अविनाशी ब्रह्म भेदरहित, शुद्ध, जन्ममरण तथा कामना रहित है[2]। वह विरोधाभास वाले गुणों से पूर्ण है, निर्गुण होते हुए भी सगुण, सधर्मक होते हुए भी अधर्मक है। मन, वाणी की क्षमता से परे यह सर्वशक्तिमान ब्रह्म, भक्तों के लिए सगुण स्वरूप धारण कर लोक में अपनी मनोहर, अद्‌भुत लीला का विस्तार करता है[3]। यह अगम, अखण्ड, नित्य ब्रह्म केवल प्रेम द्वारा ही गम्य है[4]। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार जड़ जगत और जीव सृष्टि सच्चिदानन्द के ही अंश हैं[5]। ब्रह्म सगुण स्वरूप ही वास्तविक एवम् सत्य है। इस नित्य प्रभु की लीला भी नित्य है। विष्णु के वैकुण्ठ के भी ऊपर व्यापक वैकुण्ठ में

(ब) "राधा आर्यों से पूर्व जाति की प्रेम-देवी रही हों उनकी प्रधानता के कारण उनका संबंध कृष्ण से जोड़ दिया गया होगा।"
हजारीप्रसाद द्विवेदी—सूर-साहित्य, पृ० २६, १९९३ सं०, इन्दौर

१. "अत: आराधिता शब्द से राधा की उद्‌भावना कर लेना कठिन कार्य न था। कृष्ण की जो आराधिका है, वही राधा या राधिका है। भगवान की ह्लादिनी शक्ति का रूपान्तर हैं, कृष्ण नारायण के अवतार हैं, अत: लक्ष्मी को वृषभानुजा राधा कह कर निम्बार्क ने कृष्ण की शाश्वत पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित किया।"
मुंशीराम शर्मा—भारतीय साधना और सूर-साहित्य, कानपुर, पृ० १७३

२. "अमल, अकल, अज, भेद विवर्जित सुनि विमल विवेक।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० १२७, पद ३८१

३. "कह्यौ सुक सुनौ परीच्छित राव, ब्रह्म अगोचर मन बानी ते अनन्त प्रभाव भक्तन हित अवतार धारि करी लीला संसार।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ३२५, पद ३०७

४. "नित्य आत्मानन्द अखण्ड स्वरूप उदारा
केवल प्रेम सुगम्य, अगम्य अवर परकारा"
नंददास—नंददास ग्रन्थावली सं० ब्रजरत्नदास श्री कृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ० ४४, २००६ सं० काशी

५. "नाथ तुम्हारी जोति अभास, करति सकल जगत में परकास।
थीवर जंगम जहँ लगि भये, जोति तुम्हारी चेतन किये॥"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० १७१२, ४३००। ४९१८

अपने भक्त गण के साथ क्रीड़ा करता है। इस वैकुण्ठ में नित्यक्रम से जमुना, बृन्दावन और निकुंज हैं। इस व्यापक वैकुण्ठ भूमि का एक भाग गोलोक है। रसेश्वर, पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण अपने षटगुणों एवम् अप्राकृत धर्मों से युक्त हो अक्षर-धाम में नित्य लीला मग्न रहते है। पूर्ण पुरुषोत्तम का लीलाधाम गोकुल अथवा बृन्दावन है जो ब्रह्म का ही स्वरूप है। वल्लभाचार्य के अनुसार यह ब्रह्म सत् से प्रकृनि, सत्, चित, जीव और सत्, चित, आनन्द में सर्वव्यापी ब्रह्मके रूप में प्रकट हुआ हैं। सर्जन की इच्छा से ही वह सृष्टि का प्रणयन तथा विनाश करता है। संसार उसी से उत्पन्न होकर उसी में विलीन भी हो जाता है[1]। इन कृष्णशाखा के कवियों के अनुसार ब्रजभूमि का रास पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के नित्य रास का ही रूपान्तर है। इस रास पर उन्होंने आध्यात्मिक भावना का आरोप कर, परमब्रह्म के संसर्ग के कारण निर्दोष बताया है[2]।

यह स्पष्ट है कि ब्रह्म के ही अंश व्रज के गोप-गोपी-गोवत्स हैं। राधा सब से विशिष्ट हैं। उनके द्वारा ही कृष्ण का परमानन्द-स्वरूप पूर्ण होता है। कृष्ण आदि पुरुष हैं और राधा आदि प्रकृति। इन कृष्ण कवियों के दर्शन में कृष्ण को विष्णु का अवतार तथा राधा को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। राधा और कृष्ण अभिन्न है। वह जग-नायक हैं और वह जगत-जननी हैं, बृन्दावन में गोपाल लाल के साथ नित्य विहार करती रहती हैं[3]। सभी भक्त-सम्प्रदायों में माया की स्वीकृति किसी न किसी रूप में है। कृष्ण-भक्तों में सूरदास के अनुसार माया के द्विविध रूप मान्य हैं। एक सद और दूसरा असद। ब्रह्म और जीव के साक्षात्कार में बाधक अज्ञान माया

---

१. "जग सिरजत पालक संहारत, पुनि क्यौं बहुरि करे,
ज्यों पानी में बुदबुदा, पुनि ता माहिं समाइ,
ज्यों ही सब जग प्रगटत तुम तें, पुनि तुम माहिं विलाइ।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० १७१३, ४३०२। ४६२०

२. "धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ,
धन्य श्याम वृन्दावन को सुख, सत भया ते जान्यौ।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, पद ११७३।१७६१
"सुक भागवत प्रगट करि गायौ कछू दुविधा न राखी,
सूरदास ब्रजनारि संग-हरि बाकी रही न काखी।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, पद ११७२।१७६०

३. 'रूपरासि सुख रासि राधिकै सीला महागुन-रासी,
कृष्ण चरन ते पावहिं स्यामा जे तुव चरन उपासी।
जगनायक, जगदीश पियारी, जगत-जननी राधा रानी,
नित विहार गोपाल लाल-संग बृन्दावन रजधानी॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६२४, पद १०५५।१६७३

अपने भक्त गण के साथ क्रीड़ा करता है। इस वैकुण्ठ में नित्यक्रम से जमुना, बृन्दावन और निकुंज हैं। इस व्यापक वैकुण्ठ भूमि का एक भाग गोलोक है। रसेश्वर, पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण अपने षटगुणों एवम् अप्राकृत धर्मों से युक्त हो अक्षर-धाम में नित्य लीला मग्न रहते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम का लीलाधाम गोकुल अथवा बृन्दावन है जो ब्रह्म का ही स्वरूप है। वल्लभाचार्य के अनुसार यह ब्रह्म सत् से प्रकृति, सत्, चित, जीव और सत्, चित, आनन्द में सर्वव्यापी ब्रह्मके रूप में प्रकट हुआ हैं। सर्जन की इच्छा से ही वह सृष्टि का प्रणयन तथा विनाश करता है। संसार उसी से उत्पन्न होकर उसी में विलीन भी हो जाता है[1]। इन कृष्णशाखा के कवियों के अनुसार ब्रजभूमि का रास पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के नित्य रास का ही रूपान्तर है। इस रास पर उन्होंने आध्यात्मिक भावना का आरोप कर, परमब्रह्म के संसर्ग के कारण निर्दोष बताया है[2]।

यह स्पष्ट है कि ब्रह्म के ही अंश ब्रज के गोप-गोपी-गोवत्स हैं। राधा सब से विशिष्ट हैं। उनके द्वारा ही कृष्ण का परमानन्द-स्वरूप पूर्ण होता है। कृष्ण आदि पुरुष हैं और राधा आदि प्रकृति। इन कृष्ण कवियों के दर्शन में कृष्ण को विष्णु का अवतार तथा राधा को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। राधा और कृष्ण अभिन्न हैं। वह जग-नायक हैं और वह जगत-जननी हैं, बृन्दावन में गोपाल लाल के साथ नित्य विहार करती रहती हैं[3]। सभी भक्त-सम्प्रदायों में माया की स्वीकृति किसी न किसी रूप में है। कृष्ण-भक्तों में सूरदास के [illegible] के द्विविध रूप मान्य है। एक सद और दूसरा असद। ब्रह्म और जीव के साक्षात्कार में बाधक अज्ञान माया

---

१. "जग सिरजत पालक संहारत, पुनि क्यौं बहुरि करे,
ज्यों पानी में बुदबुदा, पुनि ता माँहि समाइ,
ज्यों ही सब जग प्रगटत तुम तें, पुनि तुम माँहि विलाइ।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० १७१३, ४३०२। ४६२०

२. "धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ,
धन्य श्याम वृन्दावन को सुख, सत भया ते जान्यौ।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, पद ११७३।१७६१
"सुक भागवत प्रगट करि गायौ कछू दुविधा न राखी,
सूरदास ब्रजनारि संग-हरि बाकी रही न काखी।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, पद ११७२।१७६०

३. 'रूपरासि सुख रासि राधिकै सीला महागुन-रासी,
कृष्ण चरन ते पावहि स्यामा जे तुव चरन उपासी।
जगनायक, जगदीश पियारी, जगत-जननी राधा रानी,
नित विहार गोपाल लाल-संग वृन्दावन रजधानी॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६२४, पद १०५५।१६७३

उद्भूत है। यह प्रभु की माया अत्यन्त प्रबल है, यह मानव को पशु के समान अपना अनुगामी बना लेती है। हिंसा, ममता, मद, आशा आदि इसके सहायक हैं[१]। इसी माया के प्रभाव से मनुष्य सुत-वनिता आदि की मोह-माया में ग्रस्त होता है। यह सांसारिक माया, कांचन कामिनी, सम्पत्ति और परिवार, जिसका विस्तार है, भक्ति के पथ में बाधक है[२]। माया का दूसरा रूप भगवान की योगमाया का है। नित्य वृन्दावन में नित्य रास की अलौकिक क्रीड़ा भगवान कृष्ण की योगमाया का ही विस्तार है।

गोपी भगवान की आनन्द-प्रसारिणी शक्ति हैं, जो भगवान की सिद्ध-शक्ति राधा के साथ रसेश्वर कृष्ण से क्रीड़ा करती हैं। वे सामान्य लौकिक नारी नहीं, प्रत्युत् वेद की ऋचाएँ हैं। जैसा कि आगे कहा जायेगा इन गोपियों के भाग्य सुर ललनाओं के लिये भी ईर्ष्या के कारण हैं। उनकी महिमा का वर्णन ब्रह्मा भी करते हैं[3]।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

पुष्टिमार्गी भक्ति की रामानुगा धारा मर्यादा की सीमा में बद्ध होकर नहीं चली। उसके प्रचण्ड वेग के समक्ष सामाजिक बन्धन और प्रतिबन्ध ढह गए। किन्तु साधना की प्रारम्भिक अवस्था में इन्होंने भी मर्यादा को अनिवार्य माना गया है। भक्ति-योग की साधना के लिये उन्होंने [illegible] का विधान किया है[४]। किन्तु साधारणतः इन्होंने निश्छल भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है। भगवान

---

१. "अब हौं माया-हाथ बिकान्यौ,
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस भज्यौ न श्रीपति रामै।
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आशा ही लपटायौ॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० १७, ४७

२. "व्याकुल होत हरे ज्यौं सरबस, आंखिन धूरि दई
सुत–संतान–स्वजन–बनिता–रति, घन समान उनई
राखे सूर पवन पाखण्ड हरि, करी जो प्रीति नई"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड (नन्ददुलारे वाजपेयी)
पृ० १७, पद ५०, २००७ सं०

३. "गोपी पदरज महिमा, विधि भृगु सौं कही
वरष सहस तप कियौ तऊ मैं ना लही॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६६२, ११७५। १७९२

४. "भक्ति पंथ जो अनुसरैं—सो अष्टांग जोग को करैं
यमनियमासन, प्रानायाम करि अभ्यास होइ निष्काम
प्रत्याहार धारण ध्यान करैं जु छोड़ि वासना आनि॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, सूरसमिति द्वारा संपादित
पृ० २२१, पद ३६४ सं० २००७ काशी

का भक्त ही उनकी दृष्टि में योग्यतम है। जो व्यक्ति भगवद्-भजन नहीं करता उनकी माता ने उसका भार व्यर्थ ही वहन किया है[1]। इन श्रीपति विष्णु अथवा कृष्ण का द्वार बिना किसी जातिगत, धर्मगत भेदभाव के सब के लिये उन्मुक्त है। उसी हरि का स्मरण करना भवजीवन का पाथेय है जो पुरुष और स्त्री दोनों को ही भक्ति एवम् शरण का अधिकारी मानता है[2]। इस कलिकाल में जब अन्य किन्हीं सत्कर्मों का अवकाश नहीं है, समस्त विधि-विधान अमान्य हो गये है, तब केवल रामनाम ही अवलम्ब है[3]। जब तक मनुष्य के हृदय में आकांक्षा, कामना रहती है, तब तक योग, यज्ञ, व्रत, उपासना सब कर्म-काण्ड व्यर्थ होते हैं। पुनः सूर भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुये सकामी भक्त को भी क्रम से मुक्ति-लाभ का अधिकारी मानते है[4]। इस भक्ति-पथ के अनुसरण के लिये सांसारिक मोह-माया, सुतकलत्र की ममता का अभिराम बन्धन तोड़ना आवश्यक है। यह माया-जाल निरर्थक है। इसकी मोहिनी से उद्भ्रान्त मानव विनाश की ओर अग्रसर होता रहता है। गृह-दीपक में धन का तैल पड़ा है, स्त्री की बत्ती लगी हुई है और पुत्र की ज्वाला जल रही है, उस पर भाव से अभिभूत मन शलभ के समान बलिदान को प्रस्तुत हो जाता है[5]। अतः इन सभी मायिक प्रलोभनों का

---

१. "विरथा जन्म लियौ संसार
करी कबहुं न भक्ति हरि की जननी भारी भार।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ९७, २९४ पद

२. "कह्यौ सुक श्री भागवत विचार
जांति—पाति कोउ पूंछत नाहीं श्रीपति के दरबार।"
सूर—सूरसागर खण्ड १, पृ० ७५, पद २३१
"हरि के जन सब तैं अधिकारी।"
सूर—सूरसागर खण्ड १, पृ० १२, पद ३४
"हरि, हरि, हरि सुमिरो सब कोइ, नारि पुरुष हरि गनति न दोइ॥"
सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ७९, पद २४५

३. "है राम नाम को आधार
और इहिं कलिकाल नाहीं रह्यौ विधि व्यौहार"
सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ११५-१५, पद ३४७

४. "जौ लौं मन-कामना न छूटै
तौ कहा जोग जज्ञ व्रत कीन्है, बिनुकन तुस कौ कूटें"
सूर—सूरसागर, पृ० ११७, पद ३५२
"भक्त सकामी हू जो होइ, क्रम, क्रम करिकै उधरै सोइ,
सूर—सूरसागर, पृ० १३७, पद ३९४

५. "माधौ जू, मन माया बस कीन्हौं
लाभ हानि कछु समझत नाहीं, ज्यौं पतंग तन दीन्हौं
गृह-दीपक, धन तेल, तूल तिय सुत ज्वाला अतिजोर॥"
सूर—सूरसागर खंड १, पृ० १६, पद ४६

परित्याग श्रेयस्कर है। सांसारिक माया एवम् वासना के परित्याग का आदेश देकर सूर अपनी समस्त भावनाओं एवम् कामनाओं को भगवान् में ही पर्यवसित करने का उपदेश देते है। राग अथवा रति का आलम्बन परिवर्तित हो जाने से ही वह दिव्य हो जाती है परन्तु उनका मार्ग काम, क्रोध, मद, मोह से विराग का होता हुआ वैराग्यमूलक होकर भी अनुरागपूर्ण है। वह राग की सार्थकता कृष्ण में केन्द्रित होने में ही मानते हैं। वासनाओं को भी वह कृष्ण में ही पर्यवसित करते है। इस प्रकार इन भक्त कवियों का उद्देश्य लौकिक भावनाओं को अलौकिक आलम्बन में नियोजित कर उनका उन्नयन करने का है[1]।

कृष्ण-भक्त कवि और नारी

कृष्ण कवियों में सूरदास ने संतों द्वारा परम्परा में प्राप्त नारी-निन्दा को और भी अग्रसर किया। सूरसागर प्रथम खण्ड में कृष्ण-कथा-वर्णन के पूर्व राजा पुरु की कथा में कवि नारी के स्वभाव की तुलना नागिन से करता हुआ नारी को नागिन से भी अधिक भयंकर मानता है। नागिन का विष तो तभी व्यापता है जब वह काट लेती है, पर नारी अपनी दृष्टि-निक्षेप मात्र से मानव को चेतना हीन कर देती है[2]। नारी हृदयहीन तथा कठोर होती है। यद्यपि नर नारी से प्रेम करता है, परन्तु वह नृशंसता से उसका परित्याग कर देती है[3]। नारी के स्वभाव का जो चित्र उर्वशी के रूप में खींचा गया है, वह दया ममता से हीन है[4]। संतों के समान कृष्ण-काव्य के कवि भी अपनी और पराई नारी से दूर रहने का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार नारी के सम्बन्ध मिथ्या, माया के मूल और भक्ति में बाधक हैं। पुनः कृष्ण-चरित वर्णन में भी दूती मानिनी राधा के मान-मोचन में भामिनी और काली सर्पिणी

---

१. "उक्त प्रकार से ही सूरदास परमानन्ददास आदि ने लौकिक भावों को लोक के आलम्बनों से हटाकर ईश्वर की ओर लगाया था। परिष्कार की अवस्था में भाव वही रहा केवल विभाव बदल गया।"
दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय दूसरा खण्ड, पृ० ६४८

२. "सुकदेव कह्यौ सुनौ हौ राव, नारी नागिन एक सुभाव।
नागिन के काटे विष होइ, नारी चितवत नर रहै मोह।।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, नन्ददुलारे वाजपेयी, नवम् स्कंध, पृ० १८०

३. "नारी सौं नर प्रीति लगावै, पै नारी तिह मन महि लावै।
नारी संगै प्रीति जो करै, नारी ताहि तुरत परिहरै।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, नन्ददुलारे वाजपेयी, नवम् स्कंध, पृ० १८०

४. "बिनु अपराध पुरुष हम मारैं, माया मोह न मन में धारैं।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, नन्ददुलारे वाजपेयी, नवम् स्कंध, पृ० १८२

की तुलना करती हैं[१]। दान लीला में कृष्ण स्वयं नारी के प्रति हीनता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि बालक और स्त्री को अधिक सिर नहीं चढ़ाना चाहिए[२]। स्पष्टतः इन कवियों ने नारी को माया का रूप, मिथ्या और गर्हित माना है। परन्तु उपास्य के प्रति अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना प्रायः नारी भाव से की। गोपी रूप में ब्रजचन्द के साथ रास ही इनका काम्य रहा। वास्तव में इन कृष्ण-भक्तों को नारी के दो रूप मान्य हैं, सामान्य और विशेष। सामान्य रूप में वह लौकिक नारी है, जो माया और मिथ्या की प्रतीक है। समाज के बन्धनों और कुलमर्यादा का पालन उसके लिए अनिवार्य है। विशेष रूप गोपियों का है, जो पार्वत्य सरिता के समान अप्रतिहत वेग वाली हैं। मर्यादा के कगारे, लोक-कानि और कुल-कानि के तटीय वृक्ष कृष्ण-प्रेम की प्रचण्डता के समक्ष नष्ट हो जाते हैं। इस विशेष रूप में आर्य-पथ त्याग करने पर भी यह दोष की भागिनी नहीं होती, इसका कारण है कि यह गोपियाँ स्वयं भक्त अथवा वेद की ऋचाएँ हैं। वह माता-पिता के स्नेह, कुल की मर्यादा आदि बन्धनों का केंचुलवत परित्याग कर देती हैं। किन्तु उनका यह मर्यादा त्याग भी श्लाघ्य है[३]।

---

१. "भामिनी और भुजंगिनी कारी, इनके विषहि डरिए
रांचेहु विरचै, सुख नाहीं, भूल न कबहुँ पत्यैये
इनके बस मन परै मनोहर, बहुत जतन करि पैयौ।"

× × ×

"जै जै प्रेम छकै मैं देखैं, तिनहिं न चातुरताई।
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड पृ० ११८७, २८२६। ३४४३ सं० २००७ काशी

२. "कबहूँ बालक मुँह न दीजियौ, मुँह न दीजियौ नारी।
जोइ मन करै, सोइ करि डारैं, मूड़ चढ़त हैं भारी॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ७८६, १५१८, २१३६

३. "ब्रजसुन्दरि नहिं नारि रिचा स्रुति री
मैं और शिव पुनि शेष लच्छमी तिनि समता नाहीं।"

× × ×

"स्रुतनि कहा ह्वै गोपिका केलि करौ तुम संग
एवम् अस्तु निज मुख कह्यौ पूरन परमानन्द।"

× × ×

"भार भयौ जब पृथ्वी पर तब हरि लियौ अवतार,
वेद ऋचा ह्वै गोपिका हरि संग कियौ विहार।
जो कोउ भरता भाव हृदय धरि हरि पद ध्यावै,
नारि पुरष कोउ होइ स्रुति ऋचा मति पावै॥"

सूरदास—सूरसागर खण्ड १, पृ० ६६३, ६४ पद ११७५। १७६३

कृष्ण-काव्य की नारी भावना के विश्लेषण के पूर्व उसके मधुर भाव की भक्ति के सिद्धान्त पर दृष्टि डाल लेना समीचीन होगा। बल्लभ तथा अन्य सामयिक विद्वानों के द्वारा की हुई व्याख्याओं से भक्ति का स्थायी भाव प्रीति सिद्ध होता है। मानव सम्बन्ध के जितने रूप संभव हैं, उन सब को प्रीति को इन कवियों ने ईश्वरोन्मुख किया है। इन्होंने ईश्वर को तीन रूपों में देखा है, एक स्त्री रूप में दूसरे पुरुष रूप में और तीसरे युगुल रूप में। कृष्ण-भक्तों में ईश्वर की युगल रूप की उपासना तथा एकाकी रूप की उपासना दोनों ही मान्य है[1]। भक्तों ने लोक में उपलब्ध प्रीति के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रेम में ही पर्यवसित किया है। सांसारिक अनुरक्ति में लिप्त मानव को मुक्त करने के लिए विषय-तृप्ति का साधन भी भगवान् को ही माना है। प्रेम के समस्त सम्बन्धों में पूर्णता एवम् दृढ़ता, सहज समर्पण एवम् प्रणय की भावना स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में ही अधिक सम्भव है। इसी कारण काव्य एवम् भक्ति में कवियों, साधकों तथा भक्तों ने अपने हृदय की उत्कट रति की अभिव्यंजना का साधन दाम्पत्य-भाव के प्रतीक को ही माना है। स्वकीय भाव के प्रेम से परकीय भाव के प्रेम में अधिक प्रचंडता और गूढ़ता होती है। अतएव आध्यात्मिक साधकों ने भी जारभाव तथा परकीय भाव भी ग्रहण किया है। वल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त की आकांक्षाओं की मधुर परिणति गोपी भाव से आराध्य के सहवास, तथा सान्निध्य के आनन्द का उपभोग ही है। इन अष्टछाप के कवियों ने स्त्री रूप को लेकर, संयोग की सरसता और वियोग की व्याकुलता के चित्रण में स्वकीया भाव को ही प्रधानता दी है। परकीया भाव की अभिव्यक्ति बहुत कम है।

---

१. "अष्टछाप भक्तों की रचनाओं में उनकी एकाकी कृष्ण तथा युगल दोनों प्रकार की भक्तियों का परिचय मिलता है। उनकी दृष्टि में कृष्ण उनके स्वामी हैं तो राधा स्वामिनी हैं कृष्ण की राधा अभिन्न स्वरूपा प्रिया है। इसीलिए स्थान-स्थान पर उन्होंने कभी राधा की, कभी कृष्ण की तथा कभी युगल की स्मृतियाँ की है।"

दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ४२६, २००० वि० सं० प्रयाग

"मैं कैसे रस रासहिं गाऊँ।
श्री राधिका श्याम की प्यारी कृपा वास ब्रज पाऊँ:
आन देव सपनेहुँ न आनौं, दंपति कौ सिर नाऊँ॥"

सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ६६५, ११७४।१७६२

"अगतिनि की गति भक्तनि की पति राधा मंगलदानी।
असरन-सरनी भव-भय-हरनी वेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित अपार।
कृष्णभक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहार॥"

सूर—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ६२४, १०५५।१६७३

वास्तव में राधा और गोपी का विह्वल प्रेम, कीट और भृंग की गति, व्याकुल विरह-वेदना इन भक्तों के हृदय की ही अभिव्यंजना है। अष्टछाप के कवियों ने भगवान् को सभी रूपों में उपासना योग्य माना है, परन्तु उनकी भक्ति में स्त्री-भाव की प्रधानता है।

कृष्ण की मुरली के स्वर को सुनकर गोकुल की कुलवधुएँ और कुमारियाँ अपनी विवेक बुद्धि खो बैठती हैं। कृष्ण की प्रेमिकाओं, बेनु-नाद पर उन्मादिनी हो जाने वाली नारियों में विवाहिता और अविवाहिता दोनों प्रकार की नारी हैं। कुमारियों में कुछ का परिणय भी कृष्ण से हो जाता है, शेष अविवाहिता ही लोक और वेद की मर्यादा त्याग कर कृष्ण की उपासना करती हैं, परन्तु वह पति-भाव से कृष्ण की उपासना करती है, उनके प्रेम में पतिव्रता की एकनिष्ठा और अखण्डता है[1]। अष्टछाप के कवियों ने इनको स्वकीया के अन्तर्गत रखा है। उनकी राधा कृष्ण की प्रेयसी नहीं प्रत्युत पत्नी है। रम्य रास के मध्य में उनका विवाह होता है[2]। कृष्ण-प्रेम-मतवाली उन गोपिकाओं को—जो अविवाहित हैं—अनन्यपूर्वा मानकर उनमें पूर्वराग का आरोप किया है। राधवल्लभीय सम्प्रदाय की सखी-भाव की उपासना का भी प्रभाव इन कृष्ण-भक्त कवियों पर पड़ा हैं। इसमें भक्त का अस्तित्व दर्शक रूप में, सखी अथवा चेरी भाव से होता है। वह कृष्ण और राधा की परिचर्या कर उनके नित्य विलास में सहायक होता है। जैसा कि कहा जा चुका है इन कृष्ण-भक्तों ने कृष्ण की नारी-भाव से उपासना के अन्तर्गत दो भावों को प्रधानता दी है, वात्सल्य भाव तथा दाम्पत्य भाव। अपनी भावनाओं का उन्नयन उन्होंने नारी बन कर ही किया[3]।

---

१. "गौरी पति पूजति ब्रजनारि।
नेम धर्म सौं रहति क्रिया जुत, बहुत करत अनुहारि।
यहै कहति पति देहु उमापति गिरिधर नन्दकुमार॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, नंददुलारे वाजपेयी पृ० ५२४ पद १३८४, काशी २००७

"यह व्रत हिय धरि पूजी, है कुछ अभिलाष न दूजी।
दीजै नन्दसुवन पति मेरे, जो पै होइ अनुग्रह तेरे॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६३०, पद १०७२।१६९०

२. "सनकादिक नारद मुनि सिव विरंचि जान।
देव-दुंदुभी मृदंग बाजे बर निसान॥"
× × ×
"दुलहिन वृषभानु-सुता, अंग अंग साज।
सूरदास देखौ श्री दूलह ब्रजराज॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६३२, पद १०७४।१६९२

३. "भावनाओं के कृष्ण के प्रति उन्नयन में भक्तों को पौरुष की ग्राहक वृत्ति से क्या प्राप्त हो सकता था। भक्ति का मार्ग सेवा और समर्पण

राधा, परमानन्द शक्ति की प्रतीक

अष्टछाप के कवियों की राधा केवल सामान्य प्रेयसी नहीं है, वह ब्रह्म की आदि शक्ति है। भक्ति के सिद्धान्त के अनुसार वह कवि की पूजनीया है। वह कृष्ण से अभेद, परम ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति है। संसार के व्यवहार के कारण उन्हें अपने स्वरूप का विस्मरण हो जाता है। गुरुजनों द्वारा प्रेम-मार्ग में प्रस्तुत की गई बाधाओं एवम् प्रतिबन्धों से खीज कर वह मुरारी से विनय करती है कि वह अपने मोहन रूप से उन्हें उद्भ्रान्त न करें। लोकापवाद, माता-पिता की ताड़ना और बन्धुओं के व्यवहार से वह दुखी हो गई है तब कृष्ण उन्हें समझाते हैं कि यह तो मानव शरीर धारण करने का धर्म है, अतः इन बन्धनों को मानना ही पड़ता है[1]। पुनः वे कहते हैं कि ब्रजभूमि में जन्म लेकर तुमने अपनी महत्ता को भुला दिया। क्या तुम्हें विस्मरण हो गया कि मैं पुरुष हूं और तुम प्रकृति, तथा दोनों अभेद हैं[2]। कृष्ण के इन वचनों को सुनकर राधा नागरी अपने पूर्व-स्नेह को स्मरण कर, पूर्ण ब्रह्म, रसेश्वर कृष्ण के साथ अपनी अभिन्नता का अनुभव कर

का था। स्त्री के समर्पण के अनुकरण द्वारा ही भक्त उस सीमा तक पहुँच सके थे, जहाँ उनके तथा उपास्य के बीच के अन्तर की क्षीण रेखा भी न रह गई थी। अपने प्रियतम की उपासना उसने नारी बन कर की। यशोदा के वात्सल्य की अनुभूति से सूरदास तथा परमानन्द दास के हृदय में वात्सल्य की रसधार फूट पड़ी। राधा बन कर कृष्ण-भक्तों ने कृष्ण के साथ कुंज में विहार किया, गोपिकाओं के रूप में उनके साथ फाग और बसन्त मनाया।"

सावित्री सिन्हा—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० ९५, १९५३ दिल्ली

१. "हँसि बोले गिरधर रस बानी।
गुरुजन खिझैं कतहि रिस पावत, काहे को पछितानी।
देह धरै को धर्म यही है, स्वजन कुटुम्ब गृह-प्रानी।
कहन देहु कहि कहा करेंगे, अपनी सुरति हिरानी।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ८४१, पद १६८५।२३०३

"देह धरै को यह फल प्यारी।
लोक लाज कुलकानि मानिए, डरिए बन्धु महतारी।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ८४२, पद १८९०।२३०८

२. "ब्रजहि बसे आपहि बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ।
जल थल जहाँ रहौ तुम बिनु नहिं, वेद उपनिषद् गायौ।
द्वै तन जीव-एक हम दोउ, सुख कारन उपजायौ।।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ८४१, पद १६८७।२३०५

प्रफुल्लित हो उठती हैं[1]। यह राधा शेष महेश नारदादि की स्वामिनी है। राधा के लौकिक रूप में गौरवमयी मानिनी स्वकीया, विरह व्यथिता वियोगिनी आदि नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है।

प्रेम, पूर्वराग, संयोग-लीला, वियोग की वेदना की इसी पृष्ठभूमि में कृष्ण-कवियों की नारी-भावना का विकास हुआ है। यशोदा तथा अन्य वय:प्राप्त गोपियों के रूप में कविगण अपने हृदय की भक्ति को वात्सल्य के रूप में लुटा देते हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओं–हठ, क्रीड़ा आदि—पर उनका भक्त-हृदय रीझ उठता है। नारी हृदय के दो प्रधान तत्वों वात्सल्य और प्रेम के आरोपण से नारी-भावना के विकास में जननी और जाया, माता और प्रेयसी के दो रूप मिलते हैं। नारी कवयित्रियों, मीरा आदि ने कृष्ण को अपना इष्टदेव तथा स्वयं को राधा अथवा गोपी मानकर उनकी उपासना की है[2]। नन्दलाल के प्रेम में वह मतवाली होकर लोककानि, मर्यादा का त्याग कर देती है। वह अपनी प्रीति को पुरातन जन्म-जन्मान्तर की मानती है, उसी प्रीति का अवलम्ब लेकर लोकापवाद आदि सहने को प्रस्तुत है। अपने प्रियतम से वह अत्यधिक प्रेम करती है, अतः हृदय की अपरिसीम श्रद्धा का पात्र होते हुए भी वह अत्यन्त निकट होने के कारण उपालंभ का पात्र भी है[3]। आत्मनिवेदन, प्रणय विह्वलता के क्षणों में इष्ट लौकिक प्रणयी हो जाता है, और समस्त प्रकृति तथा अन्य वस्तुएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं[4]। मीरा के

---

१. "तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि स्याम को अति आनन्द भई।
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति, काहे भूलि गई॥"

× × ×

"जन्म जन्म जुग-जुग यह लीला प्यारी जानि लई।
सूरदास प्रभु की यह महिमा, यातै बिबस भई॥"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ४८२, पद १६८८।२३०६

२. "मैं अपने सैंया संग सांची।
अब काहे की लाज सजनी परगट ह्वै नाची।"
मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ६, २००६ प्रयाग
"श्री गिरधर आगे नाचूँगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊं, प्रेमीजन को आंचूंगी।"

मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ६

३. "जाबो निरमोहिया जाणौ तेरी प्रीति।"

मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २४

४. "दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणावै।
घुमड़ घटा ऊलर होइ आई, दामिनि दमक डरावै॥"
नैर झर लावै॥

मीरा—मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २९

काव्य में नारी हृदय की समर्पण की भावना साकार हो उठी है। उनके काव्य से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में नारी के भक्ति-मार्ग अनुसरण में कितनी बाधाएँ थीं, तथा नारी पर समाज के कितने बन्धन थे। मार्ग के अवरोध एवम् बाधाएँ उनकी भक्ति को तीव्रतर करती गई, उसका प्रेम उन्मत्त अवस्था की सीमा तक पहुँच गया था। निष्काम, भोग लालसा-रहित इस प्रेम को ही गोपी-भाव के नाम से अभिहित किया गया।

यशोदा को बड़ी उत्कण्ठा और प्रतीक्षा के उपरान्त पुत्र का मुखदर्शन मिला, अत: स्नेह और प्रेम की बहुलता स्वाभाविक है। कृष्ण छोटे हैं, यशोदा उन्हें पालने पर झुलाती हैं। धीरे-धीरे मातृ-हृदय का आनन्ददाता कन्हैया बड़ा होता है। बालक के मुख से तोतले बोल सुनने के लिए माता के हृदय में असीम उत्कण्ठा एवम् लालसा है[1]। दूर खेलने जाने से माता का वात्सल्यपूर्ण हृदय शंकित हो उठता है, अत: वह हौवा का भय दिलाकर बड़ी मनोवैज्ञानिकता से बालक को मना करती हैं[2]। बड़े मनोयोग स्नेह और दुलार के साथ श्याम और राम को 'कलेऊ' कराती हैं[3]। ब्रज में आने वाली नित नई आपदाओं के साथ जननी के हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह और उसकी कुशल में शंका बढ़ती जाती है। वह अपने सुन्दर बालक को कुदृष्टि लग जाने से बचाने के लिए उसके नयनों को काजल-रंजित कर देती है। उनका छोटा-सा नन्दलाल जब दीर्घकाय गोवर्धन को उठा लेता है तब जननी की स्नेहमयी दृष्टि उसकी अलौकिक शक्ति की ओर उन्मुख नहीं होती, प्रत्युत मातृ-सुलभ स्नेह से उसकी भुजा दाबती है[4]। अक्रूर के साथ नंदनंदन मथुरा

---

१. "नान्हारिया गोपाल तू वेगि बड़ो किम होइ।
इहि मुख मधुर बचन हँसिकै जननि कहै कब सोंहि॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० २८६ पद ६६३

२. "खेलन दूरि जात कत कान्हा।
आजु सुन्यो मैं हाऊ आयौ तुम्ह नहिं जानत नान्हा।"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० २८६, पद ८१७

३. "करौ कलेऊ बलराम कृष्ण तुम कहत जसोदा मैया।
पाछे वछ ग्वाल संग लै के चलहु चरावन गैया॥"
परमानन्द—परमानन्द पदावली, (अष्टछाप पदावली) १९४० लाहौर

४. "कमलनयन मेरों अंखियन तारा कुल दीपक ब्रजनेह।
परमान्दे कहति नन्दरानी, सुतप्रति अधिक सनेह॥"
परमानन्द—परमानन्द पदावली, (अष्टछाप पदावली) १९४० लाहौर
"बूझत लाल कहा कीनो।
चूमति चांपि उर लावति सकल कला जु प्रवीनों।
कमलदल अंगुरी दल ऊपर गोवर्द्धन कैसे कै लीनो।"
गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी-पदावली, पृ० ३९ ब्रजभूषण शर्मा आदि सं० २००९ कांकरौली

चले जाते हैं नंद अकेले व्रज लौट आते हैं। यशोदा के क्षोभ की सीमा नहीं रहती। वह प्रेम की अतिशयता में नन्द को भी बुरा-भला कहती है। मातृ-हृदय की भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण इन कृष्ण-कवियों ने किया है। पथिक द्वारा भेजे गए संदेश में उसकी दीनता मुखर हो उठती है[1]। कृष्ण की दिनचर्या का स्मरण कर उनकी अन्यतम प्रियवस्तु माखन को देखकर उनका सारा संयम और धैर्य विगलित हो जाता है। उनके सरल हृदय को प्रतीति है कि उनके श्याम को माखन जितना प्रिय है उतना राजभोग नहीं होगा[2]।

संयोगकाल में राधा तथा गोपीगण कृष्ण के साथ क्रीड़ा करती हैं। इन कृष्ण भक्तों की गोपियों का कृष्ण से प्रेम केवल विलासिनी का विलास नहीं है प्रत्युत् वह बाल्यकाल के सहवास से पुष्ट हुआ है। नटवर नागर, रसेश्वर, नवीन लीलाएँ करते हैं, कहीं गोपी गण का चीरहरण करते, कहीं दान माँगते है और कभी उनका माखन खाकर, दही फैलाकर गागर फोड़ देते हैं। उनकी रसमयी लीला से आह्लादित गोपी यशोदा को उपालम्भ देकर भी पति-भाव से कृष्ण को पाने के लिए पूजा और उपासना करती हैं[3]। सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर उनका प्रेम पुष्पित होता रहता है। श्यामसुन्दर की जो जिस भाव से उपासना करता है उसी भाव से वह उसकी कामना पूर्ण करते हैं[4]। अतः यमुना के पुलिन पर कृष्ण शरद की रजनी की धवल शीतल ज्योत्स्ना में रम्य रास रचते हैं। मुरली की ध्वनि सुनकर आर्य-पन्थ का परित्याग कर, गृह मर्यादा को ठुकरा कर गोपीगण

"आधे आधे वचन सुहावने लाल सुनत जननी मन मोद
मुख चूमत स्तन-पान दै हो लाल लै बैठारति गोद।
काजर लोचन आंजिकै हो लाल भौंह मटुका दै बैठि।
अपनो लाल काहू को देखन न दैहों जिनि कोऊ लावौ डीठि।
गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी (पदावली) पृ० ६

१. "जुग जननी जगद विदित, सूर प्रभु हम हरि की है धाइ।
कृपा करहु पठवहु यहि नातै, जीवे दरसन पाइ॥"
सूर—सूरसागर, पृ० ३१७८।३७९६: द्वितीय खण्ड

२. "खान पान परिधान राजसुख कोऊ कोट लड़ावै।
तदपि सूर मेरो बाल कन्हैया माखन ही सचु पावै॥"
सूर—सूरसागर, पृ० ३१७९।३७९७

३. "हमको देहु कृष्ण पति ईश्वर और नहीं मन आन।
मनसा बाचा कर्म हमारे सूर स्याम को ध्यान॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ५२६, ७८२।१४००

४. "व्रत पूरन कियौ नन्द कुमारा, जुवतिनि के मेटे जंजारा।
जप तप करि तनु जिनि गारौ, तुम घरनी मैं कंत तुम्हारौ॥'
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ५३३, ७९७।१४१५

प्रेम में मतवाली हो जाती हैं। नारी का यह रूप सामान्य नारी के पक्ष में घटित होता है।

प्रेम के विभिन्न रूपों में नायिका-भेद

इन भक्त कवियों ने दिव्य शृंगार के अन्तर्गत विभिन्न नायिकाओं का चित्रण किया है। यद्यपि अपने उत्तरवर्ती रीति-कवियों के समान उन्होंने नायिकाओं के लक्षण और उदाहरणों से पूर्ण काव्य रचना नहीं की, तथापि इनके काव्य में नायिकाओं के विविध भेद स्पष्ट हैं। राधा मानिनी स्वकीया है[1], उनमें परिणीता का गौरव एवम् पत्नी की गरिमा है। अपने अलौकिक सौन्दर्य से उन्होंने नटनागर को पूर्णरूप से वश में कर लिया है, परन्तु कृष्ण के बहुनायकत्व के कारण मान के अवसर प्रायः आते हैं। पहले तो उनकी धारणा का आधार सन्देह ही होता है, पर जब कृष्ण की मधुपवृत्ति को वह अपने नयनों से देख लेती है तब पहले परिहास, पुनः रुदन और मान में उनका दुख प्रकट होता है[2]। इन भक्तों को मधुर रस के अन्तर्गत 'खण्डिता' का रूप बहुत प्रिय है। अष्टछाप के कवियों ने राधा तथा गोपियों को 'वासक-सज्जा', 'अभिसारिका', 'खण्डिता', 'स्वाधीन-पतिका', 'संभोग-सुख-हर्षिता', एवम् 'मानिनी', 'प्रवत्स्य-पतिका', 'आगतपतिका आदि के रूप में अंकित किया है। प्रिय संग अभिसार कर लौटती हुई राधा रानी के संयोग से मलिन सौन्दर्य का चित्रण इन सभी कृष्णभक्त कवियों ने किया है[3]। मिलन का स्थूल

---

१. "तेरे सुहाग की महिमा मो पै वरनि न जाई।
मदन-मोहन पिय वे बहु-नाइक ताको मन लियौ रिझाई।
कबरी गुहत अपने कर लिखत तिलक भाल, रस भरे रसिक राई॥"
गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी पदावली, पृ० ४६२, सं० २००६ कांकरौली

"मोहन मोहिनि अंग सिंगारत।
बेनी ललित ललित कर गूँथत, सुन्दर मांग संवारत॥"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ११२५, पद २६२८।३२४६

"पाछे ललिता आगे स्यामा, आगे पिय फूल बिछावत जात।
कठिन कठिन कलि बीनि करति न्यारी, प्यारी पग गड़िवेंहि डरात।"
× × ×
"सूरदास प्रभु की लख अधीनता देखत मेरे नैन सिरात।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ११२२, पद २२१६।३२३४

२. "बार बार मैं कहति हौं प्रिय तहाँ सिधारौ।
आए हौ मन हरन कौं हरि नाम तिहारौ।
भली बनी छवि आज की क्यों लेत जमुहाई।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ११०३, २५५८।३१७६

३. "आई तू तिलक कूं मिटाये।
रतिरन गोपाल संग नखसर उरलाए।

शृंगार दिव्य शक्ति एवम् कृष्ण का होने के कारण अत्यन्त पवित्र एवम् भक्ति भावना से पूर्ण है। संयोग काल में राधावल्लभ के साथ फाग एवम् जलक्रीड़ा आदि करने वाली गोपियाँ तथा राधारानी आनन्दथकित रहती हैं। संयोग के आनन्द के उपरान्त वियोग के दुखमय दिवस आते हैं। प्रेम-विवशा गोपीगण अपने संतापों एवम् दु:ख का कारण समझ कर प्रेम को ही भला बुरा कहती है। दुःख-सुख का आवाहक प्रेम ही है, पर प्रीति करके किसी को भी सुख नहीं मिला। इन गोपियों के अनुसार सुख बलिदान, एवम् प्राणोत्सर्ग की अपेक्षा करता है[1]। प्रेमिका के लिए प्रेमपात्र ही एकमात्र आधार होता है[2]। वियोग काल में रास-रस-माती गोपियों का वेदना-अग्नि में तपा हुआ उज्ज्वल रूप दृष्टिगत होता है। साधारणत: गोपी तथा राधा सामान्य विलास-क्रीड़ा-रत-नारी दृष्टिगत होती है। उनका अलौकिक रूप वासना की प्रखरता में छिप-सा जाता है परन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन कृष्ण-कवियों का उद्देश्य अपनी समस्त भावनाओं एवम् विकारों को भगवान् में ही समाहित कर देना था। इनके द्वारा चित्रित विशेष नारी का भाग्य सुर-ललनाओं के लिये भी काम्य है[3]। कृष्ण तो प्रत्येक व्यक्ति को उसकी भावना के अनुसार ही मिलते हैं। गोपी रूप में भक्तों ने उन्हें पति रूप में पाने के लिए कामना की अत: संयोग सुख में उनकी लालसा पूर्ण हुई। अत: इनके विलास की वासना में अलौकिकता एवम् आध्यात्मिकता है।

कपोलन पर पीक लगी नैन कषाए।
हरि सौं मिलि मदन जीत्यों दांव उपाए।"

कृष्णदास—अष्टछाप पदावली, सोमनाथ गुप्त सम्पादित, पृ० ४, १९४० लाहौर

"प्रिय संग जागी वृषभानु दुलारी।
अंग अंग आलस जंभाति अति, कुंज भवन से भवन सिधारी।"

छीतस्वामी—अष्टछाप, पदावली पृ० २०९

१. "प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ।
प्रीति पतंग करी पावक सो आपै प्रान दह्यौ।
अलिसुत प्रीति करी जलसत सौं संपुट मांझै गह्यौ।
सारंग प्रीति करी जु नाद सौं सम्मुख बान सह्यौ।"

सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० १३७६, ३२८८।३६०६

२. "हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन क्रम वचन नंदनंदन उर यह दृढ़ करि पकरी।"

सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड,

३. "अमर नारि अस्तुति करे भारी।
एक निमिख ब्रजवासिनि कौ सुख नहिं तिहुँ लोक विचारी।"

सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ८११, १६०५।२२२३

नारी-ग्रादर्श (लौकिक)

गोपी-भाव से कुलकानि मिटा कर ग्रार्य-पथ की ग्रवहेलना करने वाले उच्छृङ्खल प्रेम को विशेष नारी के लिए श्रेयस्कर बताते हुए इन कृष्ण-भक्तों ने काव्य के मध्य सामान्य ग्रथवा लौकिक नारी के लिए ग्रादर्श-विधान किया है। इस संसार में जन्म लेकर कुलमर्यादा ग्रौर लोकधर्मपालन ही श्रेयस्कर है। युग की परम्परा के ग्रनुसार कृष्ण-भक्तों ने भी नारी की चरमगति पति ही को बताया। उनके लिए पातिव्रत धर्म ही चारों पदार्थों का ग्रावाहक है[1]। भारतीय परम्परा का ही ग्रनु-मोदन कर यह कवि कहते हैं कि किसी भी ग्रवस्था में पतित्याग करना नारी का धर्म नहीं है। उस नारी को धिक्कार है जो ग्रपने पति का परित्याग करे, किन्तु साथ ही वह पति भी भर्त्सना का पात्र है जो पत्नी का त्याग करे। पति का भी कर्तव्य है कि वह पत्नी का सम्यक् रूप से प्रतिपालन करें, इसके विनिमय में नारी को एकाग्रता ग्रौर एकनिष्ठा से उसकी सेवा ग्रौर उपासना करना वांछित है[2]। नारी के लिए इस संसार-सागर के संवरण का सुगम उपाय पति सेवा ही है। तुलसीदास के समान सूरदास भी रोगी, वृद्ध, मूर्ख, एवम् ग्रभागे पति को ही परमेश्वर मानने को ही मुक्ति का साधन मानते हैं[3]। वास्तव में ग्रपने पति को त्याग कर ग्रन्य से प्रीति करने वाली नारी जीवन-पर्यन्त लोकापवाद ग्रपजस ग्रौर

"झूठी बात कहा मैं जानौ।
जो मोको जैसेहिं भजै री, ताको तैसेहिं मानौ।
तुम तप कियौ मोहिं कौ मन दै मैं हो ग्रन्तरजामी।
जोगी को जोगी ह्वै दरसो कामी को ह्वै कामी।
हमको तुम झूठे करि जानति, तौ काहे तप कीन्हौ।"

सूर—सूरदास प्रथम खण्ड, पृ० ७९९, १५६३।२१८१

१. "नारी पतिव्रत मानै जो कोई, चारि पदारथ पावै सोई।"

सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ५३९, ८००।१४१८

२. "यह युवतिन को धर्म न होई।
धिक सो नारि पुरुष जो त्यागै, धिक सो पति जो त्यागै सोई।
पति को धर्म यही प्रतिपालै, युवती सेवा को धर्म।"

सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६११, १०१५।१६३३

३. "कपट तजि पति पूजा करौ, कहा तुम जिय गुनौ।
कंत मानहु भव तरोगी, ग्रौर नहीं उपाइ।
ताहि तजि क्यों विपिन आइ, कहा पायौ ग्राइ।
बिरध ग्ररु बिनु भागहूं को पतित जौ पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।"

सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, पृ० ६११, १०१६।१६३४

मृत्यु-उपरान्त घोर नरक की भागिनी होती है[1]। इस प्रकार सामान्य नारी के लिए कृष्ण-भक्त-कवि मर्यादा-पालन, पतिव्रत धर्म ही सर्वश्रेष्ठ और श्रेयस्कर बताते हैं। सामान्य नारी के लिए जो अवगुण हैं विशेष के लिए वही गुण।

कृष्ण-काव्यकारों के अनुसार नारी के दो रूप हैं, सामान्य और विशेष। सामान्य नारी के लिए समाज की मान्यताओं का पालन अनिवार्य है। अखण्ड पातिव्रत ही उसकी मुक्ति का साधन है। इस सामान्य रूप में नारी काम-वासना की मूल मानी जाकर भर्त्सना, और तिरस्कार की पात्र रही है। इन कृष्ण काव्य-कारों का नारी-निन्दा का स्वर यदि सन्तों से अधिक नहीं तो समान उग्र तो है ही। कामवासना की मूल प्रेरणा के अतिरिक्त इन भक्तों ने नारी को विश्वास के अयोग्य तथा नृशंस भी बताया है। विशेष नारी परमब्रह्म कृष्ण के साथ गोलोक में नित्य रास में मग्न रहती है। उनकी रागानुगा भक्ति के सिद्धान्तों के अनुसार अपने विशेष रूप में (भक्त रूप) में नारी का सामाजिक बन्धनों एवम् मर्यादाओं को ठुकराना श्रेयस्कर है। पति, पिता, आदि लौकिक सम्बन्धों की मर्यादा उनके लिए छोड़ी हुई केंचुल के समान है। इन कवियों का आलोच्य-जीवन सामन्ती सभ्यता की कृत्रिमताओं से परे ग्राम का स्वच्छन्द जीवन है, जहाँ नारी अन्तःपुर की बन्दिनी न होकर स्वच्छन्द विहंगिनी है। उसे पर्दा अथवा अवगुण्ठन की अपेक्षा नहीं है। सामान्यतः कृष्ण-भक्तों ने नारी का, प्रेयसी-पत्नी आदि विविध रूपों में जो चित्रण किया है, वह सरल शुभ्र, और स्वाभाविक है। यद्यपि कृष्ण के लोकरंजक रसेश्वर स्वरूप को लेकर काव्य रचना करने वाले कवियों से जीवन के सामाजिक पक्ष में आदर्श-विधान की आशा तथा अपेक्षा नहीं की जा सकती, पर इन कवियों ने पति एवम् पत्नी दोनों को अपने कर्तव्यों के समुचित पालन का निर्देश दिया। इनके काव्य ने नारी के धार्मिक तथा आर्थिक अधिकारों के विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। परन्तु भक्ति के क्षेत्र में पुरुष और नारी का भेद-भाव इन्हें मान्य नहीं है। इनके अनुसार शुद्ध-हृदय, तथा भक्ति भाव से जो कोई हरि की उपासना करता है, वह नर अथवा नारी अभय पद का अधिकारी है।

---

१. "तजि भरतार और को भजिए, सो कुलीन नहिं होइ।
मरै नरक, जीवत इस जग में भला कहैं नहिं कोइ॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६११, १०१७।१६३५

: ६ :

रीति-काव्य में नारी

रीति-शब्द का हिन्दी में प्रयोग संस्कृत से पृथक अर्थ में होता है। यहाँ जिस पुस्तक में रचना सम्बन्धी नियमों का विधान किया गया हो, तथा जो काव्य इन नियमों पर परिचालित होकर, अभ्यन्तर से वाह्य, भाव-पक्ष से कला-पक्ष पर अधिक बल देता हो, रीतिकाव्य के नाम से अभिहित होता है। आलोच्य-काल के उत्तरार्द्ध में रीतिबद्ध और रीतिमुक्त रचनाओं की अनवरत परम्परा चल पड़ी। इस काल में यद्यपि अन्य विषयों पर भी काव्य रचना होती रही, किन्तु प्राधान्य शृंगार-रस-विषयक कविताओं का ही रहा। इस समय के समाज में मुगलशासकों के शासन-काल में शृंगार का मदमत्त प्रवाह बह रहा था। काम-कादम्ब एवम् कामिनी की एकनिष्ठ उपासना हो रही थी। कृष्ण-काव्य के कृष्ण और राधा का शृंगारमय रूप भक्ति का अंचल त्याग, आध्यात्मिकता को बहिष्कृत कर, नग्न शृंगार का रूप ले रहा था। कृष्ण और राधा ब्रह्म और उनकी शक्ति के प्रतीक होते हुए भी सामान्य नायक नायिका मात्र रह गए थे। वैभव और विलास के इस वातावरण में, राज्याश्रय में रहने वाले कवियों ने शृंगार रस के अंग-उपांगों पर काव्य रचना की और हिन्दी साहित्य के नायिकाभेदोपकथन को पुष्ट किया।

रीति-काव्य की पृष्ठभूमि

मानव की आदि प्रवृत्तियां शृंगार और प्रेम ही रीतिकाव्य का आधार हैं। साहित्य में सदा ही शृंगार रस का अस्तित्व रहा है। संस्कृत के महाकाव्यों में भी शृंगार का मदिर विलास उपलब्ध है। हिन्दी साहित्य को शृंगार एवम् रीति-साहित्य की प्रेरणा संस्कृत से ही मिली। संस्कृत साहित्य में प्रथमतः दो धाराएँ थीं। एक आध्यात्मिकता को प्रधानता देती थी, दूसरी कर्मकाण्ड पर अधिक बल देती थी। विक्रम संवत् के प्रारम्भ काल में आभीरों के सम्पर्क से ऐहिकता-परक साहित्य की रचना होने लगी। प्राकृत में दैनिक जीवन के हास-रस-विलास से सम्बन्धित सतसई की रचना हुई। गोवर्द्धनाचार्य और अमरुक ने इसी के अनुकरण पर आर्या सप्तशती और अमरुक शतक में नागरिक स्त्रियों की शृंगारिक चेष्टाओं एवम् ग्राम-वधुओं की रसमयी उक्तियों का वर्णन किया है। संस्कृत के भक्ति-साहित्य में शृंगार और भक्ति की परम्परा समानान्तर चल रही थी। स्तोत्रादि तथा वन्दना के पदों में शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण का शृंगार एवम् नख-शिख वर्णन भी हो रहा था। कामशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना पहले ही हो चुकी थी।

उसकी भोग-प्रधान परम्परा ने नख-शिख वर्णन तथा नायिकाभेद-निरूपण की प्रणाली को एक व्यवस्थित रूप दिया। श्रृंगारिकता की इस धारा को मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क से भी बल मिला। पुष्टि-मार्ग के सिद्धांतों के अनुसार धर्म के क्षेत्र में लौकिकता एवम् वैभव का समावेश हो गया था। पुष्टि शब्द का इच्छानुकूल अर्थ लगाकर धार्मिक सम्प्रदायों में भक्ति विकार-ग्रस्त हो गयी थी। भक्तिकाल में ही कृष्ण और राधा के श्रृंगार में दिव्यता और अलौकिकता के स्थान पर विलासिता का प्राधान्य हो गया था। कालान्तर में वैष्णव भक्तों की इस रागानुगा भक्ति एवम् प्रेम-लीला का पर्यवसान रीतिकाव्य के उन्मुक्त श्रृंगार में हो गया। श्रृंगार एवम् विलास के चटकीले चित्र अंकित करने वाले रीति-काव्यकारों ने कृष्ण-राधा-भक्ति को ही अपना आदर्श माना। नायक नायिकाओं की विलास-वासनामयी क्रीड़ा पर कृष्ण एवम् राधा की केलि का आरोप किया गया।

रीति-काव्य में दो प्रकार के कवियों की कृतियां उपलब्ध हैं—परम्परा में बद्ध रीति-निर्वाह करने वाले रीतिबद्ध कवि और रीतिमुक्त कवि। यह रीतिमुक्त कवि प्रेम की विविध आभ्यान्तरिक दशाओं के अभिव्यंजक, विरह-मिलन की स्थितियों के सफल चित्रकार एवम् भाव-मर्मज्ञ कवि हैं। इन रीतिमुक्त कवियों का प्रेम उत्सर्ग और त्याग की भित्ति पर आधारित है। भाषा और भाव पर अधिकार रखने वाले यह रस-सिद्ध-कवीश्वर केवल नरपतियों के चाटुकार मात्र नहीं हैं। रीतिबद्ध कवि आचार्य कहलाने की स्पृहा करते थे। उनका उद्देश्य काव्य-रचना के साथ पाण्डित्य-प्रदर्शन का भी था, अतः वह कलापक्ष की ओर अधिक सतर्क रहे। इनका प्रेम भी परम्परा में बद्ध रहा और वे केवल उसके वाह्य रूप की ही अभिव्यंजना करने में समर्थ हो सके[1]। प्रेम और श्रृंगार वर्णन में भी अलंकार वर्णन, रस-निरूपण, नायिका-भेद निर्देश करने का लोभ संवरण न कर सके। मुगल साम्राज्य के शासनकाल में समाज में भी वैभव और विलास का एकाधिपत्य था। जैसा कि द्वितीय अध्याय में बताया जा चुका है कि सामन्तवाद की जर्जर आधार-भूमि पर स्थित समाज का कोई आदर्श न था। राजा और सामन्त, धनिक और निर्धन विलास की मदमत्त छाया में लीन थे। इन राज्याश्रित कवियों के प्रभु विलास और वैभव की अतिरंजित छाया में मधुबाला के करों से मधुपान करते। ऐसी परिस्थिति में श्रृंगार रस प्रधान काव्य की रचना अत्यन्त स्वाभाविक थी।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

विलास का असंतुलित रूप रीति-काव्य के जीवन-दर्शन को धूमाच्छन्न किए है। कर्मण्यता और संघर्ष के अभाव में उसमें रूढ़िवादिता और संकीर्णता है।

---

१. "सहेट की लुका छिपी की लीलाएँ, गुप्ता की गोपन विधियाँ, विदग्धा के विदग्धालाप, अभिसारिका की साज-सज्जा, छल-कपट से भरे खिलवाड़ में ही मनोरंजन की सामग्री विशेष खोजी है।"

विश्वनाथ प्रसाद—घनआनन्द की भूमिका पृ० ३१, सं० २००९ काशी

विलासप्रधान सामन्ती-परम्परा में पनपे हुए जीवनदर्शन में व्यापकता न होकर विलासिता, रसिकता एवम् कामुकता का दृष्टिविन्दु प्रधान है। विषमताओं के कठोर यथार्थ से निष्कृति पाकर कवियों ने नारी के स्निग्ध अंचल की छाया में दुख एवम् निराशा का परिहार किया, अतः उनके काव्य में विलास की उत्कट तीक्ष्ण गन्ध, अतृप्त पिपासा, दुर्दम्य वासना विद्यमान है[1]। भावों की नवीनता, अभिव्यक्ति की मौलिकता, आदर्श की प्रांजलता तथा जीवन-शक्ति का अभाव है। इस इस्लामी सामन्ती आदर्शों पर स्थित समाज में व्यक्ति की कोई सत्ता न थी, उसकी इच्छाओं तथा अभिलाषाओं की व्यंजना का कोई प्रश्न ही न था। अतः रीति-काव्य विलासरत-वर्ग के भावों की प्रतिध्वनि है। समाज में अभ्यन्तर की अपेक्षा वाह्य को प्रधानता दी जाती थी। काव्य में भी भौतिक हित और सुखोपभोग ही जीवन का उद्देश्य माना गया। इन जीवन की यथार्थता से पलायन करने वाले कवियों का जीवन वैभवपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ था। एक एक दोहे पर सहस्रों मुद्राएँ पाने वाले इन कवियों का अभाव और न्यूनता, दैन्य एवम् वेदना से कोई परिचय ही न था। जीवन के स्थायी आदर्शों के अभाव में विलास एवम् ललित-कलाओं के रस में अपने को लीन कर देना ही उनका साध्य रहा[2]।

विलास एवम् वासना-प्रधान काव्य रचना करने पर भी इन शृंगारी कवियों को राधाकृष्ण से असीम अनुराग रहा। बिहारी तीर्थाटन आदि वाह्याचारों को निरर्थक बताकर राधाकृष्ण की देह द्युति से अनुराग करने का निर्देश देते हैं[3]। मतिराम जैसे शृंगारी कवि नायिकाओं की रसमयी क्रीड़ा, रति-विलास में राधा-कृष्ण और कृष्ण-गोपी-प्रेम ही देखते हैं। राधाकृष्ण का रसपूर्ण स्नेह जिसको सुखकर न प्रतीत होता हो, उसके नयनों में वह सहस्रों मुट्ठी धूल डालने को

---

१. "पियत रहत पियनैन यह तेरी मृदु मुस्कानि।
तऊ न होत मयंकमुखी तनक प्यास की हानि॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली : कृष्णबिहारी—पृ० ४०४, सं० १९१४
द्वि० सं० लखनऊ

२. "तन्त्री-नाद कवित्त रस सरस रास रतिरंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर : रत्नाकर सम्पादित : पृ० ४४, दो० ९५,
१९८३ वि० लखनऊ

३. "तजि तीरथ हरि राधिका तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रजकेलि निकुंज मग पग पग होत प्रयागु॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, (रत्नाकर) पृ० ८६, दो० २०१

प्रस्तुत हैं[१]। रीति-काव्य की कृष्ण-भक्ति, युग का विलास-प्रधान मनोवृत्ति के प्रभाव से सामान्य शृंगार में परिणत हो गई। राजाश्रय में रहनेवाले इन कवियों में यदि किसी की आकांक्षा सरल सात्विक जीवन व्यतीत करने की रही[२], तो भी अपने आश्रयदाता के प्रसादन के लिए उनकी भोग-प्रधान प्रवृत्ति को तुष्ट करने के लिए अपनी भावनाओं को संयमित कर उन्हें विलास एवम् शृंगार की फुलझड़ी छुटानी ही पड़ी। ऐसी प्रवृति तो अपवाद ही है, वैसे सामान्यतः सभी कवि विलास एवम् वैभव की स्वर्णिम आभा, शृंगार-पूर्ण चित्रों के अंकन के अनुरागी हैं। कवि की बहुदर्शिनी प्रतिभा, चित्रात्मक कला, सूक्ष्म निरूपण-कर्त्री कल्पना केलि-भवन, नारी-नखशिख चित्रण में ही केन्द्रित हो गई। इन कवियों के अस्वस्थ जीवन-दर्शन, उपभोग-प्रधान दृष्टिविन्दु के कारण आलोच्य रीति-काव्य उदात्त भावनाओं का परिचायक, मानव-जीवन की विभिन्न दशाओं का अभिव्यंजक नहीं हो सका। इन कवियों के अनुसार जीवन कर्तव्य की उच्चभूमि, सत्कर्मों की रंगस्थली, उत्सर्ग का प्रारम्भ न होकर विलास का नन्दन-कानन, कल्पना का मधुमय विहान है। उनके विश्व में वास्तविक दुख, वेदना और पीड़ा को स्थान नहीं है। सुख-दुख हर्ष-विषाद, वेदना-अनुभूति कल्पनात्मक एवम् अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। धन के द्वारा सुलभ सौख्य और सुविधाएँ, कृत्रिम जीवन, पुरुषार्थ-विहीन आनन्द उनका काम्य है। तत्कालीन समाज में नैतिकता का कोई महत्व न था। अतः उस बाधाबन्ध विहीन समाज में पोषित कवियों के लिए भी नैतिक मान उपेक्षणीय हैं। वासना के दुर्दान्त विलास, उपभोग की उत्कट लालसा की पूर्ति के लिए राधाकृष्ण के प्रेम की आड़ है, साथ ही चारित्रिक पतन को कवि यौवन काल की भूल मानकर क्षम्य और महत्त्वहीन मानता है[३]। सामान्यतः जीवन के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण रसिकता का है। सुख और विलास का उपभोग तथा रमणी के साथ केलि ही उनका साध्य और काम्य है[४]।

१. "राधा मोहन लाल को जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिनि खेह॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली : सतसई : पृ० ४४३, द्वि० सं०

२. "पट पाँखै भखु काँकरैं, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं एकै तुँही विहंग॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर : रत्नाकर : पृ० २५६, दो० ६१६

३. "इक भीजैं चहलै परैं, बूड़ैं बहैं हजार।
कितै न अवगुन जग करैं, वै-नै चढ़ती बार॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १६१, दो० ४६१, १६८३ प्र० सं० लखनऊ

४. "तिय-तिथि-तरुन किशोर-वय पुन्यकाल सम दोनु।
काहू पुन्यनु पाइयतु वैस-सन्धि-संक्रोनु॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ११५, दो० २७४

ति-कवि और नारी

रीति-युग श्रृंगार एवम् वैभव के निर्बाध विलास का युग था। युग की प्रमुख
ृत्ति श्रृंगार और विलासिता की थी। वैभव के योग, उससे उपलब्ध साधनों से
गैषणा, विलास कामना को प्रोत्साहन मिला। इस श्रृंगारिकता का केन्द्र नारी
', अतः काव्य में भी नारी-रूप की प्रधानता है। इन सभी कवियों ने अपने काव्य
महाशक्ति राधा की ही वन्दना की है। बिहारी, कृष्ण को प्रमुदित करने वाली
धा नागरी से ही अपनी भौतिक विपत्तियों के निवारण की विनय करते हैं[1]।
राधाकृष्ण के जगतवंद्य युग-चरणों की वन्दना करते हुए, उनके रति-श्रृंगार
मूर्तिमान सच्चिदानन्द स्वरूप की प्रार्थना करते हैं[2]। मतिराम कृष्ण के हृदय-
धि को उल्लसित करने वाले राधा के मुख-चन्द्र से ही अपने अज्ञान-तम के
वारण की आशा करते हैं[3]। इन कवियों ने नारी को आलंबन मानकर रसराज
ंगार के सभी अंग-उपांगों पर काव्य प्रणयन किया है। नारी के भुवन-विमोहक
न्दर्य का अंकन, उसके मनोविज्ञान का निरूपण, श्रृंगार-सज्जा का विस्तृत वर्णन
कवि का कार्य रहा है। इन रीति-कवियों के लिए नारी वासना का उपकरण
ने के कारण त्याज्य न होकर अत्यावश्यक है। अग्निशिखा के समान ज्वलन्त
प वाली नारी के आलिंगन से उनके उर को गुलाब-जल सी शीतलता मिलती
[4]। हास्योज्वल बाला के मुख से उन्हें फूल बरसते प्रतीत होते हैं[5]। विश्व की
धुरिमा की केन्द्र नारी जब तक बोलती नहीं है, तभी तक ऊख, अमृत, शहद,
धुर प्रतीत होता है, पुनः उसकी वाणी के मधुर रस के समक्ष सब रसहीन हो

---

१. "मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई पड़े श्याम हरित दुति होइ।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १, दो० १

२. "राधाकृष्ण किशोर जुग पग बंदौ जगवंद्य।
मूरति रति-श्रृंगार की शुद्ध सच्चिदानन्द।।"
देव—भावविलास, स० १९९३ प्र० सं० काशी, पृ० १

३. "मो मन तम तोमहि हरौं, राधा को मुखचन्द।
बढ़ै जाहि लखि सिन्धु लौं, नन्द नन्दन आनन्द।।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली (कृष्णबिहारी) द्वि० सं० लखनऊ

४. "ज्यौं-ज्यौं पावक लपट सी, पिय हिय सौं लपटाति।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब सौं, छतिया अति सियराति।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १४७, ३५४ दो०

५. "हँसत बाल के बदन में यों छवि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तें झरत चमेली-फूल।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४०३, द्वि० सं० लखनऊ

जाते हैं[१]। उसकी प्रेयसी के तीक्ष्ण कटाक्ष हृदय म गड़ जाते हैं[२]। उसके शोभा-पुंज गौर आनन पर विकसित मृदु मुसकान रस का प्रवाह बहा देती है[३]। नारी इन कवियों के लिए प्रलोभन, प्रेम और उपभोग की वस्तु है। उसके अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य ने कवि की कल्पना और भावना को मोहाभिभूत कर लिया है। रीति-कवि नारी के भावगत सौन्दर्य, जीवन के विविध पक्षों में उसके नारीत्व की मनोहर व्यंजना नहीं दिखा सके, प्रत्युत् नारी का सौंदर्य, उसका आकर्षण उनके लिए मोह, आनंद और रसिकता का विषय रहा। नारी के निर्बन्ध केश कवि को संसार बन्धनों से विमुक्त करते हे और नील छविमान केशों की वेणी के साथ ही उसका मन बंध जाता है[४]। सुन्दर-पुष्प-सुगन्ध से परिपूर्ण बंधुजीव पुष्प के सहोदर नारी के अधर प्रियतम के प्राणों के बंधन हैं[५]।

नारी ही आलोच्य रीतिकाव्य में कवि की समस्त भावनाओं की केन्द्र है। परन्तु इन रीतिकवियों, केशव (१५५५ ई०) १६१२ सं०, बिहारी (१६०३ ई०) १६६० सं०, देव (१६७३ ई०) १७३० सं०, घनानंद (१७०७ ई०) १७६४ सं०, सेनापति (१५८९ ई०) १६४६ सं०, मतिराम (१६१७ ई०) १६७४ सं०, आदि को नारी का केवल कामिनी रूप ही काम्य था। नारी के रूप-चित्रण में उनकी सूक्ष्मदर्शिनी कल्पना, वर्णनात्मक प्रतिभा और रसपूर्ण दृष्टि उसके शरीर की मांसलता और कमनीयता पर ही फिसल गई। उसके अभ्यन्तर तक पहुंचने में में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। 'सतरौही भौंहें', 'अलसौहीं चितवन', 'तन की खरी निकाई' ही उसके वर्णन का विषय बन सकी। नारी-जीवन के अन्य महत्व-पूर्ण, सत् कल्याणपूर्ण पक्षों का परित्याग करवा सना की भूमि में ही उसकी रति-

---

१. "छिनकु छबीले लाल वह, नहि जौं लगि वतराति।
ऊख, महूष, पियूष की तौ लगि भूख न जाति ।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २०७, दो० ५०४

२. "सेनापति प्यारी तेरे तम से तरलतारे।
तिरछे कटाछ गड़ि छाती मैं रहत हैं।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० ३३, क० ४

३. "छवि को सदनु गोरो बदन रुचिर भाल
रस निचुरत मीठी मृदु मुस्क्यानि तें।"
घनानन्द—घनानन्द, : विश्वनाथप्रसाद : पृ० ५८५, सं० २००६ बनारस

४. "छुटैं छुटावत जगत तैं सटकारे सुकुमार।
मनु बांधत बेनी बंधे नील छबीले बार।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर पृ० २३६, दो० ५०३

५. "सुधा मधुर तेरौ अधर सुंदर सुमन सुगंध।
पीव जीव को बंध यह बंध-जीव को बन्ध।।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली पृ० १०७

प्रगल्भता दिखाने, अभिसार तथा प्रेमक्रीड़ा-कथन, विरहवेदना से कमल के पत्तों को पापड़ बना देने के ऊहात्मक चित्रण तक ही यह कवि सीमित रहे। इस वर्णन की पृष्ठभूमि पर नारी कुछ अपवादों को छोड़ कर—गौरवशालिनी पत्नी और सहधर्मिणी के रूप में न आकर नायिका की क्षुद्र सीमा में बंध जाती है। कर्तव्य की उच्चभूमि में प्रवेश उसके लिए वर्जित-सा है। जीवन और संसार की गम्भीर समस्याओं का उसके लिए कोई महत्व नहीं है। शृंगार रसमयी क्रीड़ा करना, नित नूतन प्रसाधन कर पुरुष को विमोहित करना ही उसका एकमात्र कर्तव्य है। पुरुष के प्रसादन हेतु कार्य करती हुई नारी में पतिव्रता की सात्विकता न होकर विलासिनी का निर्वसन विलास और निर्लज्ज विहार स्पष्ट है[1]। यह नारी शक्तिमती दुर्गा, जौहर की ज्वाला में अग्नि-पुष्प बन जाने वाली वीर नारी, पतिसंग बन में भी सुखानुभव करने वाली पतिव्रता नहीं है, प्रत्युत् सुकुमारी कामिनी है।

सामन्ती-व्यवस्था में सुकुमारता और कमनीयता ही उसका गुण माना गया है। दैन्य एवम् विषाद की छाया से परे रहने वाली नारी शोभा का भार संभालने में ही असमर्थ है, भूषण तो उसे भार ही है[2]। गुलाब के पुष्पों द्वारा सज्जित शैया पर भी उसे खरोंच लगने की शंका सखियों को रहती है। उसका समस्त लावण्य एवम् सौंदर्य पुरुष को वशीभूत करने का साधन है। इन कवियों के नारी-चित्रण में गम्भीरता तथा गृहिणीत्व की गरिमा नहीं है प्रत्युत् क्रीड़ा और आमोद की भावना है। नारी का दुख असीम हो उठता है, किन्तु सहेट के नष्ट हो जाने पर, कपास के वृक्ष उखाड़ते समय उसे वृद्धावस्था के सूचक श्वेत केशों के बीनने की पीड़ा होती है[3]। उसके प्राणोत्सर्ग की वेला प्रियतम के परदेशगमन समय आती है। नारीत्व की मर्यादा, गरिमा को ठुकरा कर नैतिकता के बन्धनों को विच्छिन्न कर वह नयन कटाक्षों से नागर पुरुषों का अहेर करने में ही महत्ता समझती है। वास्तव में रीति-काव्य में पुरुषों का ही कार्य-क्षेत्र विलास की क्षुद्र सीमा में बद्ध हो गया।

---

१. "भौंह उचै आँचरु उलटि मौरि मुख मौरि।
नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सों जोरि॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १०१, दो० २४२

२. "भूषन भार संभारिहैं क्यों यहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न घर परै, शोभा ही के भार॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १३५, दो० ३२२

३. "सूखी सुता पटेल की सूखी ऊखन पेखि।
अब फूली-फूली फिरै फूली अरहर देखि।"
मतिराम—मतिराम ग्रंथावली, पृ० ४५० दो० ६७, द्वि० सं०
"फिरि फिरि बिलखी ह्वै लखति फिरि फिरि लेत उसासु।
साँई! सिर कच सेत लौं बीत्यौं चुनति कपासु॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ६७, दो० १३८

'चोवा चन्दन' और घनसार से सुरभित वातावरण में कृत्रिम साधनों द्वारा ऋतु-परिवर्तन पर विजय पा लेने वाले पुरुष का ही कोई महत् उद्देश्य नहीं दृष्टिगत होता है। पुन: नारी के व्यक्तित्व का निर्माण इसी विलास-पंकिल वातावरण में होता है, जहां उसे शिक्षा मिलती है पति के आज्ञापालन की, पुरुष की इच्छा के समक्ष अपना अस्तित्व मिटा देने की। अत: मदिरा की मादकता में लीन पुरुष के प्रसादन के लिए उसका नैतिक-बाधा-बन्ध हीन रूप ही स्वाभाविक है। आचार्यत्व की स्पृहा करने वाले, अलंकार-चमत्कार दिखलाने में पटु इन कवियों के श्लेष वर्णन में नारी भी क्रीड़ा और कौतुक की सामग्री बन गई। श्लेष-वर्णन-पटु कवि सेनापति कभी वर नारी को 'मदन की वारी[1]', 'काम की तलवार', 'शमादान', 'फूलदान', 'रागमाला', महाभारत की सेना' आदि बनाते हैं और कभी नारी को केवल श्लेष-चमत्कार के लिए बांट और कांटे में डाल कर, सुवर्ण की मुहर के साथ उपमा देकर उसे परिहासास्पद बना देते हैं[2]।

रीति-काव्य में नायिका-भेद

प्रथमतः नाट्यशास्त्र के आचार्य अपने पात्रों के शील-मर्यादादि के निर्वाह के लिए नायक-नायिकाओं का वर्गीकरण कर उसके भेद-उपभेदों का वर्णन करते थे। रस की प्रतिष्ठा के उपरांत शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका को अधिक महत्व मिला। सर्वप्रथम भरत ने नायिका-भेद का निरूपण किया। उन्होंने प्रकृति अनुसार तीन, अवस्थानुसार आठ तथा कर्मानुसार तीन भेद किए। धनंजय ने धीरादि भेदों की उद्भावना कर नायिका-भेदोपकथन को पूर्ण किया। हिन्दी में रीतिकाल में शृंगार-रस का निरूपण नायिका भेद के ही अंतर्गत हुआ। नायिका-भेद में नारी-सौंदर्य, शृंगार के उद्दीपन-पक्ष, ऋतु-वर्णन पर कवियों ने ग्रन्थ के ग्रन्थ रच डाले। नारी के समस्त क्रिया-कलाप, उसकी विभिन्न मनोदशाओं, प्रवृत्तियों के चित्रण के लिए नायिकाभेदोपकथन में निर्दिष्ट वर्गों में पांच वर्ग प्रमुख हैं:--

(१) जाति अनुसार (चार भेद)—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी
(२) धर्मानुसार (तीन भेद) —स्वकीया, परकीया, सामान्या
(३) दशानुसार —गर्विता, अन्य संभोग दुखिता, मानवती
(४) गुणानुसार --उत्तमा, मध्यमा, अधमा

---

१. "सोभा सब जोबन की निधि है मृदुलता की
राजै नवनारी मानौ मदन की बारी है।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर (उमाशंकर शुक्ल) पृ० ५-६
पहली तरंग : १९४८ तृ० सं० प्रयाग

२. "धनी के पधारे बाँट काँटेहू मे पाउं धरि
यह वर नारी सुवरन की मुहर-सी।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर पृ० ५, कवित्त १४

(५) अवस्थानुसार (दश भेद) —स्वाधीन-पतिका, वासक-सज्जा, उत्कंठिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खंडिता, कलहांतरिता, प्रवत्स्य-प्रेयसी, प्रोषित-पतिका, आगतपतिका।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नायिकाभेद की परम्परा भक्त-कवियों में भी मिलती है। परन्तु भक्तों का शृंगार दिव्य और अलौकिक है, जबकि इन रीतिकवियों का शृंगार लौकिक एवम् ऐहिकतापरक है। इसमें काव्य-शास्त्र और तंत्रों की परम्परा का भी योग हो गया है। अतः उसमें नारी शृंगार के एक उपकरण के रूप में ही प्रस्तुत हुई। मतिराम के अनुसार नायिका को वही है जिसके दर्शन-मात्र से हृदय में शृंगार रस का उद्रेक हो। नायिका को सभी कवियों ने सौन्दर्य, सुकुमारता, कमनीयता का केन्द्र माना है। उसके अलस नयनों में विलास की सरसता है। उसके सौन्दर्य की विशेषता तो यही है कि जितना ही उसे समीप से देखे उसकी शोभा विकसित होती जाती प्रतीत हो[1]। स्वकीया नायिका पति-व्रता की परिभाषा में आ जाती है। आपत्ति एवम् सुख, हर्ष-विषाद के अवसर पर वह सम भाव से प्रिय-पति में अनुरक्ति रखती है[2]। युग की प्रवृत्ति तथा विशृंखल नैतिकता के कारण परकीया रूप वर्णन की प्रधानता होने पर भी स्वकीया का उच्चादर्श, इन कवियों के लिए श्लाघ्य है। स्वकीया स्वाधीनपतिका प्रियतम की अनन्य प्रियतमा है। अपने रूप गुण एवम् शील से उसने प्रिय को पूर्णरूपेण वश में कर लिया है। पति अ[illegible]ही उस[illegible] है। वेणी गूँथ, वस्त्राभूषण पहना कर अपने ही करों से उसके भाल पर बिन्दी लगाकर पैरों को आलक्त-रंजित करता है। कहीं नायिका प्रिय द्वारा शृंगार सज्जा से सज्जित होकर लज्जारुण हो जाती है कि गृह-परिजन क्या कहेंगे? परन्तु प्रियतम का अनुराग पाकर उसमें गौरव एवम् अभिमान की भावना आ जाती है। प्रिय के हस्त से लगाए हुए, सात्विक के कारण तिरछे हो गए तिलक को दिखाती नायिका इतराती हुई सी घूमती है[3]। सामान्यतः स्वकीया नायिका पति की इच्छा को ही प्रधान मानकर

---

१. "कुन्दनु को रंग फीको पड़ो, झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आंखिन में अलसानि चितौन में मंजु विलासन की सरसाई॥"

× × ×

"ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकसै निकाई।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० २७४, द्वि० सं०

२. "सम्पत्ति विपत्ति जो भरतहूँ सदा एक अनुहारि।
ताहि सुकीया जानिए, मन क्रम वच विचारि॥"
केशव—केशव ग्रन्थावली, विश्वनाथप्रसाद, पृ० ८, १९५४ इलाहाबाद

३. 'आपने हाथ सों देत महावर, आप ही बार सँवारत नीके।
आपुन ही पहिरावत आनिकै हार सँवारि कै मौलसिरी के॥

उसके हित के लिए ही कार्य करती है। स्वकीया नायिका का यह निर्मल उज्ज्वल रूप रीति-काल के वातावरण में भी वासना एवम् विलास की गंध से परे पावन और महान है। उसमें पति के प्रति उत्कट प्रेम और एकनिष्ठ भक्ति है[१]। वह स्वयं वन्ध्या कहलाने के अगौरव को स्वीकार कर अपने पति की मर्यादा की रक्षा करती है[२]। उसकी स्वयं की कोई इच्छा एवम् आकांक्षा नहीं है, पति पर उसे अविचल प्रतीति है कि वह जो करेगा उचित होगा[3]। आगतपतिका के रूप में वह प्रिय आगमन का शुभ संवाद सुनकर करबद्ध सुरों की वन्दना करती है, गुरुजनों के चरणस्पर्श करती है, अपनी मुक्तामाला को तोड़कर शुभ शकुन में मोतियों की चौक पूरती है, तथा प्रियतम पर न्यौछावर करने के लिए भूषण उतार-उतार कर रख देती है। प्रियागमन से नायिका का मुखकमल विकसित हो जाता है[४]। सेनापति की स्वकीया में भारतीय आदर्श के प्रति मोह अधिक है।

हौं सखी लाजन जाति मरी, मतिराम सुभाव कहू कहौ पी के।
लोग मिलैं, घर घैरु करैं, अबहीं ते चेरे भए दुलही के॥"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ३०९

"कियौ जु चिबुक उठाइ कै, कंपित कर भरतार।
टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति टेढ़ैं तिलक लिलार॥"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २१४ दो० ५१८

१. "जानति सौति अनीति हैं, जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज हैं, प्रीतम जानति प्रीति॥"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ५०५

२. "गुरुजन दूजे ब्याह को, प्रतिदिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखै बहू आप बाँझ कहाइ॥"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४४४

३. "तेरे पगन की धूरि मेरे प्रानन की भूरि,
कीजै लाल सोई, नीको जोई जिय जानिए।"

सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० ३९ क० २०

४. "धाई खोरि खोरि से बधाई प्रिय आगमन की,
सुनि कोरि कोरि सुख भावनि भरति है।
मोरि मोरि बदन निहारत विहारभूमि,
घोरि घोरि आनन्द भरी सी उघरति है।"

देव—शब्द रसायन : जानकीनाथ सिंह : पृ० सं० ४२, सं० प्र० सं० २०००

"पिय आगम सरदागमन बिमल बाल-मुख इंदु।
अंग अमल पानिप भयौं, फूले दृग अरबिन्दु॥"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ३१९

प्रिय केशों का शृंगार कर, भाल पर मृगमद का तिलक लगाकर, अधरों को ताम्बूलरंजित कर चरणों में महावर देने को चरण पकड़ता है। पत्नी पति के करों का चुम्बन कर उन्हें आदर भाव से आँखों में लगाकर पति द्वारा पत्नी के चरण छूना अनुचित बताती है[1]।

स्वकीया के आदर्श की प्रांजलता एवम् महानता को स्वीकार करते हुए भी रीति-कवियों ने परकीया के प्रचण्ड वेगवान प्रेम का वर्णन अधिक किया है। उस युग की शिथिल नैतिकता में परकीया-प्रेम के अनियंत्रित प्रवाह को कृष्ण-गोपी प्रेम की आड़ में धार्मिक मान्यता मिली थी[2]। प्रायः सभी कवियों ने नारी के इसी लोक-लाज, कुल-गौरव को तिलांजलि देकर प्रेम के प्रांगण में क्रीड़ा करने वाले रूप का चित्रण किया है। इस परकीया प्रेम में दूती का बहुत महत्व है[3]। इस प्रकार सुस्पष्ट है कि इस काल में कवियों का मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम ही है। उन्होंने नायक नायिका को राधाकृष्ण कहा और राधा-कृष्ण, कृष्ण-गोपी की प्रणयलीला का चित्रण किया है पर इनके राधाकृष्ण भक्ति के नहीं शृंगार और प्रेम के देवता हैं। अतः नारी के प्रेयसी रूप की ही प्रधानता है। प्रेम के क्षेत्र में रीति-काव्य की नायिका संकोच-रहित और ढीठ है। उसमें नारी सुलभ लज्जा और मर्यादा का अभाव है। उप-पति और उप-पत्नी रीति-काव्य में अधिक उपलब्ध है। मर्यादा तथा नैतिकताहीन समाज में पति की उपस्थिति में भी नारी उप-पति की ओर स्नेहपूर्वक देखती है। कभी वह अपने घर की टट्टी चीर कर बाहर खड़े नायक की ओर निर्निमेष नयनों से

---

१. "ह्वैके रस बस दीवै कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आंखिन सौं,
कही प्रानपति यह अनुचित है॥"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, (उमाशंकर शुक्ल) पृ० ४३ क० ३६

२. "अपभ्रंश की पुरानी रचनाओं और देश-गीतों में स्वकीया प्रेम के बड़े मधुर एवम् मर्मस्पर्शी खंडवृत्त दिखाई देते हैं, पर हिंदी में शृंगार की काव्य-धारा भक्ति धारा से फूटी, सीधे लोकधारा से उसका सम्बन्ध नहीं रहा, अतः स्वकीया की प्रीति के रस-सिक्त स्थलों का सन्निवेश उसमें रह न सका, अलौकिक दृष्टि से भक्ति के भीतर जो दाम्पत्य प्रेम रखा गया वह सर्वत्र स्वकीया का प्रेम न रहा, क्योंकि उपास्य और उपासक या आकर्षक और आकृष्ट के रूप की लम्बी-चौड़ी भूमि परकीया-प्रेम के परिष्कार में दिखाई पड़ी।"
विश्वनाथप्रसाद मिश्र—घन-आनन्द : भूमिका : पृ० २५

३. "कालबूत दूती बिना जुरै न और उपाइ।
फिरि ताकैं टारैं बनैं पाकैं प्रेम लदाइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर पृ० १६३, दो० ३६६

देखती रहती है। उस परकीया नायिका के स्नेह के चिकने घड़े पर सखियों के उपदेश का जल ठहरता नहीं है। प्रेम की उद्दामता, प्रचण्डता के समक्ष दुर्जनों की निन्दा, गुरुजनों के कटु शब्दों की चिन्ता नहीं है। वह अपने प्रेमी के लिए इन सबको सहर्ष सहन करती है[1]। यह प्रेम क्रीड़ा केवल राजप्रासादों तक नहीं सीमित है प्रत्युत जीवन की सामान्य भूमि में भी व्यापक है। गृह-कार्य के लिए अग्नि लेने आई नायिका ढीठ होकर नयन मिलाती है, सस्मित मुख से स्नेह का आभास देकर नायक के हृदय में वासना अग्नि प्रज्वलित कर जाती है[2]। उस वातावरण में नेत्र-संचालन, कटाक्ष छोड़ने, काम-क्रीड़ा करने एवम् शृंगार करने से नारी को अवकाश ही नहीं है। नारी कहीं प्रेमगर्विता नायिका के रूप में प्रस्तुत की गई है, तो कहीं रूखी चितवन से मान करती चित्रित की गई है। अपने समस्त रूपों में वह पुरुष की लालसा का साधन ही है।

उसके विरह-वर्णन में भी ऊहात्मकता और अतिशयोक्ति अधिक है, मार्मिकता न्यून। बिहारी की विरहिणी की सखियाँ शीत ऋतु में तो किसी प्रकार निर्वाह कर लेती हैं, परन्तु ग्रीष्म में कैसे निर्वाह होगा[3]। विरह से कृश हुई नायिका निश्वास के वेग से ही छः सात हाथ इधर और छः सात हाथ उधर चली जाती है। पथिक मुख से यह सुनकर कि माघ-मास की भयंकर शीतपूर्ण रात्रि में भी उस ग्राम में लू चलती रहती है पथिक समझ जाता है कि उसकी स्त्री जीवित है[4]। मतिराम की विरहातुरा नायिका के अश्रुओं से ग्रीष्म ऋतु में भी खारे पानी की नदी बहती है[5]। निसशय: रीति-काव्य में स्वकीया रूप में नारी के सात्विक स्वरूप की व्यंजना हुई है, साथ ही प्रेम और शृंगार के विविध क्षेत्रों में नारी मनोविज्ञान का चित्रण स्वा-

---

१. "दुरजन वे निंदित रहै, गुरुजन गारी देत।
सहियत बोल कुबोल ए, लाल तिहारे हेत॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४५२ दो० ८२

२. "नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाइ।
आगि लैन आई हिए मेरे गई लगाइ॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४५६, दो० १२८

३. "आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह-बस सखी सबै ढिग जाति॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ११६, २८३ दो०

४. "सुनत पथिक-मुँहै माह निसि चलति लुवैं उहिं गाम।
बिनु बूझै बिन ही कहैं जियत विचारी बाम॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ १२०, दो० २८५

५. "ग्रीष्महूँ रितु मैं भरी दुहूँ कूल पैराउ।
खारे जल की बहति है नदी तिहारे गाउँ॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४४८, दोहा ६१

भाविक हुआ है। इन रीति-कवियों ने भी यदा-कदा नारी के कर्तव्यरत रूप का आभास दिया है[1]। परन्तु वह अपने को तत्कालीन समाज की इस मनोवृत्ति से निरपेक्ष न रख सके कि नारी विलास की सामग्री है। उन्होंने समाज में नारी की अनैतिक स्थिति उसके अनुचित प्रणय सम्बन्धों पर व्यंग भी किया है[2]। इस युग में नारी भोग इच्छा की तृप्ति का साधन तो थी ही, पुरुष अनेक विवाह करता था। सौतों की डाह, पति-विवाह समय नायिका के उल्लास आदि के वर्णन में स्पष्ट है कि रीति-युग में बहु-विवाह की प्रथा थी[3]। विलास और वैभव प्रधान वातावरण में मदिरा-पान केवल पुरुषों ही में नहीं सीमित था, स्त्रियाँ भी इसका प्रयोग करती थीं[4]। समाज में नैतिकता का आदर्श अमान्य था। नारी कोमलता एमम् सुकुमारता की प्रतिमूर्ति मानी जाती थी। परन्तु वस्तुतः समाज को अब भी नारी का कर्तव्य-रत, पति-सेवा-संलग्न रूप काम्य था, तभी उन सभी कवियों ने स्वकीया को ही श्रेष्ठ बताया है। यद्यपि सामान्या के रूप में वेश्या का भी वर्णन हुआ है पर उसकी धन-लोलुपता आदि अवगुणों का भी कथन कर दिया गया। इनका स्वकीया का आदर्श नारी के शास्त्रीय आदर्श से समानता रखता है। देव ने स्वकीया में लज्जा, सुशीलता, शील, मृदु भाषण आदि विशेषताओं का आरोपण किया है[5]।

---

१. "टटकी धोई धोवती चटकीली मुख जोति।
लसति रसोई की बगर, जगर-मगर दुति होति॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १६७, दो० ४७७

२. "चित्त पितुमारक जोग गुनि, भयौ भये सुत सोग।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझै जारज जोग॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २३६ दो० ५७५

३. "दुसह सौति सालैं, सुहिय गनति न नाथ बियाह।
धरे रूप गुन को गरबु फिरैं अछेह उछाह॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४८, दो० ६००

"सेत सारी ही सौं सब सौतें रंगी स्याम रंग।
सेत सारीं ही सौं स्याम रंगै लाल रंग में॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४०७ दो० २२५

४. बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ७७, दो० १७६

५. "सील भरी बोलत सुसील बानी सबहीं सौं
देव गुरुजननि के लाज सो लची रहै।
कोमल कपोल पर दीसै हरदी सी दुति
चूनी सी सकुचि मुसुकानि में मची रहै।
लालन की लाली अंखियन में दिखाई देत
अन्तर निरन्तर प्रेम सों पची रहे॥"
देव—भावविलास, पृ० ५०, सं० १६६१ प्रयाग

इन रीतिकवियों की नारी-भावना की सबसे बड़ी विचित्रता है कि वह नारी को अत्यावश्यक मानते हैं। अभिनव-यौवन-ज्योति से दीप्त प्रेयसी के शरीर के लिए उनमें अतृप्त पिपासा और तृष्णा है। उसके सौन्दर्य के लिए उनके हृदय में प्रशंसा है, परन्तु इस प्रशंसा का कारण है उसका विलास में उपयोग। इसी अतृप्त-वासना, पिपासा में आकुल कवि को सन्तों के समान नारी की भर्त्सना करते, उसे भव-पथ की छाया-ग्राहिणी बताते देखते हैं, तो आश्चर्य होता है[1]। बरवै नायिका-भेद आदि श्रृंगार-रस-प्रधान ग्रन्थों की रचना करने वाले रहीम भी साँप, अश्व, नारी, राजा, नीच जाति और अस्त्रों से सावधान रहने का निर्देश देते हैं[2]। नारी-संयोग को तिरस्कार योग्य समझने का कारण रहीम विवाह को विपत्ति मानते हैं[3]। सेनापति भी नारी-सम्पर्क और भोग-विलास को त्याज्य बताते हैं[4]।

इन रीति-कवियों की नारी-भावना भी परम्परा से पोषित और सामन्ती आदर्शों की भित्ति पर स्थित है। किसी प्रकार की कुण्ठा अथवा निग्रह न होने के कारण रीति-काव्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट ही दैहिक एवम् उपभोग का है। इस अनावृत प्रेम में वासना की तृष्णा और रसिकता है। नारी का कोई विशिष्ट व्यक्तित्व इनके लिए नहीं है, प्रत्युत वह विलास की अन्य सामग्रियों में से एक है। संभवतः बिहारी तथा केशव के विरक्तिमय कथन श्रृंगार और विलास की अतिशयता की प्रतिक्रिया में विकसित हुए हैं। रीति-काव्य में नारी के विविध रूपों में नायिका रूप ने ही व्यंजना पाई है। रीति-कवियों ने नारी में देवत्व का आरोप न कर, उसे मानवी मान कर पुरुषों को सौख्य देने वाली कहा है।

---

१. "या भव पारावार कौ उलघि पार को जाइ।
तिय-छवि छाया-ग्राहिनी ग्रहै बीच ही आइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १७८ दो० ४३३

२. "उरग तुरंग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें समारिये पलटत लगै न बार॥"
रहीम—रहिमन सुधा :अनूपलाल मंडल: पृ० ४२, दो० १६६, द्वि० सं० १९३१ प्रयाग

३. "रहिमन व्याह बियाधि है, सकहु तो जाहु बचाइ।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाइ बजाइ॥"
रहीम—रहिमन सुधा (अनूपलाल मण्डल) पृ० ५० दो० २३७

४. "कीनौ बालापन बालकेलि में मगन मन
लीनो तरुनापै तरुनी के रसतीर कौं,
अब तू जग में परयो मोह पींजरा में सेना
पति भजु रामै जो हरैया दुख पीर को।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० १००, कवित्त १२

: ७ :

साहित्य में नारी के विविध रूप

माता-रूप

ममता की मंदाकिनी, स्नेह की अक्षय राशि, दया और वात्सल्य की प्रतीक, त्याग और तपस्या की साकार प्रतिमा माता सदा से ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की श्रद्धा और आदर की पात्री रही। भारतीय संस्कृति में जननी को श्रद्धा और सम्मान के रंगों से अंकित किया गया है। मातृ-स्तन्य देवनदी का विजेता, त्रिलोक में अतुलनीय, पाप पुंज को नष्ट करने वाला कहा गया है। वीर-माता का स्तन-पान कर पुत्र विश्व में अजेय हो जाता है[1]। माता के वात्सल्य और करुणा, ममता और स्नेहका कोष कुपुत्र और सुपुत्र के लिए स्वभाव से उन्मुक्त रहता है। एकांत मनोयोग एवम् एकनिष्ठ साधना से पुत्र के जीवन को आदर्शमय बनानेवाली राष्ट्र और सभ्यता की जन्मदात्री नारी का माता रूप सदा ही अभिनन्दनीय रहा। युग के प्रवाह, कालचक्र में नारी का गौरव परिस्थितियों की शिलाओं से टकरा कर बिखर गया। अनादर और उपेक्षा के मध्य पलती हुई, अपकर्ष के गर्त में पड़ी हुई नारी के जीवन में भी मातृत्व का गौरव अक्षय रहा।

आलोच्य साहित्य की विभिन्न धाराओं में माँ के विविध रूप उपलब्ध हैं। इन सभी रूपों में एक सादृश्य है, सन्तान के प्रति माता का अपरिसीम स्नेह और ममता। यह ममता और वात्सल्य प्रतिदान के आकांक्षी नहीं हैं। जननी के विविध रूपों में, कभी वह प्रिय पुत्र के अमंगल की आशंका मात्र से सद-असद का विवेक परित्याग कर अत्यन्त कुत्सित, नीचातिनीच कार्य करने को प्रस्तुत हो जाती है, दूसरी ओर ममतामयी माता अपने वात्सल्य को कर्तव्य के पाषाण से

---

१. 'जगाद कर्णः किमितः करोमि
मातः शिरः स्वं यदि हा पतन्ति।
जितद्युकुल्याः त्रिजगत्यतुल्याः
त्वत्क्षीरधाराः धुतपापधाराः ॥"
अमरचन्द्र सूरि—बालमहाभारत काव्य, (सं० शिवदत्त शर्मा) उद्योग पर्व ५।६।१८६४ ई० बम्बई

"अथैकवारं यदि पायितः स्याम
मातः! पयस्तद भुवि केन जीये।"
अमरचन्द्र सूरि—बालमहाभारत काव्य, :सम्पादित शिवदत्त शर्मा उद्योग पर्व ५।१२

इन रीतिकवियों की नारी-भावना की सबसे बड़ी विचित्रता है कि वह नारी ो अत्यावश्यक मानते हैं। अभिनव-यौवन-ज्योति से दीप्त प्रेयसी के शरीर के लए उनमें अतृप्त पिपासा और तृष्णा है। उसके सौन्दर्य के लिए उनके हृदय में शंसा है, परन्तु इस प्रशंसा का कारण है उसका विलास में उपयोग। इसी अतृप्त-ासना, पिपासा में आकुल कवि को सन्तों के समान नारी की भर्त्सना करते, उसे व-पथ की छाया-ग्राहिणी बताते देखते हैं, तो आश्चर्य होता है[1]। वरवै नायिका-ेद आदि शृंगार-रस-प्रधान ग्रन्थों की रचना करने वाले रहीम भी साँप, अश्व, ारी, राजा, नीच जाति और अस्त्रों से सावधान रहने का निर्देश देते हैं[2]। नारी-ंयोग कौ तिरस्कार योग्य समझने का कारण रहीम विवाह को विपत्ति मानते । सेनापति भी नारी-सम्पर्क और भोग-विलास को त्याज्य बताते हैं[4]।

इन रीति-कवियों की नारी-भावना भी परम्परा से पोषित और सामन्ती ादर्शों की भित्ति पर स्थित है। किसी प्रकार की कुण्ठा अथवा निग्रह न होने के ारण रीति-काव्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट ही दैहिक एवम् उपभोग का ै। इस अनावृत प्रेम में वासना की तृष्णा और रसिकता है। नारी का कोई वेशिष्ट व्यक्तित्व इनके लिए नहीं है, प्रत्युत वह विलास की अन्य सामग्रियों में े एक है। संभवतः बिहारी तथा केशव के विरक्तिमय कथन शृंगार और विलास की अतिशयता की प्रतिक्रिया में विकसित हुए हैं। रीति-काव्य में नारी के विविध रूपों में नायिका रूप ने ही व्यंजना पाई है। रीति-कवियों ने नारी में देवत्व का आरोप न कर, उसे मानवी मान कर पुरुषों को सौख्य देने वाली कहा है।

---

१. "या भव पारावार कौं उलघि पार को जाइ।
तिय-छवि छाया-ग्राहिनी ग्रहै बीच ही आइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० १७८ दो० ४३३

२. "उरग तुरंग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें समारिये पलटत लगै न बार॥"
रहीम—रहिमन सुधा :अनूपलाल मंडल: पृ० ४२, दो० १६६, द्वि० सं० १६३१ प्रयाग

३. "रहिमन व्याह वियाधि है, सकहु तो जाहु बचाइ।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाइ बजाइ॥"
रहीम—रहिमन सुधा (अनूपलाल मण्डल) पृ० ५० दो० २३७

४. "कीनौ बालापन बालकेलि में मगन मन
लीनो तरुनापै तरुनी के रसतीर कौं,
अब तू जग में परयो मोह पींजरा में सेना
पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर को।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० १००, कवित्त १२

: ७ :

साहित्य में नारी के विविध रूप

माता-रूप

ममता की मंदाकिनी, स्नेह की अक्षय राशि, दया और वात्सल्य की प्रतीक, त्याग और तपस्या की साकार प्रतिमा माता सदा से ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की श्रद्धा और आदर की पात्री रही। भारतीय संस्कृति में जननी को श्रद्धा और सम्मान के रंगों से अंकित किया गया है। मातृ-स्तन्य देवनदी का विजेता, त्रिलोक में अतुलनीय, पाप पुंज को नष्ट करने वाला कहा गया है। वीर-माता का स्तन-पान कर पुत्र विश्व में अजेय हो जाता है[1]। माता के वात्सल्य और करुणा, ममता और स्नेह का कोष कुपुत्र और सुपुत्र के लिए स्वभाव से उन्मुक्त रहता है। एकांत मनोयोग एवम् एकनिष्ठ साधना से पुत्र के जीवन को आदर्शमय बनानेवाली राष्ट्र और सभ्यता की जन्मदात्री नारी का माता रूप सदा ही अभिनन्दनीय रहा। युग के प्रवाह, कालचक्र में नारी का गौरव परिस्थितियों की शिलाओं से टकरा कर बिखर गया। अनादर और उपेक्षा के मध्य पलती हुई, अपकर्ष के गर्त में पड़ी हुई नारी के जीवन में भी मातृत्व का गौरव अक्षय रहा।

आलोच्य साहित्य की विभिन्न धाराओं में माँ के विविध रूप उपलब्ध हैं। इन सभी रूपों में एक सादृश्य है, सन्तान के प्रति माता का अपरिसीम स्नेह और ममता। यह ममता और वात्सल्य प्रतिदान के आकांक्षी नहीं हैं। जननी के विविध रूपों में, कभी वह प्रिय पुत्र के अमंगल की आशंका मात्र से सद-असद का विवेक परित्याग कर अत्यन्त कुत्सित, नीचातिनीच कार्य करने को प्रस्तुत हो जाती है, दूसरी ओर ममतामयी माता अपने वात्सल्य को कर्तव्य के पाषाण से

---

१. 'जगाद कर्णः किमितः करोमि
मातः शिरः स्वं यदि हा पतन्ति।
जितद्युकुल्याः त्रिजगत्यतुल्याः
त्वत्क्षीरधाराः धुतपापधारा ॥"
अमरचन्द्र सूरि—बालमहाभारत काव्य, (सं० शिवदत्त शर्मा) उद्योग पर्व ५।६।१८६४ ई० बम्बई

"अथैकवारं यदि पायितः स्याम
मातः! पयस्तद भुवि केन जीये।"
अमरचन्द्र सूरि—बालमहाभारत काव्य, :सम्पादित शिवदत्त शर्मा उद्योग पर्व ५।१२

दबाकर, पुत्र-सुख के स्वर्णिम स्वप्नों के मोह को दूर कर पुत्र को कष्टप्रद, कंटकमय मार्ग पर अग्रसर करती है। माता के यह दोनों ही रूप रामकाव्य में उपलब्ध हैं[1]। सन्तकाव्य में जननी स्नेह, वात्सल्य क्षमाशीलता की अखण्ड राशि समाहित कर भगवान पर भी माता के रूपक का आरोप किया गया है। स्नेहमयी जननी के समक्ष पुत्र का बड़े से बड़ा अपराध क्षम्य है, उसकी ममता और वात्सल्य की कल्याणमयी छाया सन्तान के लिए कवच होती है।

आलोच्यकाल के समाज में नारी उपेक्षा और अनादर की पात्री थी। सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के निर्माण में उसका कोई भाग न था। उसका व्यक्तित्व अपूर्ण, शिथिल था। किन्तु आलोच्य साहित्य में और तत्कालीन समाज में भी नारी का मातृत्व, उसका जननी रूप गौरव एवम् आदर का विषय था। उपेक्षणीया, दीन होने पर भी वह अपने सन्तान की माता थी, यह उसका सबसे बड़ा सन्तोष और धन था। उसकी क्षमाशीलता और त्याग, क्षितिज के उस पार तक जानेवाली असीम ममता के ऊपर ही यह लोकोक्ति घटित थी, कि पुत्र कुपुत्र भले हो माता कुमाता नहीं हो सकती।

सन्तकाव्य के कवियों ने नारी के कामिनी रूप को असत् और अमंगल का अंश, नाशोन्मुख करनेवाला माना। किन्तु साथ ही नारी के माता रूप को उज्ज्वल माना। उन्होंने सुयोग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली जननी की जाति नारी की निन्दा का सर्वथा निषेध किया। नारी की जी खोलकर निन्दा करने वाले, उसे अवगुणों की खान, नरक का कुण्ड बताने वाले सन्त कवियों के हृदय में भी नारी के माता रूप के प्रति मोह और सम्मान रहा होगा। कभी उन्होंने हरि को जननी और स्वयं को बालक माना है। कबीर और दादू दोनों ने ही इस प्रकार के कथन किए हैं[2]।

सूफीकाव्य में नारी का माता रूप सामान्य जननी का स्नेहमय रूप है। इन सभी काव्यों में माता सन्तान के अमंगल की आशंकामात्र से व्यथित होनेवाली, उसके वियोग में सन्तप्त होनेवाली, और सुख के आभास पर प्रफुल्लित

---

१. "कहौं जान बन तौ बड़ि हानी, संकट सोच-बिबस भै रानी।
बहुरि समभि तिय धरमु सयानी, रामभरतु दोउ सुत सम जानी।
सरल सुभाउ राम महतारी, बोली बचन धीर धरि भारी।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका, पितु आयसु सब धरम क टीका।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १७९
"सीय सकुच बस उत्तर न देई, सो सुनि तमकि उठी कैकेई।
मुनि-पट-भूषन भाजन आनी, आगे धरि बोली मृदु बानी।
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १८८

२. "काहे न औगुन वकसहु मेरा, हरि जननी मैं बालक तेरा।"
: अध्याय ४ में उद्धृत

दबाकर, पुत्र-सुख के स्वर्णिम स्वप्नों के मोह को दूर कर पुत्र को कष्टप्रद, कंटक-मय मार्ग पर अग्रसर करती है। माता के यह दोनों ही रूप रामकाव्य में उपलब्ध हैं[1]। सन्तकाव्य में जननी स्नेह, वात्सल्य क्षमाशीलता की अखण्ड राशि समाहित कर भगवान पर भी माता के रूपक का आरोप किया गया है। स्नेह-मयी जननी के समक्ष पुत्र का बड़े से बड़ा अपराध क्षम्य है, उसकी ममता और वात्सल्य की कल्याणमयी छाया सन्तान के लिए कवच होती है।

आलोच्यकाल के समाज में नारी उपेक्षा और अनादर की पात्री थी। सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के निर्माण में उसका कोई भाग न था। उसका व्यक्तित्व अपूर्ण, शिथिल था। किन्तु आलोच्य साहित्य में और तत्कालीन समाज में भी नारी का मातृत्व, उसका जननी रूप गौरव एवम् आदर का विषय था। उपेक्षणीया, दीन होने पर भी वह अपने सन्तान की माता थी, यह उसका सबसे बड़ा सन्तोष और धन था। उसकी क्षमाशीलता और त्याग, क्षितिज के उस पार तक जानेवाली असीम ममता के ऊपर ही यह लोकोक्ति घटित थी, कि पुत्र कुपुत्र भले हो माता कुमाता नहीं हो सकती।

सन्तकाव्य के कवियों ने नारी के कामिनी रूप को असत् और अमंगल का अंश, नाशोन्मुख करनेवाला माना। किन्तु साथ ही नारी के माता रूप को उज्ज्वल माना। उन्होंने सुयोग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली जननी की जाति नारी की निन्दा का सर्वथा निषेध किया। नारी की जी खोलकर निन्दा करने वाले, उसे अवगुणों की खान, नरक का कुण्ड बताने वाले सन्त कवियों के हृदय में भी नारी के माता रूप के प्रति मोह और सम्मान रहा होगा। कभी उन्होंने हरि को जननी और स्वयं को बालक माना है। कबीर और दादू दोनों ने ही इस प्रकार के कथन किए हैं[2]।

सूफीकाव्य में नारी का माता रूप सामान्य जननी का स्नेहमय रूप है। इन सभी काव्यों में माता सन्तान के अमंगल की आशंकामात्र से व्यथित होने-वाली, उसके वियोग में सन्तप्त होनेवाली, और सुख के आभास पर प्रफुल्लित

---

१. "कहौं जान बन तौ बड़ि हानी, संकट सोच-बिबस भै रानी।
बहुरि समझि तिय धरमु सयानी, रामभरतु दोउ सुत सम जानी।
सरल सुभाउ राम महतारी, बोली बचन धीर धरि भारी।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका, पितु आयसु सब धरम क टीका।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १७९

"सीय सकुच बस उत्तर न देई, सो सुनि तमकि उठी कैकेई।
मुनि-पट-भूषन भाजन आनी, आगे धरि बोली मृदु बानी।

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १८८

२. "काहे न औगुन बकसहु मेरा, हरि जननी मैं बालक तेरा।"

: अध्याय ४ में उद्धृत

हो जाने वाली जननी है। उसमें कोई विशिष्टता नहीं है। पद्मावत में रत्नसेन अपनी वृद्धा जननी का एकमात्र अवलम्ब, नयनों का तारा है। गृहदीपक सुत की अनुपस्थिति में माता के स्नेहमय विश्व को तम और विषाद की छाया आच्छन्न किए हैं[1]। बादल की माता युद्ध को जाने को तत्पर बादल को युद्ध की भयानकता, जीवन की अनिश्चितता दिखाकर विमुख करना चाहती है। उसमें क्षत्राणी माता का ओज और तेज नहीं, जो पुत्र को हँसते-हँसते मातृभूमि पर बलि जाने की शिक्षा दे। वह पुत्र को रण के संघर्ष, अस्त्रों के संघात से छिपाकर रखना चाहती है और बादल को गौने में आई बधू के साथ विलास-क्रीड़ा करने का आदेश देती है[2]।

चित्रावली में भी जननी-कौलावती और चित्रावली की माता-का रूप सामान्यत: स्नेहशीला माता का है। चित्रावली की जननी के लिए वात्सल्य के पोषण की अपेक्षा कुल-गौरव की प्रतिष्ठा अधिक श्रेयस्कर है। जब चित्रावली को अपवाद लगता है तब उसकी जननी कुल के धवल यश के ऊपर कलंक लानेवाली पुत्री की मृत्यु की कामना करती है, वही जननी पुत्री से विलग होते हुए मातृ-स्नेह से द्रवित हो, रुदन की अविरल धारा के मध्य चित्रावली को अपना प्राण बताती है। कौलावती की माता भी उसकी विदा के अवसर पर शोक सन्तत हो उठती है[3]।

---

१. "नैनन दिष्टि सों दिया बराहीं, घर अँधियार पूत जौ नाहीं।
को रे चलाव सखन के ठाऊँ, टेक देहि ओहि देखौ पाऊँ॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३६६, माताप्रसाद गुप्त सम्पादक
"बिनवै रत्नसेन की माता, माथे छत्र पाय निति पाया।
वेरसहु नवलख लच्छि पियारी, राज छाँड़ि जनि होउ भिखारी॥
कैसे धूप सहब बिनु छाहाँ, कैसे नींद परिहिं भुइं मांहाँ।
कैसे ओढ़ब कावरि कंथा, कैसे पाउ चलब तुम पंथा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २०७

२. "बादल केरि जसोवै माया, आइ गहेसि बादल कर पाया।
बादल राय मोर तुइ बारा, का जानसि कस होइ जुझारा।
"जहां दलपति दलि मरहिं तोर का काम।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुखराज॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५२६

३. "रानी सुनि धिअ गौन बिचारा, बिसुकि गिरी भुइँ खाइ पछारा।
चूल तोरि मोती छितराई, लोचन मोती माल पिराई॥"
उस्मान चित्रावली, पृ० २२२, २१६

रामकाव्य में माता के दो रूप उपलब्ध है, एक सत् और कल्याण का प्रतीक, दूसरा असत् और अकल्याण की छाया। दोनों में ही जननी-सुलभ ममता और वात्सल्य है। अन्तर इतना है कि एक का वात्सल्य स्वार्थ की क्षुद्र एवम् संकीर्ण सीमा में बद्ध है। वह केवल अपने पुत्र की ही हित-कामना करती हैं। दूसरी का मातृत्व स्वपुत्र ही नहीं प्रत्युत् सपत्नी पुत्र पर भी कल्याण और स्नेह का वर्षण करता है। पहला रूप कैकेई का है, जो राम को पुत्र से भी अधिक मानती है किन्तु दासी के कपट वचनों पर विश्वास कर स्वपुत्र के लिए राज्यारोहण और सपत्नी-पुत्र के लिए चतुर्दश वर्ष का विपिनवास मांगती है[1]। रामकाव्य में माता का दूसरा रूप अपने ही में महान और उज्ज्वल है। उसका अनन्त स्नेह विवेक से मर्यादित है। पुत्र के राजतिलक की कल्पना करती हुई माता के ऊपर वज्रपात होता है कि उसे विपिनवास मिल रहा है। मानस की मधुर भावनाएँ बिखर जाती हैं, अन्तर में प्रभंजन उठने लगता है। वह न तो रुकने को ही कह सकती और न जाने को ही कह सकती। स्नेहकातरा माँ के विशाल हृदय को दुख है किन्तु अपने लिए नहीं भरत और प्रजा के लिए[2]। माता का पद पिता से पूज्य माना गया है। पुत्र माता के आदेश के समक्ष पिता के आदेश को अमान्य कर सकता होगा। तभी कौशल्या मातृगर्व से स्फीत होकर कहती है कि यदि केवल पिता का आदेश हो तो मेरी आज्ञा है कि विपिन मत जाओ, किन्तु यदि पिता और माता कैकेई दोनों की ही आज्ञा है तो वन ही शत अवध के समान है[3]।

दूसरी आदर्श माता सुमित्रा हैं, जिनका त्याग और भी गौरवास्पद है। वह स्वपुत्र को सपत्नी-पुत्र के साथ वन के विविध संकटों को झेलने को भेज देती है। अपनी वेदना को सहर्ष सहन करते हुए उनका कर्तव्य आदेश देता है[4]। माता कौशल्या कर्तव्यपरायण नारी हैं, विवेक उनका संबल है। प्राणोपम पुत्र राम,

---

१. "सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का, देहु एक वर भरतहि टीका।
मागौं दूसर वर कर जोरी, पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।
तापस वेस विसेषि उदासी, चौदह बरिस रामु बनवासी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १६८

२. "राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख़लेसु।
तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १७६

३. "जौं केवल पितु आयसु ताता, तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना, तौ कानन सत-अवध-समाना।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १७६

४. "पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें, सब मानि अहि राम के नाते।
अस जिय जानि संग बन जाहू, लेहु तात जग जीवनु लाहू।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८६

प्रिय पुत्र लक्ष्मण, और स्नेहपालिता पुत्र-वधू सीता वन को चले गए। जननी न तो उनके साथ ही गई और न कुलिश-सा कठोर हृदय ही फटा। किन्तु तो भी माता को राम के सदृश पुत्र की जननी होने का गौरव है[1]।

मानस में माता कौशल्या के हृदय का उच्छ्वास विवेक से दबा हुआ है। गीतावली में भी उनकी कर्तव्य-भावना मुखर है किन्तु मातृहृदय की कोमलता भी अभिव्यंजित हुई है। गौरवशीला राजरानी कौशल्या एक सामान्य माँ के रूप में अपत्य-स्नेह में मग्न दृष्टिगत होती हैं। जनकपुर लौट कर आए हुए राम की भुजाओं पर उतार-उतार कर जल पीती हैं। उनको विस्मय है कोमलगात राम लक्ष्मण ने किस प्रकार महाशक्तिशाली सुबाहु और ताड़का को मारा[2]। सूरसागर में चित्रित सुमित्रा और कौशल्या दोनों ही आदर्श माता हैं। वात्सल्य और ममता, स्नेह और भावुकता दोनों के ही हृदय में उद्वेलित होती है। सुत के प्रति स्नेह की सहज भावना और उनके कर्तव्य में द्वन्द्व होता है। इस संघर्ष में भावनाओं की सुकुमारता, ममता की स्निग्धता पर विजय पाकर कर्तव्य प्रमुख हो जाता है। उनको पुत्र के जीवन और सौख्य से अधिक चिन्ता है उसके कर्तव्य की। वीर, प्रतापी, शौर्यवान और कर्तव्यपरायण पुत्र से ही वह अपने को पुत्रवती मानती हैं। पुत्र की मृत्यु की आशंका भी उसे कर्तव्यपथ से विचलित नहीं कर पाती[3]। कौशल्या के स्वर में भी वही ऊँचा आदर्शवाद है। राम के प्रति उनका आदेश है कि सकुशल लक्ष्मण वैदेही सहित अयोध्या आवें, नहीं तो स्वयं को भ्राता पर उत्सर्ग कर दें[4]।

"तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू, संग पितु मातु रामु सिय जासू।
जेहिं न राम बन लहहिं कलेसू, सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८६

१. "मोहि न लाज निज नेहु निहारी, राम सरिस सुत मैं महतारी।
जिअइ मरइ भल भूपति जाना, मोर हृदय सत कुलिस समाना॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २२२

२. "भुजन पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों तोरयौ कोमल कर कमलनि संभु-सरासन भारी।
क्यों मारीचि सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी।
मुनि-प्रसाद मेरे रामलषन की बिधि बढ़ि करबर टारी।
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, गीतावली, पृ० ३३१, पद १०७

३. "धनि जननी जो सुभटहि जावै।
भीर परै रिपु को दलि मलि, कौतुक करि दिखरावै।
कौसल्या सों कहति सुमित्रा जनि स्वामिनी दुख पावैं।
लछिमन जनि हौं भई सपूती। राम-काज जो आवैं"'
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, रत्नाकर, पृ० ५९६, पद २४३

४. "सुनौ कपि कौसिल्या की बात।
इहिं पर जनि आवहि मम वत्सल, बिनु लछिमन लघु भ्रात।

कृष्णकाव्य में माता का सरस और सहज वात्सल्यपूर्ण रूप प्रस्तुत है। यशोदा की ममता और सारल्य में जननी हृदय की आशाएँ, आकांक्षाएं, भावनाएँ मूर्त हो जाती हैं। असीम स्नेह एवम् मनोयोग से वह अपने दुर्लभ धन कृष्ण का लालन-पालन करती है। बालक कृष्ण छोटी-छोटी बातों में हठ करते हैं। दुग्ध पीने से उसे अरुचि होती है। बड़े ही मनोवैज्ञानिक रूप से यशोदा उसे कजरी का दूध पीने से चोटी बढ़ेगी, यह आश्वासन एवम् प्रलोभन देती हैं[1]। माता के स्नेह की सतर्कता से पलते हुए कृष्ण पर अनेक विपत्तियाँ आती है। उन्हीं के साथ माता के स्नेह और आशंका में वृद्धि होती जाती है। कृष्ण अपनी उँगली पर दीर्घाकार गोबर्द्धन पहाड़ उठा लेते हैं। कृष्ण के ब्रह्मत्व, उनकी सर्वशक्तिमानता से अनभिज्ञ जननी को बड़ा विस्मय होता है कि उनके सुकुमार कन्हैया ने विशाल पर्वत कैसे उठा लिया[2]! चंचल कृष्ण गृह के पकवानों, विभिन्न खाद्य पदार्थों की उपेक्षा कर माखन चुराते घूमते हैं। जननी के स्नेह-कातर हृदय को भय है कि कहीं श्याम के भोजन पर कोई कुदृष्टि न लगा दे[3]। कमल नयन अपनी जननी यशोदा के आँख के तारे हैं। उनके

छाड्यौ राज काज माता-हित, तुव चरननि चितलाइ।
ताहि विमुख जीवन धिक रघुपति कहियौ कपि समुझाइ।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, रत्नाकर, पृ० २४४, पद ५६७

१. "कजरी कौ पय पियहु लाल, जासों तेरी बेगि बढ़ै चोटी।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ३१६, पद ७६२

२. "गिरिवर कैसे लियौ उठाइ।
कोमल कर चापति महतारी। यह कहि लेत बलाइ।
महाप्रलय जल तापर, राख्यौ एक गोवर्धनधारी।
नैकु नहिं टारचौ नख पर तैं मेरौ सुत अहंकारी।
कंचन-थार दूध दधि-रोचन, सजि तमोर लै आई।
हरषित तिलक करतिमुख निरखति भुज भरिकंठ लगाई।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ५६३, पद ६६७।१८८५

३. "माँगि लेहु याही विधि मोसों माँ आगे तुम खाहु।
बाहिर जनि कबहुँ कुछ खैयै दीठि लगैगी कांहु।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६०२, पद ६८७।१६०५

४. "घुटरुवन चलत सुहावनों लाल पग नूपुर के नाद।
कटि किंकिनी रुनझुन करैं हौ लाल सुनत जननी आह्लाद।
आधे आधे वचन सुहावने लाल सुनत जननी मन मोद।
मुख चूमत स्तनपान दै हो लाल लै बैठारति गोद।
काजर लोचन आंजि कै हों लाल भौह माटुकादे बैठि।"

स० व्रजभूषण शर्मा—गोविन्द स्वामी, पृ० ६

परमानन्द—परमानन्द पदावली, प० १११

शारीरिक विकास के साथ ही मातृहृदय की कलित कामनाएँ विकसित होती जाती हैं। घुटनों चलते हुए लाल की किंकिणी और नूपुर के शब्द माता के हृदय को उल्लसित कर देते है। धीरे-धीरे कृष्ण बढ़ते हैं। वह गोदोहन और गोचारण के. लिए हठ करते हैं। माता की सबसे बड़ी चिन्ता उनके भोजन की है।

चाहे जितना चंचल ढीठ बालक हो, उसके दोषों का वर्णन सुनना, उसकी चंचलता का उपालम्भ माता के लिए असहनीय ही होता है। गोपियों द्वारा बारंबार कृष्ण की चंचलता की शिकायत सुन माता का मातृत्व गर्व जागरुक हो उठता है[1]। वह उसको दण्ड देने का विचार करती है पर बालक के सरल मधुर शब्द और मोहक मूर्ति दर्शन मात्र से सुत पर माता का सहज विश्वास गोपियों पर ही अविश्वास करने लगता है। कृष्ण की चंचलता, उनके चीर-हरण आदि कृत्यों के विवरण पर यशोदा माता विश्वास नहीं करतीं, उनके कृष्ण तो अभी दश वर्ष के ज्ञानहीन बालक है और यह गोपिकाएँ यौवन में मत्त कामिनी, पुनः इनके उपालम्भ में तथ्य कैसे हो सकता है[2]। कृष्ण की अवस्था के साथ उनकी चंचलता में भी अभिवृद्धि होती जाती है। नित्य के उपालम्भों को सुनकर कि तूने अपने पुत्र को बहुत दुलरा दिया है माता का विश्वास और प्रेम आघात पाकर क्रोध में परिणत हो जाता है। इसी समय एक गोपी कृष्ण को पकड़ कर लाती है। यशोदा का क्रोध उसी पर उतरता है। इन स्नेहपालित पुत्रों को मधुपुरी भेजते समय मर्मान्तिक वेदना जननी के हृदय को झकझोर रही है, उनके कमलनयन उनके प्राणों से भी प्यारे हैं, इन दोनों छोटे अल्पवयस्क बालकों को वह कैसे मधुपुरी भेज दे[3]। माधव माता को सर्वश्रेष्ठ धनकोष के समान प्रिय हैं, प्रतिक्षण

---

१. "करत कान्ह ब्रजधरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि पुनि उरहन लै आवति हैं सगरी।"
× × ×
"जननी कै खीझत हरि रोए, झूठहि मोहि लगावति धगरी।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती है लंगरी॥"
सूर—सूरसागर प्रथम भाग, पृ० ३६७ पद ९३७

२. "नितही उठि आवति भोर।
मेरे बारेहि दोष लगावति, ग्वालनि जोबन जोर॥"
सूर—सूरसागर प्रथम भाग, पृ० ३६७ पद ९३८

"तनक तनक कर तनक अंगुरिया, तुम जोबन भरी नवल बहुरिया।
जाहु घरहि तुमको मैं चीन्हो, तुम्हारी जाति जान लीन्ही॥"
सूर—सूरसागर प्रथम भाग, पृ० ५३५ पद ७९८।१४१६

३. "मेरे कमलनयन प्रानन ते प्यारे।
इन्हें कहाँ मधुपुरी पठाऊँ, रामकृष्ण दोऊ जन बारे।"
सूर—सूरसागर द्वितीय खण्ड, पृ० ९६८।३५८

उनके मुखारविन्द को निहार कर उन्हें अत्यन्त सौख्यानुभव होता है, वह श्याम को नहीं जाने देगी, अधिक से अधिक कंस उन्हें बन्दी ही कर सकेगा[1]। रोहिणी भी यशोदा के समान ही वात्सल्यमयी हैं, बलराम और कृष्ण दोनों उनकी वृद्धावस्था के आधारखण्ड हैं[2]।

नन्द ब्रजवल्लभ को ले गए हैं किन्तु जननी यशोदा के अन्तर में अभी आशा शेष है कि नन्द कृष्ण को लौटा लावेंगे। नन्द के अकेले लौटने पर उनका सारा दुख, क्षोभ और क्रोध फूट पड़ता है। कितने स्नेह, मनोयोग ममता के साथ उन्होंने दोनों पुत्रों को बड़ा किया, उनको नन्द मथुरा में छोड़ आए। ममता और दुख की अतिशयता में वह नन्द को भी मतिमंद तक कहती है, और नन्द की निर्ममता पर व्यंग्य करती है[3]। पुत्र विरह से कातर स्नेहमयी माता पथिक द्वारा सन्देश भेजती है, उस सन्देश में मातृहृदय की दीनता सन्निहित है। वह समझती है कि ब्रज को विपत्ति से उबारने के लिए ब्रजवल्लभ अवश्य आवेंगे[4]। वह पुनः कहती

---

१. "मेरी माई निधनी को धन माधौ।
बार बार निहारि सुख मानति, तजति नहिं पल आधौ।
छिनु छिनु परसति अंकम लावति प्रेम प्रकृति है बाधौ।।"

× × ×

"करिहै कहा अक्रूर हमारो दैहै प्रान अवाधौं।
सूर स्याम धन हौ नहि पठ्यौ अबहिं कंस किन बाधौं।।"

सूर—सूरसागर द्वि० खण्ड, पृ० २६७१।३५८६

२. "यह सुनि गिरी धरन झुकि माता।
विरध समय की हरत लकुटिया पाप पुण्य डर नाहीं।"

सूर—सूरसागर द्वि० खण्ड, पृ० २६८०।३५६८

३. "सराहों तेरो नन्द हियौ।
मोहन सों सुत छांड़ि मधुपुरी गोकुल आनि जियौ।"

३१६५।३७८३

× × ×

"नन्द ब्रज लीजै ठोंक बजाइ।
देहु विदा मिलि जांहि मधुपुरी जहँ गोकुल के राइ।।"

३१६८।३७८६

४. "पंथी इतनी कहियो बात।
तुम बिन इहाँ कुंवर वर मेरे होत जिते उतपात।।"

× × ×

"ये सब दुष्ट हते हरि जेते भये एकहीं पेट।
सत्वर सूर सहाइ करौं अब समुझि पुरातन हेट।।"

सूर—सूरसागर द्वि० खण्ड, ३१७१।३७८६ प० १३४२

है, मोहन अगर माता का सम्बन्ध नहीं मानते तो धाय के ही सम्बन्ध से एक बार दर्शन दे दें[1]। वह मातृत्व के अधिकार का भी दावा त्याग देती है। देवकी को कहलाए हुए संदेश में दीनता की चरम दशा में वह अपने को देवकी के सुत की धाय बताती हैं, और उनकी कृपा की आकांक्षा करती हैं। कृष्ण को कष्ट न हो इस कारण वह उनकी आदतों एवम् रुचि की वस्तुओं का विवरण भेजती हैं[2]। पुन: देवकी को सन्देश भेजती है कि यदि उन्हें यशोदा का परिचय हो तो कृष्ण की मनमोहनी प्रतिमा का दर्शन पुनः कराएँ। देवकी वासुदेव की गृहिणी रानी है, वह ब्रज के निवासी अहीर हैं। उनके मध्य परिहास उचित नहीं है। उनके प्यारे सुत को अब भेज दें, ऐसा परिहास उन्हें प्रिय नहीं है[3]। जननी के सरल स्नेह एवम् ममता की यह दृढ प्रतीति है कि कृष्ण को वैभवमय खाद्य पदार्थों की अपेक्षा माखन प्रिय है।

यशोदा के मातृ-हृदय की उत्कंठा, ममता, दुलार और खीझ के यह स्वाभाविक चित्र सूर की कला में सजीव हो उठे हैं। यशोदा के अतिरिक्त सूर ने राधा की माता का भी चित्रण किया है। उनमें भी जननी का वही सरल, सन्तान पर सहज विश्वासी रूप दृष्टिगत होता है। ब्रजग्राम में स्थान-स्थान पर राधा-कृष्ण का एकत्र नाम और लोकापवाद सुन कर 'वृषभानुघरनी' उसको घर-घर डोलने को मना करती

---

१. "कहियौ स्याम सों समुझाइ।
वह नातो नहिं मानत मोहन मनो तुम्हारी धाइ।"

× × ×

"बारहि बार यही लौ लागी, गहे पथिक के पाइँ।
सूरदास या जननी को जिय राखौ बदन दिखाइ॥"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १३४२।३१७२।३७९०

२. "सदेसों देवकी सों कहियो।
हौं तौ धाइ तिहारे सुत की मया करत ही रहियौ।
जदपि टेक तुम जानति उनकी तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैते माखन रोटी भावै।
तेल उबटनो और तातो जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइ जोइ मागत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करिके न्हाते॥"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १३४३, ३१७५।३७९३

३. "जो पै राखति हौ पहिचानि।
तौ अबकै वह मोहनि सूरत मोहि दिखावहु आनि।
तुम रानी वसुदेव गेहिनी हम अहीर व्रजवासी।
पठै देउ मेरे लाल लड़ैते वारौं ऐसी हाँसी।
अब इन गैयनि कौन चरावै, भरि भरि लेति हिए॥"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १३४४, ३१७८।३७९७

है। किन्तु राधा के छोटे से तर्क से, थोड़े से मान से माँ का हृदय द्रवित हो जाता है। राधा अभी स्नेह-प्राणा माता की दृष्टि में निरी अबोध बाला है। उन्हें लोगों पर अनायास ही क्रोध आता है, जो राधा की सरल बालक्रीड़ा को कलंक लगाते हैं[1]। चंचल वाक्-चतुर राधा इस प्रकार अपनी इच्छानुसार कार्य कर जननी के छलहीन हृदय को आश्वस्त भी करती हैं। बहुमूल्य मुक्तामाला के खो जाने पर माता स्वभावत: ही खीझ कर राधा को माला ढूँढने भेजती है। राधा इतस्तत: नन्दलाल के साथ क्रीड़ा करके देर में घर आती हैं। माता का हृदय इस प्रतीक्षा में व्यस्त हो जाता है, वह अपनी निर्ममता को ही दोष देती है। उनको अपनी प्यारी स्नेहपालिता पुत्री पर क्रोध करने का महान् पश्चाताप है[2]।

आलोच्य युग का वीर-काव्य यद्यपि पूर्ववर्ती युग की परम्परा और आदर्श को लेकर ही चला है परन्तु परिस्थितियों के विषाक्त प्रभाव के कारण नारी के मातृत्व का उज्ज्वलतम रूप न्यून ही है। उस वैभव और विलास की रंगीनी, मदिरा की अंगूरी मादकता, नूपुरों की रुनझुन के श्रृंगारप्रधान युग में जटमल की 'गोराबादल की कथा' में बादल की जननी क्षत्रिय माता के उदात्त आदर्श की अवहेलना कर, सुत को रण से विमुख करती है[3]। उसमें वीर माता के स्वदेशा-

---

१. "मन ही मन रीझत महतारी।
कहा भई जो बाढ़ि तनक गई, अबहीं तो है मेरी बारी।
झूठे ही यह बात उड़ी है राधा कान्ह कहत नर-नारी।
रिस की बात सुता के मुख की सुनति हँसति मन भारी।
अब लौं नहिं कछु यहि जान्यो खेलन देखि लगावैं गारी।
सूरदास जननी उर लावति मुख चूमति पोंछति रिसटारी।"

सूर—सूरसागर, प्रथम पृष्ठ, ८४८, १७१०-२३२८

२. "करति अवसेर वृषभानु नारी।
प्रात तें गई, बासर गयो बीति, सब जाय निसि गई धौं कहाँ वारी।
हार कै त्रास में कुँवरि त्रासी बहुत, तिहि डरनि अजहूं नहिं सदन आवै।"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड २०१४-२६३२

"राधा डरडराति घर आई।
देखति ही कीरति महतारी, हरषि कुँवरि उर लाई।
धीरज भयौ सुता, मातः जिय दूरि गयो तनुसोंच।
मेरी मैं काहे त्रासी कहा कियौ यह पोच।।"

सूर—सूरसागर, पद २०१५-२६३३

३. "तुझ बिन सूझै न नैन कछु, तू टपि मुझ छाती पड़े।
तूंटत नाला गोला जहाँ केम साह समसेर लड़े।।"

जटमल—गोराबादल की कथा, सं० अयोध्याप्रसाद पृ० २६, १९८१ सं०

भिमान वीरत्व एवम् शौर्य के स्थान पर माता की ममता अधिक है। कर्तव्य और हृदय के संघर्ष में जननी के सहज स्नेह की कोमल भावना विजयी होती है। उसी वीर-काव्य की परम्परा में चंपतराय की माता के रूप में समयानुकूल परामर्श देने वाली आदर्श माता का कर्तव्य-रत् रूप उपलब्ध है[1]।

रीतिकाव्य के विलास-जर्जर वातावरण में पनपे हुए काव्य में नारी का केवल प्रेयसी और कामिनी रूप शेष रह जाता है। नायिकाभेदोपकथन, उद्दीपन-शृंगार के चित्रण में कवि जननी के वात्सल्यमय कल्याण-विधायक रूप को विस्मृत कर देता है। उसने केवल नारी में काम-भाव, वासना ही देखी। बिहारी की प्रौढ़ा नायिका शिशु का मुख चूमती है, वात्सल्य की पावन प्रेरणा से नहीं, प्रत्युत नायक द्वारा चुंबित उसके मुख के चुंबन द्वारा नायक के स्पर्शानुभव के रस की प्राप्ति के लिए[2]। आलोच्य साहित्य की विविध काव्यधाराओं में नारी के माँ रूप की विवेचना के उपरान्त यह सुस्पष्ट है, कि अपकर्ष एवम् पतन के इस युग में भी माता रूप में नारी गौरव एवम् सम्मान की पात्री रही तथा अन्य विषमताओं के मध्य उसमें माता के कर्तव्य की सात्विक व्यंजना हुई है।

नारी प्रेयसी-रूप

नारी के जीवन में महोत्सव की वह वेला आती है, जब उर की अनन्त प्रणय-राशि, मानस की मृदुल भावावलियाँ, कोमल कल्पनाएँ, और स्वर्णिम स्वप्न किसी के चरणों में वह बिखरा देना चाहती है। यौवन के उस सुरभित वसंत में मादकता और प्रेम उसके हृदय को गुदगुदाते हैं। सर्वस्व-समर्पण की भावना में नारी अपने को आराध्य के चरणों में उत्सर्ग कर देती है। त्यागमयी नारी अपने निश्छल हृदय के प्रणय और ममत्व के प्रतिदान की आकांक्षा नहीं करती है। भ्रम और संदेह उसके प्रेम की उच्च भूमि को छू भी नहीं पाते हैं। अपने निर्वाचन पर उसे संतोष होता है एवम् प्रिय पर अखण्ड विश्वास। इस समर्पण के विनिमय में नारी को वेदना की थाती ही मिलती है फिर भी उसे प्रिय से कोई उपालंभ नहीं रहता है, यही प्रेयसी का आदर्श रूप है। इसकी पावनता और मोहकता का अंकन विश्व के समस्त साहित्यों में हुआ है। आलोच्य-साहित्य में नारी का प्रेयसी-रूप विविध दशाओं में अंकित हुआ है। रीति-काव्य में जब नारी कामिनी मात्र रह कर विलास के उपकरण रूप में अंकित होती थी, तब भी नारी का प्रेयसी रूप ही अपने उत्सर्ग और त्याग में गरिमामय बना दृष्टिगत होता है।

---

१. "यह सुनि कै चंपत की माता। दान निधान ग्यान गुन पाता।
निकट आपनै पुत्र बुलाये। सुखद मन्त्र के वचन सुनाए।"
लाल—छत्रप्रकाश पृ० ३७

२. "विहँसि बुलाइ, विलोकि उत प्रौढ़ तिया रसघूमि।
पुलकि पसीजति, पूत कौ पिय चूम्यो मुख चूमि॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २२५, दो० ६१७

प्रेम को सभी धाराओं के कवियों ने महत्व दिया है। प्रेम को उपलब्ध कर मानव जीवन के सब दुखों और संतापों को विस्मृत कर देता है। इसी प्रेम का अवलम्ब लेकर सन्त कवियों ने प्रेयसी भाव से निर्गुण ब्रह्म की भक्ति की है। कबीर ने प्रेम को बहुत महत्व दिया है, उन्होंने उसे समस्त शास्त्रीय ज्ञान, वाह्याचार के परे माना है। यह प्रेम सिर के मूल्य से मिलता है[1]। इसी प्रेम की साधिका बन कर संतों की आत्मा की विरहिणी नारी अनन्त वेदना और विरह को ही चिर सहचर बना लेती है। उसे इस सत्य का ज्ञान है कि प्रिय मिलन से पूर्व रुदनधारा से हृदय को पवित्र करना पड़ता है, वेदना की अग्नि में कंचन शरीर को दग्ध करना पड़ता है, तब कहीं अविनाशी प्रियतम मिलता है[2]। कबीर, दादू, सुन्दरदास, धरनीदास आदि सभी कवियों के काव्य में अनन्त की प्रेयसी आत्मा का अनन्त विरह, असीम वेदना और अखण्ड प्रेम विद्यमान है।

सूफी कवियों ने भी प्रेम को ही अपनी इष्ट की उपलब्धि का साधन माना है। लौकिक प्रेम के चित्रण द्वारा अलौकिक प्रेम का आभास देना ही उन्हें अभीप्सित है। अतः उन्होंने आत्मा को पुरुष और परमात्मा को नारी माना है। फारसी परम्परा तथा रूपक के आरोपों से उनकी 'नारी' को पहले पुरुष प्रेम करता है। पुनः चित्रदर्शन, गुणश्रवण अथवा प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेयसी के हृदय में भी प्रेम की अग्नि जलने लगती है। सूफी काव्य की प्रेयसी की प्रेम की धारा प्रचण्ड, अप्रतिहत वेग वाली होती है। उसे जीवन-मरण का भय नहीं रहता। उसे विश्वास है कि मृत्यु उपरान्त भी उनका प्रेम अक्षुण्ण रहेगा[3]। रत्नसेन के विरह में पद्मावती की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। विरह-वेदना के बाहुल्य में उसे अपने शरीर की सुधि भी नहीं रहती है। पपीहा के समान वह दिवा-निशा प्रियतम को पुकारा करती है[4]। प्रेमी और प्रेमिका का सम्बन्ध दीपक और शलभ का है। प्रेम का यह

---

१. "प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जेहि रुचै सीस देह लै जाय॥"
कबीर—कबीर वचनावली, पृ० ११, पद १०३

२. "हंसि हंसि कंत न पाइए, जिन पाया तिन रोइ।
जो हांसे ही हरि मिलैं, तो न दुहागिन कोई॥"
कबीर—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास सम्पादित, पृ० ९

३. "जौ रे जिअहिं मिल केलि करहिं, मरहिं तौ एकहि दोउ।
तुम्ह पै जिनि होऊँ कछु, मोहि जिय होइ सो होइ॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त सम्पादित
पृ० २९४, १९५२ इलाहाबाद

४. "विरह न आपु सँवारै मैल चीर सिर रूख।
पिउ पिउ करत रात दिन पपिहा गई मुख सूख॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २७२, १९५२ इलाहबाद

बन्धन अविच्छिन्न है, प्राण जाने पर ही छूट सकेगा[1]। प्रेयसी की दशा अत्यन्त दयास्पद है। लोक-लज्जा और मर्यादा की बेड़ी उसके पैरों में पड़ी है, वह पिंजरे में बन्द पक्षी के समान विवश और निरुपाय है। प्रेम की इस सर्वदग्धकारी ज्वाला में वह मौन भस्म होती रहती है[2]। सूफी काव्य की प्रेयसी का प्रेम त्याग और बलिदान की भित्ति पर आधारित है। कामकन्दला नर्तकी भी दृढ़ प्रेम और अनुरक्ति वाली है[3]।

राम-काव्य में नारी का प्रेयसी रूप में चित्रण अत्यल्प है। सीता और पार्वती दोनों का विवाह के प्रति पूर्वराग प्रेम के नाम से अभिहित किया जा सकता है। पार्वती को अटल विश्वास है कि यदि उन्होंने कर्म, वचन और वाणी से शिव के लिए सात्विक, अकृत्रिम हृदय से साधना की है तो कृपानिधि भगवान उनके प्रण को सत्य अवश्य करेंगे[4]। नारी की निष्ठा और प्रेम, त्याग और तपस्या पार्वती की कठिन साधना में अपनी चरम विकास पर पहुँची है। पहले कंदमूल, पुनः जब सूखे पत्तों को खाकर तपस्या करने वाली हिम-सुता ने उन सूखे पत्तों का भी त्याग कर दिया। प्रेयसी के इस तप और साधना से उज्जवल रूप की कीर्ति से पूरा विश्व पूर्ण है[5]। पार्वती का प्रेयसी रूप संयत और तप एवम् त्याग से उज्ज्वल है। सीता एक शालीन मर्यादाशीला प्रेयसी के रूप में आती है। फुलवारी में राम के मनोहर रूप के प्रथम दर्शन होते हैं। संस्कृत परिवार की मर्यादा, नारी-सुलभ लज्जा उनको बारम्बार राम की ओर देखने से रोकती है। नयनों के मार्ग से राम की मनमोहक मूर्ति की हृदय में स्थापना कर, पलकों के कपाट लगाकर सुरक्षित कर

---

१. "बाँधी डोरी प्रेम की कर सों जाइ न छूट।
दीपक प्रीति पतंग त्यों प्राण जाइ पै छूट॥"
उस्मान—चित्रावली, जगमोहन सम्पादित, पृ० १३२, काशी

२. "अबलहुँ सखी गुपुत हौं जरी, अब जिउ रहिय न एको घरी।
पिंजरा मँह जस पंछी घेरी, औ पग परी लाज की बेरी॥"
उस्मान—चित्रावली, पृ० ६६

३. "नैन झरत जिमि मेह, गरब देह भीजत सकल।
बिछुरत नयो सनेह मन व्याकुल तन थकित भय॥"
आलम—माधवानल कामकंदला, हिन्दी के कवि और काव्य, गणेशप्रसाद, पृ० २००, तीसरा भाग

४. "जो मैं सिव सेयेउँ अस जानी। प्रीति समेत करम मन बानी।
तौं हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ४३

५. "नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल-धवल कल-कीरति सकल भुवन भरे॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २ : पार्वती मंगल : पृ० ३२

लेती है[१]। उनको भी अपने सात्विक प्रणय की पूर्णता का, प्रियतम की उपलब्धि का पूरा विश्वास है, क्योंकि अकृत्रिम, वास्तविक प्रेम में मिलन अवश्यंभावी है। शूर्पणखा भी राम के सौन्दर्य पर विमुग्ध हो उनसे प्रेम की याचना करती है, पुनः लक्ष्मण से। उसके प्रेम में अनन्यता और स्थिरता का अभाव है, अतः उसे प्रेयसी न कहकर वासना-प्रेरित नारी कहना समीचीन होगा।

प्रेयसी का संयोग के अनुराग से रंजित प्रमुदित रूप और वियोग का करुण, अश्रु-आप्लावित रूप कृष्ण-काव्य में उपलब्ध होता है। यद्यपि उनका प्रेम स्वकीया-भाव का है, किन्तु उन्हें प्रेयसी ही कहा जावेगा पत्नी नहीं। व्रज के सामन्ती प्रभाव से मुक्त, स्वच्छन्द वातावरण में सहवास, परस्पर केलिक्रीड़ा में ही कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर गोपियों के हृदय में स्नेह और प्रेम का आविर्भाव होता है। वंशीवादन की मधुर ध्वनि सुन वह सब अपनी सुधि विसार देती हैं। माता-पिता का भय, लोक-लज्जा आदि उनके लिए नगण्य हो जाती है। इन व्रजबालाओं के प्रेम में एक-निष्ठा और निश्चलता है। उनकी समस्त साधनाएँ, तप, उपासना, पूजा नंद-नंदन को पति रूप में प्राप्त करने के लिए होती है। प्रेमी द्वारा अधिक मान और आदर पाने से प्रेयसी के हृदय में गर्व का उद्रेक होना स्वाभाविक है। सुहाग-गर्व से राधा कृष्ण से कन्धे पर चढ़ाने को कहती है। कृष्ण उनके गर्व का अनुमान कर अदृश्य हो जाते हैं। सौभाग्यगर्विता प्रेयसी अल्पकालीन विरह में ही व्याकुल हो उठती है[२]। प्रेयसी के हृदय में प्रियतम पर एकाधिपत्य-स्थापन की लालसा रहती है, कृष्ण द्वारा मुरली का आदर देखकर निर्जीव जड़ मुरली के प्रति भी उनके हृदय में ईर्ष्या एवम् द्वेष का आविर्भाव हो जाता है। वे अहर्निशि श्याम के सान्निध्य का सुख उपभोग करने वाली, मुरली के सौभाग्य को असीम और अतुलनीय समझती हैं[३]। प्रेयसी के हृदय में प्रिय का प्रेम दृढ़ हो जाता है, उस प्रेम की अतिशयता में

---

१. "लोचन मगहि रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १००

२. "त्राहि-त्राहि कहि-कहि बनवारी। भई व्याकुल तनु-दसा विसारी।
नैन सलिल भीजी सब नारी। सूर संग तजि गएऊ मुरारी॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६४१, पद ११०५।१७२३

३. "वंसी वैर परी जु हमारे।
अधर पियूष अंस सबहिनि कौ, इन पीयौ सब दिन निज न्यारे।"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६६६, पद १२२६।१८४७
"मुरली स्याम अधर नहिं टारत।
बारम्बार बजावत गावत, उर तैं नाहीं बिसारत।
यह तौ अति प्यारी है हरि की कहति परस्पर नारी।
याकै वस्य रहत हैं ऐसे गिरि-गोवर्धनधारी॥"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० ६६६, पद १२३०।१८४८

वह अपनी सुधि ही भुला बैठती हैं। दधि-पात्र मस्तक पर रखे श्याम-प्रेमोन्मत्ता गोपी वनवीथियों एवम् मार्ग पर आत्मविस्मृति में 'गोपाल को लो' कहती घूमती है। प्रेम की मदिरा के पान से उसके चरण डगमगाते हैं[१]। इस प्रेम में विवशता है। वस्तुत: समस्त दोष इन सौन्दर्यान्वेषक रूप—लोभी नयनों का ही है। गोपियाँ नयनों के इस सौन्दर्य-प्रेम, लोभ के कारण विवश हैं। सूर द्वारा वर्णित यह प्रेमिका अपने प्रियतम का एक क्षण का भी वियोग सहने में असमर्थ है। कृष्ण के लिए भी राधा का प्रेम आदर की वस्तु है। केलि-क्रीड़ा के मध्य टूटी हुई राधा की माला को प्रेमपूर्वक बीच ही में ले लेते हैं। माला का भूमि पर गिरना उन्हें असह्य है[२]। संयोगकाल में सौभाग्यगर्विता मानिनी प्रेयसी के स्वरूप का उज्ज्वलतम् रूप विरह काल में दृष्टिगत होता है। प्रियतम की प्राप्ति के लिए गोपियाँ सिंगी, मुद्रा, खप्पर आदि लेकर योगिनी बनने को भी प्रस्तुत हैं। उनके अश्रुपरिप्लुत नयन घनों से प्रतिद्वन्द्विता करते हैं[3]। प्रेयसी का प्रेम विलास और भोग का परित्याग कर केवल प्रियतम दर्शन का अभिलाषी रहता है, उनके लोचन चातक के समान आशा में उलझे हैं। उनके नयनों में बोई हुई विरहबेलि अश्रुजल से सिंचित होकर जड़ पकड़ लेती है[४]। रूप-लोभी नयन अब अपने सौन्दर्य-प्रेम के लिए परिताप करते हैं। सूर द्वारा चित्रित प्रेयसी का यह रूप विवश, निरुपाय और त्यागमय है। अपने प्रेम की विफलता, वेदना की अतिशयता एवम् घोर नैराश्य को दृष्टिगत कर वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि प्रेम ही उनके समस्त दुःख कष्ट

---

१. "ग्वालनि प्रगट्यौ पूरन नेहु।
दधि-भाजन सिर पर धरे कहहिं गोपालहि लेहु।
बन वीथिन अरु पुर-गलिनि जहाँ तहाँ हरि नाऊ।"

× × ×

"पिये प्रेम बर बारुनी बलकति मुख न सम्हार।
पग डगमग जित-तित धरति, बिथुरी अलक लिलार।"

सूर—सूरसागर, पृ० ८२८, पद १६४०।२२५८

२. "प्रेम सहित माला कर लीन्ही।
प्यारी हृदय-रहति यह जानी, भू पर परन न दीन्ही।"

सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, ६५४५, ११४६।१७६३

३. "निसि दिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहति वरषा रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे।
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १३६१ पद ३२३४, ३८५२

४. "मेरे नैना विरह की बेलि बई।
सींचत नैन-नीर के सजनी मूल पताल गई।"

सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड पृ० १३६४, पद ३२४६।३८३४

ा संतापों का कारण है[1] । मानिनी राधा कृष्ण के विरह में अत्यन्त विवश और हो जाती है, उनका शरीर अत्यन्त कृश हो जाता है । प्रियतम के विरह में वह भूषणों को त्याग देती हैं उनको बस एक प्रिय की रट है । वही प्रियतम नेत्र-हीन दण्ड के समान उनका अवलम्ब है[2] प्रेयसी के प्रेम की दृढ़ता निश्चलता, महानता प्रगत कर उद्धव से ज्ञानी भी प्रेम के उपासक हो जाते हैं ।

रीति-काव्य का मूल ही श्रृंगार एवम् प्रेम है । अतः उसमें नारी के प्रेयसी की प्रधानता है । यद्यपि तत्कालीन कृत्रिमता, वैभव आदि के कारण प्रेयसी रूप में उच्छृंखलता एवम् मर्यादा का अतिक्रमण है । रीति-काव्य की प्रेयसी माजिक प्रतिबन्धों को ठुकरा कर प्रेम करती है । वह परकीया है, अतः उसका प्रप्रतिहत एवम् अबाध है । प्रेम की रंगभूमि में वह प्रधान पात्री है । प्रेम के वेग में वह प्रेमी की उड़ती हुई पतंग की छाया को स्पर्श करती घूमती है । सके नयन ढीठ अश्व हैं जो लाज की लगाम से संयमित नहीं है[3] । प्रेयसी रूप नायिका के विभिन्न भेदों का ही विकास हुआ है । विलास के वातावरण में, बाध श्रृंगार, विलास की छाया में यदा-कदा रीतिकवियों ने प्रिय के प्रेम में ात्म-विस्मृत, अपना ही प्रतिबिम्ब दर्पण में देख कर रीझने वाली प्रेयसी के ात्विक रूप का चित्रण किया है[4] । श्रृंगारी कवि देव ने भी राधा के रूप में प्रियतम के साथ तादात्म्य कर लेने वाली कीट-भृंग गति वाली प्रेयसी का वर्णन

---

१. "मति कोउ प्रीति के फंद परै ।
सादर स्वाति देखि मन मानै, पंखी प्रान हरै ।
देखि पतंग कहा क्रम कीन्यौ, जीवकौ त्याग करै ।"
× × ×
"जैसे चकोर चंद को चाहत, जल बिनु मीन मरै ।
सूरदास प्रभु सौं ऐसे करि मिलै तो काज सरै ।"
सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १३७५, १३७६, पद ३२८७, ३६०५

२. "हरि तिहारे विरह राधा भई तन जरि छार ।
बिनु आभूषण मैं जु देखी, परी है बिकरार ।
एकहि रट रटत भोमिनी, पीव पीव पुकार ।"
सूर—सूरसागर, द्वितीय खण्ड, पृ० १६२६, पद ४१०८।४७२६

३. "लाज लगाम न मानहीं, नैना भों बस नाहिं ।
यह मुंहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं ।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २५२ दो० ६०६

४. "पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि ।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि ।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४२ दो० ५८३

किया है। राधा जब कन्हैया का ध्यान करती है तब प्रेम के बाहुल्य में अभेद भाव की अनुभूति होती है। वह स्वयं कन्हैया होकर राधा का गुणगान करने लगती है। राधा को वह पत्र लिखती है, पुनः एक क्षण के अन्तर में वह राधा होकर कृष्ण द्वारा लिखे पत्र को हृदय से लगा लेती है। इस प्रकार विरहिणी राधा स्वयं अपने आप से ही उलझती और सुलझती है[१]। प्रेम की पीड़ा से व्यथित देव की प्रेयसी की वेदना का निदान वैद्य नहीं कर पाते हैं। प्रियतम के वियोग में शरीर की आवश्यकताओं का भी परित्याग कर वह व्याकुल होकर पड़ी हुई है। उसकी तीव्र निश्वासों से ही निरन्तर प्रवाहित होती हुई अश्रुधारा शुष्क हो जाती है। प्रिय के वियोग में जलहीन मीन के समान वह व्याकुल है[२]।

प्रेयसी की सबसे बड़ी अभिलाषा, कामना प्रियतम का सान्निध्य ही है। वही उसके लिए स्वर्ग है। इस कामना की पूर्ति के लिए वह नंदनंदन के कर्ण में लगी हुई रसाल की मंजरी के सौभाग्य की सराहना करती है[3]। प्रेम के समक्ष उसके लिए गृह-काज, लज्जा, गुरुजनों का भय, ग्रामवासियों की निन्दा सारहीन है। यह प्रेम उसके लिए त्रैलोक्य के साम्राज्य सदृश्य है। उसके समक्ष योगादि उपासना की विधियाँ तुच्छ है[४]।

यद्यपि प्रेयसी का उज्जवल रूप शीतोपचारों की कृत्रिमता, सहेट की लीलाओं के मध्य यदा-कदा धूमिल हो जाता है, किन्तु रीति-युग के विलास-श्लथ वातावरण में भी नारी के प्रेयसी रूप में त्याग और उत्सर्ग, महानता और पावनता भी मिलती है। आलोच्य—काल की नारी का प्रेयसी रूप नारी की प्रेम में निरुपाय और विवश स्थिति का ही चित्र है। उसके सामाजिक नियमों द्वारा सीमित जीवन में प्रेम वरदान और अभिशाप दोनों ही बन कर आता है। यह तो स्पष्ट

---

१. "राधिका कान्ह को ध्यान धरैं, तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावैं।
ज्यों अँसुवा बरसैं बरसाने को, पाती लिखि लिखि राधिका ध्यावैं।
राधे ह्वै जाइ धरीक मैं देव सुप्रेम की पाती लै छाती लगावैं।
आपुन आपहि मैं उरझै, सुरझै, विरुझै, समुझै समुझावैं॥"

देव—शब्द रसायन पृ० ५२, सं० २००० प्रयाग

२. "लौटि लौटि परत करोट खटपाटी लै लैं,
सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै सरफराति है।"

देव—शब्द रसायन पृ० ६८

३. "मोहि रसाल की मंजरी क्यों न करी करतार।
सुंदर श्रौन समीप जौ, राखै नंद कुमार॥"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४७७ द्वि० सं० १६३४

४. "पगो प्रेम नंदलाल के हमें न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ कै, भीख न मांगत लोग॥"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४८५

है कि जीवन के सीमित क्षेत्र में वियोग-काल में नारी की वेदना लोक और समाज के सुधार और परोपकार के साधनों में नियोजित नहीं होती, परन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आलोच्य-साहित्य में वर्णित नारी का प्रेयसी रूप त्याग और बलिदान, वेदना और विषाद, उत्सर्ग और विवशता की रेखाओं में अपने उज्ज्वलतम् स्वरूप को उपलब्ध करता है ।

नारी पत्नी-रूप

भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी के अभाव में पुरुष अपूर्ण रहता है । "पुमानर्द्ध पुमास्तावद्यावर्द्धाया.न विन्दति ।" पत्नी द्वारा उसके अर्द्धांग की पूर्ति होती है । पत्नी केवल वासना एवम् विलास की प्रतीक न होकर दुःख-सुख की समभागिनी, धार्मिक कृत्यों की सहयोगिनी, सचिव के समान सत् परामर्शदात्री, अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा सद्-असद् के विवेक, ऊँच-नीच के ज्ञान, तथा कर्तव्य-भावना को जागरूक करने वाली, सेवाकाल की दासी तथा क्रीड़ा-विनोद की सहचरी मानी गई है । पति को परमेश्वर मानने वाली आदर्श-समन्विता पत्नी सतत सम्मान और आदर पाती रही है । गृहिणी के रूप में वह गृह साम्राज्य की साम्राज्ञी, गृहाग्नि प्रज्ज्वलित कर धार्मिक क्रियाओं का सुचारू सम्पादन करने वाली धर्मपत्नी है । ऋग्वेदयुगीन सभ्यता में नारी का पत्नी रूप गरिमामय रहा । युग की समस्याओं, सामाजिक जटिलताओं से उसका गौरव न्यून हो गया, किन्तु महाभारत और रामायण तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में पत्नी अक्षय मर्यादापूर्ण एवम् गरिमामयी दृष्टिगत होती है । युधिष्ठिर को ओजस्वी वचनों द्वारा परामर्श देती हुई द्रोपदी का सचिव रूप किरातार्जुनीय में दृष्टिगत होता है[१] । इन्दुमती की मृत्यु पर शोकार्त्त अज की वाणी में आदर्श-पत्नी के गुण मुखर हैं[२] । उत्तररामचरित के राम के शब्दों में उसके वचनों का महत्त्व तथा आनन्द अतुलनीय है । पत्नी गृह में लक्ष्मी है, नयनों की अमृतवर्तिका है । उसका स्पर्श चन्दन के गाढ़े रस के समान शीतल, स्निग्ध और आनन्ददायक है[3] । पत्नी का यह

---

१. "अथ क्षमावेव निरस्त विक्रमः
चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम् ।
विहाय लक्ष्मीपति लक्ष्य कामुर्कम
जटाधरः सन जुहुधीहिपानकम् ॥"

भारवि—किरातार्जुनीय १।३१

२. "गृहिणी सचिवः सखीमिथ
प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणा विमुखेन मृत्युना
हरता त्वां वद किं न मे हृतम ॥"

कालिदास—रघुवंश, ८।६७

३. "म्लानस्य जीव कुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि

आदर्श सर्वकालिक है । भारतीय पत्नी विवाह की वेदी पर अपनी स्वर्णिम आशाओं, अभिलाषाओं की भेंट चढ़ाती है। अपने व्यक्तित्व का विलय वह पति में कर देती है, पति से स्वतन्त्र उसकी कोई इच्छा अथवा अनिच्छा नहीं होती है।

आलोच्य साहित्य की विविध शाखाओं में उपलब्ध नारी का पत्नी रूप अधिकतर इन्हीं आदर्श रेखाओं के संकेत से व्यंजित हुआ है। सन्त-काव्य में भी पत्नी की एकनिष्ठ भक्ति और समर्पण को अत्यधिक महत्त्व मिला है। इन सन्तों की आत्मा आदर्श पत्नी है परन्तु प्रतीक मात्र होने के कारण उसकी विशद व्याख्या अपेक्षित नहीं है। मुसलमान सूफी सन्तों द्वारा लिखी गई प्रेम गाथाओं में भी भारतीय पत्नी के सात्विक रूप का सुन्दरतम् विकास हुआ है। पद्मावती और नागमती, चित्रावली और कौलावती, इन्द्रावती पति को ही जीवनाधार मानने-वाली पत्नी हैं। नागमती सर्वप्रथम रूपगर्विता, पति का स्नेह पाकर हठीली बनी पत्नी के रूप में आती है। अपने सौन्दर्य तथा सौभाग्य पर उसे गर्व है। इसी सौभाग्य के गर्व में वह सुआ को मार डालने का आदेश देती है। राजा के रोष के समक्ष उसका अभिमान नष्ट हो जाता है[1]। नारी के गर्व और सौभाग्य के अभिमान की आधारशिला कितनी दुर्बल है। नित्य सेवा करने वाली पत्नी का समस्त गौरव छोटे से अपराध से नष्ट हो जाता है। पत्नी का समस्त सुख पति-सामीप्य में ही है, नागमती आदर्श पत्नी के रूप में वैभव के समस्त उपकरणों का परित्याग कर पति के साथ योगिनी बनने को प्रस्तुत हो जाती है[2]। पति-

---

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।"
भवभूति—उत्तररामचरित, सं० टी० आर० रत्नमऐयर आठवां सं०
पृ० ३८, ३९ श्लोक, १९३० बम्बई

"इयं गेहे लक्ष्मी रियममृतवर्तिर्नयनयो:
असावस्या: स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस:"
भवभूति—उत्तररामचरित, स० टी० आर० रत्नमऐयर आठवाँ सं०
पृ० ४०, श्लोक ३८

१. "मान मते हौं गरब जो कीन्हा कन्त तुम्हार मरम मैं लीन्हा।
सेवा करहि जो बरहौं मांसा, एतनिक औगुन करहु बिनासा।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० १८०, १९५२ इलाहाबाद

२. "अब को हमहि करहि भोगिनी, हमहूँ साथ होइब जोगिनी।
कै हम लावहु अपने साथा, कै अब मारि चलहु सै हाथा॥
तुम्ह अस बिछुरै पीउ पिरीता, जहँवा राम तहाँ संग सीता।
जौ लगि जिउ संग छाँड़ न काया, करिहौं सेव पखरिहौ पाया॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० २०९, १९५२ इलाहाबाद

विरहातुरा नागमती निर्निमेष नयनों से सिंहल से चित्तौर आनेवाले मार्ग को निहारा करती है। दुर्बल-हृदया-अबला होने के कारण काम उसको दग्ध करता रहता है[1]। साम्राज्य की सम्राज्ञी नागमती अपनी विशिष्ट सामाजिक स्थिति की अवहेलना कर आत्मविस्मृति में उपवन के प्रत्येक वृक्ष के पास जाकर विरहवेदना निवेदन करती है। पति के वियोग में समस्त सुख एवम् आनन्द को प्रदान करने वाली वस्तुएँ उसे काल सम प्रतीत होती हैं, वर्ष में षटऋतुओं के परिवर्तन का चक्र चलता है, गृह-गृह में उत्सव, पर्व की आयोजना होती है, परन्तु पति के वियोग में विरहिणी पत्नी के लिए सब शून्य ही है[2]। विरह-वेदना में दग्ध होकर भी नागमती का हृदय कांचन-सा शुद्ध नहीं हो पाता, उसमें ईर्ष्या का ताप अवशिष्ट रहता है। सपत्नी का उल्लेखमात्र ही उसे सघन छाया में घोर आतप ताप सा प्रतीत होता है[3]। पद्मावती भी आदर्श पतिव्रता पत्नी होने पर भी पति पर एकाधिपत्य रखने की भावना से शून्य नहीं है[4]। अन्त में पद्मावती और नागमती सहगमन द्वारा सतीत्व के उज्ज्वलतम् आदर्श को प्रस्तुत करती हैं। उस्मान की कौंलावती में पत्नीत्व के चरम आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। उसकी उत्सर्ग की भावना प्रतिदान की आकांक्षी नहीं है, पति तथा सपत्नी के सुख-सौभाग्य के लिए वह आत्मोत्सर्ग को प्रस्तुत है[5]।

रामकाव्य में तुलसी ने सीता, पार्वती, मन्दोदरी, कौशल्या आदि में पत्नीत्व के आदर्शों का विकास किया है। पतिप्राणा भगवती पार्वती को पति-निन्दा सुनना

---

१. "पिय वियोग अस बाउर जीऊ, पपीहा तस बोलै पिउ पीऊ।
अधिक काम दगधै सो रामा, हरि जिउ लै सो गएउ पिउ नामा।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली : गुप्त : पृ० ३५३

२. "जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्व।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्व।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३५५

"सखि मानहि तेवहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कन्त बिनु तेहिं रही छार सिर मेलि।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३५७

३. "जनहुं छाँह महँ धूप दिखाई, तैस झार लागी जौं आई।
सहि नहिं जाइ सौत की झारा, दूसरे मंदिल दीन्ह उतारा।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४०६

४. "अनु हौं कमल सुरुज की जोरी, जौ पिय आपन तौ का चोरी।
हौं ओहि आपन दरपन लेखौं, करौं सिंगार भोर उठि देखौं।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४१३

५. अध्याय ४, प्रकरण २ सूफीकाव्य के नारी आदर्श रूप के अन्तर्गत उद्धृत है।

भी असह्य है, अतः वह पिता द्वारा शंकर की अप्रतिष्ठा पर उससे उत्पन्न अपनी देह का ही परित्याग कर देती है[1]। अपनी अविचल पतिभक्ति, निष्ठा तथा साधना से वह पुनः शिव को पति रूप में प्राप्त करती है। शिव द्वारा भी उन्हें पत्नी के अनुकूल ही आदर एवम् मान मिलता है[2]। कौशल्या आपत्ति काल में अपने मधुर वचनों द्वारा पति के दुःख को शान्त करने का प्रयास करती हैं तथा उन्हें समयानुकूल परामर्श देती है[3]। पत्नी के आदर्श का सर्वोच्च रूप जानकी में प्रस्फुटित होता है। कुसुम-कोमला सुकुमारी विपिन के घोर कष्टों एवम् सन्तापों को पति के सान्निध्य के कारण सुख तथा आनन्द का कारण समझती हैं[4]। पति-मुख-दर्शन सीता को संसार के समस्त सुखों से श्रेष्ठ प्रतीत होता है[5]। वन जाते समय राम उन्हें कोमलांगी एवम् सुकुमारी कह कर अवध ही में रहने की शिक्षा देते है तथा अवधमें सास-ससुर-पदपूजा को सर्वश्रेष्ठ धर्म निर्देश करते हैं। सीता को प्रभु के यह वचन अत्यन्त दुखद प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार प्रिय-

---

१. "पिता मंदमति निंदत तेही, दच्छ-सुक्र-संभव यह देही ।
तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू, उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू ।।"
तुलसी— तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३२

२. "जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा, बाम भाग आसनु हर दीन्हा ।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ५१

३. "प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितयेउ आँखि उघारि ।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि ।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २१७

४. "नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे, सरद विमल विधु बदनु निहारे ।"
× × ×
"बनदेवी बनदेव उदारा, करिहहिं सास ससुर सम सारा ।
कुस-किसलय साथरी सुहाई, प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ।
कंद मूल फल अमिअ अहारु, अवध-सौध-सत-सरिस पहारु ।
छिनु-छिनु प्रभु-पद कमल बिलोकी, रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ।
बनदुख नाथ कहे बहुतेरे, भय विषाद परिताप घनेरे ।
प्रभु-वियोग-लव-लेस समाना, सब मिलि होइ न कृपानिधाना ।
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १८३

५. "मोहिं मग चलत न होइहि हारी, छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १८३

"तुम सौ प्रभु तजि मोसी दासी, अनत न कहूँ समाइ ।
तुम्हरौ रूप अनूप भानु ज्यों, जब नैननि भरि देखौं ।
ता छिन हृदय कमल प्रफुल्लित ह्वै, जनम सफल करि लेखौं ।"
सूर—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पृ० १९८

वियोग जगत में अतुलनीय दुख है[1]। कोमलांगी सीता विपिन के कष्टों को सस्मित सहन करती हुई पत्नी के कर्तव्य का प्रतिपादन करती रहती है। वन में माता-पिता के समीप राजसी साधनों के मध्य रात्रि व्यतीत करने में भी उन्हें संकोच होता है[2]। दशानन के प्रलोभन, भयप्रदर्शन, प्रणय-प्रस्तावों के समक्ष सती नारी का एक ही उत्तर है[3]। तुलसी और केशव दोनों ही कवियों द्वारा चित्रित सीता पत्नी के शास्त्रीय आदर्श का मूर्त रूप है। दानव-गृह में घोर भय के मध्य रही सीता को लोक और समाज के समक्ष अपनी पवित्रता की साक्षी देनी पड़ती है। इस संघर्ष के समय भी आदर्शपत्नी सीता विवेक एवम् धर्म का ही अवलम्ब ग्रहण करती हैं। उन्हें विश्वास है कि पतिव्रता के अटल सतीत्व के समक्ष अग्नि मक्खन के समान शीतल हो जावेगी[4]। पत्नी के इस आदर्श, स्नेह-स्निग्ध रूप पर पति को भी ममता और मोह है[5]। पति और पत्नी का स्नेह, संवेदनामय प्रेम अन्योन्याश्रित है। रामचरित मानस तथा रामचन्द्रिका में मन्दोदरी असुर नारी होने पर भी पतिव्रता है। वह पति को सद्मार्ग पर उन्मुख करने का पूर्ण प्रयास करती है। उसे कल्याणकारी तथा अशुभ कार्य करने से विमुख करती है[6]। कैकेयी के रूप में पति का प्रेम पाकर सौभाग्यमद-गर्वित होकर प्रिय पति के विश्वास का दुरुपयोग करने वाली

---

१. "मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं, पिय-वियोग सम दुख जग नाहीं।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १८२

"सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप रघुबीर को।
विरह वीर मों सों न सह्यो परै।"
केशव—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० १३६ सं० २००१ प० सं०

२. "कहति न सीय सकुचि मन माहीं, इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २६६

३. "तृन धरि ओट कहत वैदेही, सुमिरि अवधपति परम सनेही।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा, कबहुँकि नलिनी करै विकासा।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३४६

४. "जौ मन वच क्रम मम उर माहीं, तजि रघुवीर आनि गति नाहीं।
तौ कृसानु सब कै गति जाना, मो कहँ होहु श्रिखंड समाना।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४२७

५. "जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय ! छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेऊ बयारि करौं अरु पायँ पखारिहों भूभुरि बाढ़े।
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानिकै बैठि बिलम्ब लौ कंटक काढ़े।
जानकीनाह को नेह लख्यौ पुलको तनु, वारि विलोचन बाढ़े।
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, द्वि० भाग (कवितावली) पृ० १६७

६. "कन्त समुझि मन तजहु कुमतिही, सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, प० ३८६

पत्नी का चरित्रांकन भी तुलसी ने किया है। निज सुत को राज्य दिलाने के क्षुद्र स्वार्थ के समक्ष वह पति को कठिनतम दुःख देती है[१]।

कृष्णभक्त-कवियों की रागानुगा भक्ति की धारा जीवन तथा परिवार के लिए उच्च आदर्श लेकर नहीं चली थी। उसमें राधा एवम् गोपीगण के रूप में प्रेयसी के रूप का ही सुन्दरतम् विकास हुआ है। राधा में स्वकीया का गौरव, मानिनी का अभिमान-स्वाधीनपतिका का सौभाग्य-विलास होने पर भी गृहिणी की गरिमा, दुःख-सुख की संगिनी के अभिराम स्वरूप की व्यंजना नहीं है। उनके महत् त्याग, एकनिष्ठ-प्रेम की महत्ता मानते हुए भी उन्हें कृष्ण की पत्नी की संज्ञा से अभिहित करना समीचीन न होगा। यशोदा के माता रूप की वात्सल्यमयी गरिमा के समक्ष 'नन्दघरनी' नगण्य हो जाती है। रीतिकाव्य में नारी केवल नायिका रूप में ही समक्ष आई। रीतिकवियों द्वारा वर्णित पत्नी विलास-शैय्या की सहचरी मात्र है। वह नवोढ़ा मानवती, अभिसारिका आदि के रूप में ही प्रस्तुत होती है। गृह-जीवन के मध्य पति के सुख-दुख की समसह-भागिनी का कल्याणमय रूप नहीं दृष्टिगत होता है। इन रीतिकवियों ने अपनी संकुचित दृष्टि, एकांगी जीवन-दर्शन से पत्नी को केवल रति, शारीरिक क्षुधा की तृप्ति के साधन के रूप में ही देखा। वह पति में मादकता, अपने सौन्दर्य से ज्वाला उत्पन्न कर सकती है परन्तु उसको कर्तव्य-मार्ग का निर्देश करने की क्षमता अल्पवयस्क, सुशिक्षा-वंचित पत्नी में नहीं है। उसको नारी के उदात्त आदर्शों, पत्नी के कर्तव्यों की शिक्षा ही नहीं मिली है। अपरिपक्व बुद्धिवाली पत्नी को तो सखी द्वारा मान करने, रूठने की ही शिक्षा मिली है। प्रणय अथवा विलास के अतिरिक्त उसका कुछ काम्य नहीं है। पति-प्रेम-रता पत्नी के प्रेयसी पक्ष का चित्रण रीति-काव्य में अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवम् स्वाभाविक है। विदेश गए पति के पत्र को हाथ में लेकर उसका चुम्बन कर, उसे हृदय से लगाकर, भुजाओं से भेंटती है। पुनः बारंबार पढ़ती है[२]। वस्तुतः रीतियुग के आदर्शहीन समाज में पत्नी पति द्वारा चरण वन्दना कराने में ही गौरव समझती है[३]। रीति काव्य में पत्नी के स्वरूप की पूर्ण व्यंजना नहीं हो सकी।

---

१. "लखी नरेस बात सब सांची, तियमिसु मीचु सीस पर नाची।
गहि पद विनय कीन्ह बैठारी, जनि दिनकर कुल होसि कुठारी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १७१

२. "कर लै चूमि, चढ़ाइ सिर उर लगाइ भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति, बांचति धरति समेटि।।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २६१ दो० ६३५

३. "पाइनि प्रेम जनाइ जिन परियै नन्द कुमार।
अनल लाल पग लसति हैं जावक लीक लिलार।।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ४८० द्वि० सं० १९३४

रीति-काव्य की परिस्थितियों में ही पल्लवित होने के कारण आलोच्य वीर-काव्य के पत्नी रूप में विलास का आधिक्य है। परन्तु उसमें सतीत्व की मंजुल ज्योति भी है। छत्रप्रकाश की छत्रसाल की माता लालकुँवरि अथवा इतिहास तथा अन्य काव्य-ग्रन्थों की सारन्धा में वीर पत्नी का आदर्श पल्लवित हुआ है। रण में वह अपनी कुसुम-कोमल भावनाओं का परित्याग कर शत्रु-संहार में रणचण्डी बनकर पति की रक्षा में आत्मोत्सर्ग कर देती है[1]। जटमल के 'गोराबादल की कथा' की गोरा की पत्नी में क्षत्रिय पत्नी के इसी वीरांगना रूप के दर्शन होते हैं। पति की रण में वीर-मृत्यु उसके लिए गर्व एवम् अभिमान का कारण है। क्षत्रिय पत्नी की चरम गति पति के पार्थिव अवशेष के साथ सती होने में ही मान्य रही है। वह वीर रमणी भी पति की पगड़ी के साथ सती हो जाती है[2]।

आलोच्यकाल में सूफीकाव्य तथा रामकाव्य का पत्नी रूप आदर्श की रेखाओं में मुखर हुआ। सीता में तो पत्नी के आदर्श, सहनशीलता, पति-भक्ति, दृढ़ निष्ठा आदि का सर्वांगीण विकास हुआ है। कृष्ण-काव्य में नारी का पत्नी रूप स्पष्ट नहीं है। रीतिकाव्य में पत्नी केवल जीवन के एक पक्ष विलास की ही संगिनी है। स्वकीया रूप में पतिव्रता का किंचित मात्र आभास मिलता है, परन्तु पत्नी का आदर्श विलासिता से धूमिल है। पत्नी के रूप में नारी का जीवन पति की इच्छा पर ही अवलंबित है। पति ही उसके लिए परमेश्वर है।

वैवाहिक आचार और नारी

हिन्दू आदर्श एवम् जीवन-दर्शन के अनुसार मानव भावनाओं के उद्दाम वेग को संयमित करने के लिए विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है। यह दो आत्माओं को जन्म-जन्मान्तर के लिए प्रणय के मधुर एवम् अविच्छिन्न बन्धन में बद्ध करने वाला पावन संस्कार है। विवाह एवम् इससे सम्बन्धित आचारों में नारी का योग अधिक है, वस्तुतः इन आचारों के छोटे से विश्व की विधात्री, सूत्रधारिणी नारी ही है। नारी के स्निग्ध, स्नेहश्लथ आँचल की छाया, उसके भावप्रवण हृदय का आश्रय पाकर ही यह वैवाहिक आचार सजीव हो उठे हैं। आलोच्यकालीन जीवन एवम् काव्य दोनों में ही विवाह और उससे सम्बन्धित आचार, हास-परिहासमयी प्रथाएँ वर-परछन, आरती, मंगलगान, कलेवा, बड़हर, कोहबर नहछुर, विदा, वधू परिछन आदि मांगलिक कृत्य नारी जीवन से गुँथे हुए है। विवाह के पूर्व स्वयंवर की प्रथा

---

१. "त्यों ही छत्रसाल की माता, जग में एक पुन्य की त्राता।
कढ्यो कटार हाथ में लीन्हो, हुलसि पतिव्रत में मन दीन्हौ॥"
लाल—छत्रप्रकाश, सं० श्यामसुन्दरदास काशी, पृ० ६०

२. "नारी यह वाणी सुनी, प्रिय की पघड़ी साथ।
सती भई आनन्द सों सिवपुर दीन्हा हाथ॥"
जटमल—गोरा-बादल की कथा, स० अयोध्याप्रसाद, पृ० ३३, १९८१
सं० प्रयाग

का उल्लेख रामचरितमानस में दो स्थान पर मिलता है मोहिनी तथा सीता का स्वयंवर[1]। रामचन्द्रिका में भी स्वयंवर का उल्लेख है[2]। परन्तु, वास्तव में यह स्वयंवर का वर्णन केवल प्रथा के रूप में हुआ है। क्षत्रिय जाति में भी अब स्वयंवर की प्रथा का प्रचलन कम था। आलोच्यकालीन स्वयंवरों में वर की शक्ति और शौर्य की परीक्षा ली जाती थी[3]। अपवाद रूप में कन्या की रुचि प्रमुख होती थी[4]। परम्परा के रूप में वर्णित स्वयंवरों के विवरण से ज्ञात होता है कि आलोच्य साहित्य में वर्णित समाज में नारी को अपना वर चुनने का यत्किंचित अधिकार उपलब्ध था।

सूरसागर में रुक्मिणी अपने परिजनों का विरोध कर कृष्ण को पत्र भेज कर उनसे परिणय करती है[5]। मूक और संकोचशीला नारी अपने जीवन के इस महत्वपूर्ण संस्कार के अवसर पर गाय के समान किसी भी खूँटे से नहीं बँध जाती, प्रत्युत् वह जागरूक हो विद्रोह करके स्वयं उपयुक्त वर का निर्वाचन करती है। यद्यपि स्वयंवर की प्रथा का उल्लेख केवल रामकाव्य में ही उपलब्ध है, किन्तु सूफी नायिकाओं के विवाह भी इस प्रकार से स्वयंवर ही हैं।

विवाह के समस्त आचारों और प्रथाओं में नारी की ही प्रधानता मिलती है। आलोच्य काव्य में वर्णित वैवाहिक आचारों में वर एवम् कन्या की माता, भगिनी, भाभी आदि नारियों का ही सक्रिय योग मिलता है। मध्ययुगीन साहित्य में प्राप्त विवरण में विवाह का सर्वप्रथम आचार नहछू है। उस छोटे से संस्कार में भी जननी

---

१. "सखी-संग लै कुँअरि तब चलि जनु राज-मराल।
देखत फिरै महीप सब कर सरोज जयमाल॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ६१, १९८० काशी
"रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देख रूप मोहे नर नारी।
हरषि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १०७

२. "सीता जू रघुनाथ को अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की हृदयावलि भूपाल॥"
केशव—रामचन्द्रिका, दीन, पृ० ७२, सं० २००१ इलाहाबाद

३. "कुँवरि मनोहरि विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार विरंचि जनु रचेउ न धनु-दमनीय॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १०८

४. "धरि नृप तनु तहँ गएउ कृपाला। कुँअरि हरषि मेलेउ जयमाला।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ६०

५. "द्विज पाती दै कहियौ स्यामहिं।
कुन्डिनपुर की कुँवरि जपति तिहारे नामहिं॥"
सूर—सूरसागर द्वितीय भाग, पृ० १६५०, पद ४१६८।४७८०
सूरसमिति काशी

की ही प्रधानता है। वह पुत्र के सिर पर कल्याणमय आँचल रखे हुए नाइन को नहछुर का आदेश देती है। नहछुर भी 'अति गुनखानि नाइन' ही करती है, नाई नहीं[1]। नहछुर के उपरान्त दूसरा आचार वर-परछन है। इस आचार में भी वधू की माता की ही प्रधानता है। यह विवाह प्रजापत्य की कोटि में ही आते हैं। जब मंगल वाद्यों के मध्य बारात द्वार पर आती है तब वधू की माता तथा अन्य सुमंगला नारियाँ मंगल-गान करती हुई परछन करती हैं। पार्वती-विवाह में भी माता कंचन के थाल से आरती करती है[2]। विवाह-अवसर पर पुरोहित का आदेश पाकर कुल की वयप्राप्त महिलाओं तथा विप्रवधू के द्वारा ही कुल-रीतियाँ सम्पादित कराई जाती हैं। सीता का वधूवेष में शृंगार कर उनकी सखियाँ उन्हें मंडप में ले आती हैं। तुलसी ने इस तथ्य पर भी प्रकाश नहीं डाला है कि विवाह के मांगलिक आचारों में विधवाएँ भाग ले सकती थीं अथवा नहीं। कालिदास के काव्य में तो वधू का शृंगार अविधवा और पुत्रवती नारी ही करती है[3]। सम्भवतः सोलह-शृंगारों से सज्जित गजगामिनियों से तुलसीदास तात्पर्य सौभाग्यवती नारी से ही रहा होगा[4]।

मधुपर्क आदि मंगल द्रव्यों की व्यवस्था होती है, कलश स्थापना होती है। विवाह लौकिक और वैदिक दोनों ही रीतियों से सम्पन्न होता है। जनक कन्या को राम को समर्पित करते हैं[5]। इसके उपरान्त भाँवरि होती है। वर कन्या के मस्तक को सिन्दूर के साथ अनन्त सौभाग्य से रंजित करता है। कन्या-सम्प्रदान सूफी काव्यों में भी मिलता है। कुतुबन वैवाहिक सम्बन्ध को अटूट और अविच्छिन्न

---

१. तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, रामलला नहछू, पृ० ४, १९८० काशी

२. "नयन नीर हठि मंगल जानी, परिछन करहिं मुदित मन रानी।
वेद-विहित अरु कुल आचारू, कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १३५

"मैना शुभ आरती सँवारी, सग सुमंगल गावहिं नारी।
कंचन थार सोह वर पानी, परिछन चली हरहिं हरषानी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४५

३. "वधू का मंडन बड़े विस्तार से होता था। वह मंडन केवल ऐसी अविधवाएँ ही करती थीं जिन्होंने पुत्र उत्पन्न किए हों।
भगवतशरण उपाध्याय—कालिदास युगीन भारत, पृ० १२६, १९८० काशी

४. "चली ल्याइ सीतहि सखी आदर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसत साजे सुन्दरी सब मत कुन्जर गामिनी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १३६, १९८० काशी

५. "करि लोक-वेद-विधानु कन्यादानु नृप भूषन कियो।'
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १३८, १९८० सं० काशी

बताकर उसी को सत्य बन्धन मानते हैं[1]। चित्रसेन कुश और जल लेकर कन्या-दान करते हैं[2]। विवाह में नारी से अपना तन, मन, यौवन सभी का पूर्ण समर्पण वांछित है[3]। मध्ययुगीन वैवाहिक आचारों में नारी की स्थिति अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। कुलदेव कलश और सिल की पूजा होती है, वर-वधू को पारस्परिक स्नेह की स्थिरता को दृढ़ करने के लिए अखण्डता का प्रतीक ध्रुव दिखलाया जाता है[4]। किन्तु वैदिक विवाह की ऋचा के गौरवपूर्ण आशीर्वचन पत्नी को आलोच्ययुग के काव्य में नहीं मिलते हैं, वरन् राजा जनक राजा दशरथ से सीता आदि को दारिका, परिचारिका समझ कर उनका करुणापूर्वक पालन करने का अनुरोध करते हैं। यह तो वधू पक्ष वालों की विनम्रता और शालीनता में आ जाता है। परन्तु वास्तव में पूरे आलोच्य साहित्य मे वैवाहिक आचारों में नारी का वह उज्ज्वल, गरिमामय रूप दृष्टिगत नहीं होता है। हाँ, इनका यह महत्व अवश्य है कि वैवाहिक आचारों में नारी को अपनी समस्त वेदना और दुख का विस्मरण होकर हास और परिहास के मध्य विश्रान्ति और सन्तोष मिलता होगा। विवाह-उपरान्त कोहबर में ले जाकर परस्पर हास परिहास होता है, उसका चित्रण आलोच्य काल के अनेक कवियों ने किया है। कोहबर में मधुर गीतों की ध्वनि, मृदुल हास्य व्यंग्यों के मध्य वर-वधू एक दूसरे को लहकौरि खिलाते है। तुलसी के काव्य में इसका वर्णन अधिक है[5]। इस समय वर-

---

१. "पढ़ी वेद बाम्हन बेदुआई, चित्रावली सुजानहि लाई।
तातखन आन कीन्ह गठजोरा, बन्धन सो छूट न छोरा॥"
उस्मान—चित्रावली, जगमोहन सम्पादित, पृ० २०२

२. "चित्रसेन पुनि लै कुश पानी, संकल्पी धिय सब जानी।"
उस्मान—चित्रावली, जगमोहन सम्पादित, पृ० २०२

३. "पुनि धनि भरि अंजलि जल लीन्हा, जोबन जरम कन्त कह दीन्हा।"
जायसी—पद्मावत, माताप्रसाद गुप्त सम्पादित, पृ० ३१५
१९५२ इलाहाबाद

४. "पूजे कुल गुरु देव, कलस सिल सुभ धरी,
लावा होम विधान बहुरि भाँवरि परी।
वन्दन बंदि, ग्रंथिविधि करि ध्रुव देखेउ।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा भाग, पार्वती मंगल, पृ० ४१

५. "कोहबरहिं आनि कुँअरि सुआसिनिन्हि सुख पाइकै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइकै।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सिय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास-विलास-रस बस जनमु कौ फल सब लहैं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पहला भाग, पृ० १४१, १९८० सं० काशी

वधू को जुवाँ भी खिलाया जाता है[1]। कंकन खोलने में परस्पर स्पर्धा होती है[2]। इन समस्त प्रथाओं में सखियाँ तथा अन्य सुआसिनी नारियाँ योग देती हैं। अतः विवाह समय के इस आनन्दोल्लास का आलोच्य-युग की विवश, दासता की शृंखलाओं में बद्ध, गृह की चहार दिवारी के सीमित क्षेत्र में रहने वाली नारी के जीवन में पर्याप्त महत्त्व रहा होगा।

विवाह के उपरान्त जेवनार आदि के समय गाली गाने की प्रथा का भी उल्लेख आलोच्य साहित्य में हुआ है। वैवाहिक कार्यक्रम समाप्त होने पर वधू पति-गृह आती है। वर की माता पुत्रवधू का मुख देखकर हर्ष-विभोर होकर परछन करती है[3]। वर-वधू के कल्याणार्थ समस्त मांगलिक सामग्री एकत्रित कर आरती उतारती है। इस वैवाहिक आचार में नारी को पर्याप्त महत्त्व मिला है। श्वसुर-गृह में आई हुई नारी का स्वागत सुख-सौभाग्य और सास का स्नेह करता है। वधू को अखण्ड सौभाग्य का आशीर्वाद मिलता है[4]।

आलोच्य युग के वैवाहिक आचारों से तत्कालीन नारी की स्थिति पर भी यत्किंचित प्रकाश पड़ता है। विवाह में केवल कन्या समर्पण ही दिखलाया है, वर कोई प्रतिज्ञा आदि नहीं करता है। सम्भवतः नारी के लिए तो विवाह अविच्छिन्न

---

१. "सीता अरु राम जुवा खेलत जनक धाम।
सेनापति देखि नयन नेकहु न मटकै॥"
सेनापलि—कवित्त रत्नाकर, उमाशंकर शुक्ल सम्पादित, पृ० ७६ १९४८ प्रयाग

२. "कर कंपै कंकन नहिं छूटै।
रामसिया कर परस मगन भए।
कौतुक निरखि सखी सब सुख लूटैं।
गावत गारि नारि सब दै दै तात भ्रात की कौन चलावै।
तव कर डोरि छुटै तब जब कौसल्या माता आवै।
पुंगीफलयुत जल निर्मल आनी भरि कुंडी जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिन में हारे रघुपति जिती जनक की।"
सूर—सूरसागर, नवम् स्कन्ध, पृ० १६५, सूर समिति

३. "उमँगि उमँगि आनन्द विलोकति वधुन सहित सुनचारी।
तुलसीदास आरती उतारति प्रेम-मगन महतारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ३३१ पद १०७ : गीतावली

४. "मुदित मन आरति करैं माता।
कनक वसन मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता।
पालागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत साता।
देहि असीस 'ते बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता'।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ३३१ पद १०८

सम्बन्ध होगा, पर वर उसको भंग कर सकता होगा। तुलसी ने कहा है विप्र-वेष रखकर वेद स्वयं विवाह-विधि करते हैं, पर वह विवाह-विधि क्या है ? उससे वर और कन्या की स्थिति में क्या अन्तर होता है, आदि पर प्रकाश नहीं डाला है। नारी की सामाजिक स्थिति-विषयक कोई ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। इन वैवाहिक आचारो का एक महत्त्व अवश्य नारी के जीवन में था, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। नारी का केवल पारिवारिक जीवन के आचारों में महत्व था। विवाह के निश्चित करने, अन्य विवाह सम्बन्धी प्राथमिक आचारों में कन्या तथा वर के पिता आदि का प्रमुख भाग होता था।

शिक्षा और नारी

समाज का व्यक्ति, उसके द्वारा निर्दिष्ट नियमों का ही आधार मान कर चलता है। आचारशास्त्र में उल्लिखित तथा स्वजनों, गुरुजनों, गुरु, शिक्षक आदि से उपलब्ध निर्देश ही जीवन-पथ पर उसके संबल होते है। स्वभाव से ही कोमल नारी परिस्थितियों के द्वारा पराश्रयी तथा परमुखापेक्षी बनी। नियामकों ने उसके कर्तव्य-मार्ग का विधान किया। हिन्दू संस्कृति ही नारी को धरित्री सदृश सहनशीलता, उत्सर्ग, कर्तव्य-पालन, करुणा की शिक्षा देती है। एकनिष्ठ पति-प्रेम और भक्ति ही उसकी चरम गति बताई गई है[1]। आलोच्यकाल की इस्लाम के साथ सम्पर्क से परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों में पति को परमेश्वर समझने की प्रवृत्ति बलवती हो गयी थी। प्रधानतः पुरुषों द्वारा रचे हुए मध्ययुगीन काव्य में यह एकपक्षीय आदर्श ही प्रतिध्वनित हुआ।

आलोच्य काल के साहित्य में नारी शिक्षा-निकेतन आदि का किसी प्रकार का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। गृह के संकुचित वातावरण में माता, पिता या किसी गुरुजन से ही संभवतः नारी अक्षर-ज्ञान कर लेती होगी। विवाह से पूर्व माता, पिता, सखी आदि से वार्तालाप के मध्य नारी को अपनी कर्तव्य विषयक शिक्षा मिलती है[2]। कहीं कवि कथा-प्रसंग में किसी भी पात्र द्वारा नारी-धर्म का कथन करता है[3], अथवा स्वयं ही नारी को कर्तव्य की शिक्षा देते हुए, उसके लिए नियमावली निर्धारित करता है।

---

१. "सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहैं।
जसु गावत श्रुति आजहु तुलसिका हरिहप्रिय।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २८६

२. उस्मान—चित्रावली, पृ० २२५
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली प्रथम भाग, (पार्वती विदा) (सीता विदा) पृ० ४८, पृ० १४४

३. तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, (अनुसुइया द्वारा शिक्षा) पृ० २८६
केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध पृ० ३३४ (राम द्वारा कौशल्या को उपदेश)

आलोच्य साहित्य में ललित कलाओं की शिक्षा के लिए शाला थी या नहीं इस विषय का कोई विवरण सूफी साहित्य में भी नहीं मिलता। जायसी-ग्रन्थावली में पांच वर्ष की अवस्था में पद्मावती को शास्त्र पढ़ने बैठा दिया जाता है[1]। पर इस विषय में कवि मौन है कि वह गृह पर ही किसी शास्त्रविद् पण्डित से शिक्षा पाती रही अथवा उसका विद्याध्ययन पाठशाला में हुआ। अन्य आलोच्य काव्यों में भी नारी की शिक्षा, उसकी पद्धति अथवा शास्त्रीय विधि सम्बन्धी विवरण नहीं मिलता है।

सूफी-काव्य में चित्रसारी के विवरण से ज्ञात होता है कि आलोच्यकाल में नारी ललितकलाओं, चित्रकला आदि से भिज्ञ होती थी। चित्रावली द्वारा अंकित उसका चित्र देख कर सुजान मुग्ध हो जाता है। उस सौन्दर्य का अंकन करने वाली रेखाएँ अवश्य कलाकुशल करों द्वारा खींची गयी होंगी[2]। माधवानल-कामकंदला की नायिका, नृत्य आदि संगीत कलाओं से अभिज्ञ है[3]।

रामकाव्य में भी नारी की क्रमिक शास्त्रीय शिक्षा का कोई रूप नहीं उपलब्ध है। राम के लिए गोस्वामी जी निर्देश करते हैं कि उन्होंने अल्पवयस में ही समस्त वेद और शास्त्रों पर आधिपत्य पा लिया, पर सीता की शिक्षा-दीक्षा के विषय में कोई कथन नहीं किया। उस समय की स्त्रियाँ ललितकलाओं में दक्ष, संगीत, वाद्य की प्रेमिका होती थीं[4]।

सन्तकाव्य प्रधानतः गीति अथवा मुक्तक काव्य है। उसमें भक्त कवियों ने स्वयं को 'राम की बहुरिया' मान कर दाम्पत्य भाव के प्रतीक के द्वारा अपने हृदय-गत भावों की अभिव्यक्ति की। भावनाप्रधान होने के कारण उसमें नारी की शिक्षा-दीक्षा अध्ययन सम्बन्धी कोई निर्देश उपलब्ध नहीं है। पतिव्रता के आदर्श स्वरूप की व्याख्या करते हुए, अवश्य सन्त कवियों ने नारी को पातिव्रत एवम् एकनिष्ठ प्रेम की शिक्षा दी[5]। समस्त सन्त कवियों में शिक्षा का यही रूप

---

१. "भै पदुमावति पंडित गुनी, चहूँ खण्ड के राजन्ह सुनी।
× × ×
एक पदुमिनी औौर पंडित पढ़ी, दहुँ केहि जोग दैयं असि गढ़ी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त संपादित, पृ० १५५
१९५२ इलाहाबाद

२. "नैन लगाय रहेउ मुख बौरा। चित्रचांद भा कुँवर चकोरा।
सुधि बिसरी बुधि रही न गा बौराइ प्रेममद पिये॥"
उस्मान—चित्रावली

३. आलम—माधवानल-कामकंदला, पृ० १९२ हिन्दी के कवि और काव्य तीसरा भाग

४. केशव—रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध पृ० १७३, २२०

५. "अपने घर का दुख भला पर घर का सुख छार।
ऐसे जानै कुल वधू सो सतवन्ती नार।"
चरणदास—चरनदास की बानी, वेलवेडियर प्रेस, पृ० ४७, १९०८

उपलब्ध है।

कृष्ण-काव्य में कृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति के अन्तर्गत कृष्ण-राधा एवम् गोपियों की प्रणय-लीला का चित्रण हुआ। कृष्णकवियों विशेषतः सूर की राधा प्रगल्भ, वाक्चतुर एवम् प्रत्युत्पन्न मति वाली है, पर उसके इस नैपुण्य का आधार किसी प्रकार की शिक्षा है, अथवा नहीं, यह विवरण नहीं मिलता है राधा की माता, राधा को समय पर घर आने और केवल लड़कियों के साथ ही खेलने की शिक्षा देती हैं, किन्तु वह केवल घरेलू सीख मात्र है[1]। रम्यरास के समय विहार के लिए आई हुई गोपियों एवम् राधा को कृष्ण भी पतिभक्ति, एवम् परिवार की मर्यादा-पालन की शिक्षा देते हैं[2]।

वीरकाव्य में भी नारी की शिक्षा उसकी विद्वता का कोई निर्देश नहीं मिलता है। मान के राजविलास में राजा राजसिंह को पत्र भेजने वाली रूपनगर की राजकन्या शिक्षित प्रतीत होती है[3]। केशव के वीरसिंह देव चरित में, वीरसिंह-देव की रानियों की दिनचर्या से प्रकट है कि वह पठन-पाठन में अपना समय व्यतीत करती हैं। वह ललित कलाओं में भी पारंगत है[4]।

रीतिकाव्य में कवि नायिकाभेद, श्रृंगार के विभिन्न रूपों के भेद एवम्

---

१. "अब राधा तू भई सयानी।
मेरी सीख मानि हिरदय धरि, जँह-तँह डोलति बुद्धि अयानी।"
सूर—सूरसागर, प्रथम भाग, दशम स्कंध, पृ० ८१०, १७१६-२३३४

२. "घर ही मैं तुव धर्म सदाई, सुतपति दुखित होत तुम जाहु।
सूर स्याम यह कहि परमोधत सेवा करहु जाइ घर नाहू।।"
सूर—सूरसागर प्रथम भाग पृ० ६११, १०१५-१६३३

"इहि वेद-मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ।
कंत मानहु भव तरौगी, और नाहिं उपाइ।
ताहि तजि क्यों विपिन आइ, कहा पायौ आइ।
विरध अरु बिन भागहूं कौ पतित जौ पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।"
सूर—सूरसागर, प्रथम भाग, पृ० ६११ पद १०१६-१६२४

३. राज—मान-विलास, पृ० १०७

४. "तहँ रमनि राजति बहुँ भाँति, पदमिनी चित्रिनि हस्तिनि जानि।
गवा कँह वजावति बीन कहूँ पढ़ावति पढ़ति प्रवीन।"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २५०

"सूक्ष्मवाणी दीरघ अर्थ पढ़ति पढ़ावति सुकनि समर्थ
दक्षिण दशा कहावै वाम, गुनगन वलित सुअबला नाम।।
केशव—वीरसिंहदेव चरित पृ०

विस्तार में इतने उलझे रहे कि अन्य किसी विषय पर प्रकाश डालना, ध्यान देना उनके लिए असम्भव ही सा था। तत्कालीन समाज में नैतिकता के मान शिथिल थे, समाज का प्रत्येक व्यक्ति वर्ग की विलासी संस्कृति का पोषक था। नारी को संभवतः ललित कला तथा संगीत आदि की शिक्षा दी जाती हो। रीतिकाल की शिक्षा का रूप ही भिन्न है, सखी शिक्षा देती है पर मान छुड़ाने के लिए। नारी-धर्म का कोई आदर्श इन कवियों ने प्रत्यक्षतः प्रस्तुत नहीं किया। शिक्षा देना सखी का काम माना गया[1]।

सूफी काव्य में शिक्षा का एक दूसरा रूप भी उपलब्ध है। मातृगृह में स्नान करते समय सखियाँ पति को अपने वश में रखने एवम् नियमित तथा संयमित व्यवहार द्वारा अपने पति तथा ससुराल वालों को मुग्ध करने पर विचार करती हैं। पति की आज्ञापालन और भक्ति से ही जीवन सार्थक हो सकता है[2]। चित्रावली में भी सखियाँ चित्रावली को मधुर भाषण एवम् क्रोध पर संयम रखने की शिक्षा देती हैं। ससुराल में प्रत्युत्तर देने अथवा रोष करने से कुल को अपयश का भागी होना पड़ेगा[3]।

विदा समय पुत्री को उपदेश देने की परम्परा का उल्लेख अभी किया जा चुका हैं, यह परम्परा सूफी तथा रामकाव्य दोनों में ही अपनी सम्पूर्ण मार्मिकता सहित उपलब्ध है। विदा की मार्मिक बेला है, स्नेहपालिता पुत्री स्वजनों से विलग होकर अपरिचित गेह में जा रही है। अपरिचित गेह, अनजाने व्यक्तियों को उसे अपने स्नेहस्निग्ध व्यवहार से अपना बनाना है। बहुत संभव है, उसे नवगृह में विरोध, कटुता, दुर्व्यवहार सहना पड़े, पग-पग पर कुवचन, और अपशब्द उसका स्वागत करें। अतः नारी को विदा होते समय पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए उपयुक्त ही उपदेश मिला है[4]।

---

१. "मंडन अरु शिक्षा करन, उपालंभ परिहास।
काज सखी के जानियो, औरो बुद्धि विलास।।
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० २३३, द्वि० सं० १९३४

२. "माता पिता बियाही सोई। जन्म निबाह पिय सो होई।
भरि जमवर चहै जहँ रहा, जाइ न मेटा ताकर कहा।
ताकह विलंब न कीजै बारी। जो आयसु सोइ पियारी।
चलहु वेग आयम भा जैसे। कंत बोलावै रहिये तैसे।।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२५

३. "बोलत ऊँच सास देइ गारी, ननदी बीच बोल वेवहारी।
रिस आइब राखब जिउ मारी, रिस कीन्हें आवे कुलगारी।।"
उस्मान—चित्रावली पृ० ४६

४. "सकल जन्म नैहर सुख सारा, अब तुम चलहु जहाँ ससुरारा।
कठिन आहि ससुरार की रीती, सोई जान जाहि सिर बीती।

गुरुजन माता पिता, अन्य स्वजनों कथा पुराणों से सुनी हुई जो कुछ भी शिक्षा नारी को मिलती है, उसका सार अपने व्यक्तित्व, आकांक्षाओं को विस्मृत कर अनासक्त भाव से गुरुजनों की सेवा करना है। सूफी कवियों के काव्यों में इस प्रकार के अन्य शिक्षा-वचन उपलब्ध हैं। गृह-परिजन-सेवा, निःशब्द आज्ञा-पालन, सहनशीलता और पातिव्रत का अवलम्ब ही नारी के लिए श्रेयस्कर बताया गया[1]। रामकाव्य में तुलसी ने सीता और पार्वती दोनों को कुलरीति और नारी-धर्म की शिक्षा विदा समय मिलने का उल्लेख किया है। पति के प्रेम और आदर की प्राप्ति ही नारी जीवन की सार्थकता बताई गई। नारी के लिए सबसे बड़ा देव एवम् पूज्य पति ही है, अतः उसका आदेश-पालन ही आनन्द और सौभाग्य का आवाहक है[2]।

नारी जीवन त्याग और उत्सर्ग की अश्रुप्लावित कहानी है, उसके जीवन का मूलमंत्र ही सेवा-मान रहित सेवा-तथा ईर्ष्या द्वेष का परित्याग है। अपने जीवन से राग और द्वेष का परिहार कर उसे सपत्नी के साथ भी सद्व्यवहार करना अपेक्षित है। मानहीन सेवा एवम् क्रोधदमन यह सदनारी के मापमान हैं। इन्हीं

अब तो धरि दुइ मांह पिय लै गौनहि गहि बाँहि।
वचन दुइ एक उपदेशहित, कहौ धरब जिय माँहि॥
सजग रहब गवने ससुरारा, अहितअलेखित हित दुइ चारा।
पर आपन जौ लौ न चिन्हाई, सब सों राखब बदन छिपाई।
ओबरी भा रहब दिन गोई, आंगन होब रात जब होई।
बैसब सदा बार दै पीठी, परै न सौंह आनकी दीठी॥"

उस्मान—चित्रावली पृ० २०३

१. "उतर न देब कहै जो कोई, लाजब रहब चरन तर गोई।
औ चित लाइ करब पिय सेवा, एक पीउ दोउ जग सुखदेवा॥
मंत्र तंत्र साधक जनि कोइ, सेवा एकपीउ बस होई।
जो बस होइ तो गरब न करिये। आप अधीन होइ मन हरिये।

उस्मान—चित्रावली पृ० २२३

२. "करेहु सदा संकर पद पूजा, नारि धरम पतिदेव न दूजा।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली पृ० ४८

"बहु विधि भूप सुता समुझाई। नारि धरम कुलरीति सिखाई।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १४६

"पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं, देई असीस सिखावन देही।
होयेहु संतत पियहि पियारी, चिरु अहिवात असीस हमारी।
सास-ससुर गुरु सेवा करेहू, पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू।
अति-सनेह-बस सखी सयानी, नारिधरम सिखवहि मृदु बानी।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ० १४४

आदर्श रेखाओं पर चल कर वह नारी जीवन की सार्थकता की प्राप्ति कर सकती है[3]। आलोच्य काव्य में नारी को विवाहोपरान्त भी पातिव्रत एवम् स्वधर्म-पालन की शिक्षा दी जाती थी। राम वन-गमन को प्रस्तुत हैं, सुकुमारी सीता उनके साथ जाने को उद्यत, उस समय रामचन्द्र उन्हें सास-ससुर की पदवन्दना, उनकी सेवा ही उत्कृष्ट धर्म बताते हैं[1]।

आलोच्यकाल के साहित्य एवम् आचारशास्त्र सभी की सम्मिलित ध्वनि यही है कि नारी के लिए सबसे बड़ा पुण्य, धर्म और कर्तव्य पतिपूजा ही है। पति द्वारा प्रदत्त यातनाओं और कष्टों को सहना ही श्रेयस्कर एवम् सुख का मूल है[2]। पति-सेवा ही नारी को परमगति प्राप्त करने का सुगमतम् उपाय है। तत्कालीन समाज का पातिव्रत का आदर्श ही समस्त शिक्षावाक्यों का मूल है। माता, सखी, तथा अन्य परिजनों द्वारा प्रदत्त शिक्षा से सुस्पष्ट है कि आलोच्य युग का समाज नारी से आदर्शों के अक्षरशः पालन की अपेक्षा करता था।

---

३. "जिउ दुख दै सेवब सुख त्यागी, सगरी रैन गंवाबब जागी।
सौतिह संग इरखा नहिं करना, साईं संग सदा जिय डरना॥"

× × ×

"अलप मान सेवा अधिक रिस राखब जिय मारि।
जेहि घन मा ये तीन गुन साईं सुहागिनि नारि॥"

— उस्मान—चित्रावली, पृ० २२४

१. "राजकुमारि सिखावन सुनहू, आन भांति जिय जनि कछु गुनहू।
आपन मोर नीकु जो चहहू, बचन हमार मान गृह रहहू।
आयसु मोर, सासु सेवकाईं, सब विधि भामिनि भवन भलाई।
एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा, सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८१

२. "बिनु श्रम नारि परम गति लहहीं, पतिव्रत धरम छाँड़ि छलु गहईं।
पति प्रतिकूल जनम जँह जाई, विधवा होइ पाइ तरुनाई।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २८६

"तुम क्यौ चलौ बन आजु जिन सीस राजतु राज।
जिय जानिबे पति देवा, करि सर्व भाँतिन सेवा।
पति देइ जो अति दुक्ख, मन मानि लीजै सुक्ख।
सब जग जानि अमित्र, पति जान केवल मित्र॥"

केशव—रामचन्द्रिका पंचम संस्करण (भगवानदीन) पृ० १३४
सं० २००१

नारी के विविध पारिवारिक सम्बन्ध

भारतीय संस्कृति में परिवार मानव की भावनाओं, कोमल मनोवृत्तियों, स्नेह एवम् ममता का केन्द्रस्थल होता है। प्रेम और स्नेह, दया और करुणा, त्याग और उत्सर्ग इन सभी उदात्त भावनाओं का प्रस्फुटन परिवार के ममत्वपूर्ण वातावरण में होता है। नारी परिवार का एक विशिष्ट अंग रही है, उसके जननी, जाया, पुत्री, वधू और भगिनी रूप मानव-हृदय की स्निग्ध तरलता से आप्लावित हैं। आलोच्य काल में सामाजिक, साहित्यिक एवम् राजनीतिक क्षेत्र में नारी का कोई उल्लेखनीय स्थान न था। वाह्य आक्रमणों से उत्पन्न अरक्षित वातावरण, मध्ययुगीन अपकर्षोन्मुख मनोवृत्ति तथा रूढ़वादिता ने ऋचाओं की रचना करने वाली गौरवमयी नारी के क्रिया-कलाप केवल गृह की सीमा में केन्द्रित कर दिए। वह सुकुमारी कुसुमकोमला नारी अपनी कमनीयता में ही दुर्बल और पर-निर्भर बन गई। तब भी परिवार में नारी को सतत स्नेह एवम् ममता उपलब्ध होती रही। आलोच्य साहित्य के आधार पर नारी के विविध पारिवारिक सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है।

उस रूढ़िग्रस्त वातावरण में भी पुत्री-जन्म हर्ष और आनन्द का आवाहक माना जाता था[1] तथा कन्यादान पुण्य का प्रतीक समझा जाता था[2]। पुत्र-जन्म अधिक आनन्दप्रद था, किन्तु जन्म के उपरान्त आत्मजा या पुत्री परिवार के स्निग्ध स्नेह एवम् ममता की पात्री होती थी। माता के हृदय की कोमलता, पितृ-हृदय की गम्भीरता उस नयन-पुत्तलिका की भविष्य रेखाओं को पढ़ने को उत्सुक हो जाती। सन्त-साहित्य के गेय रूप में नारी का केवल एक प्रतीक रूप दृष्टिगत होता, उसमें मातृ-हृदय की स्निग्ध कोमलता का वर्णन उपलब्ध नहीं है। किन्तु रामकाव्य, कृष्णकाव्य एवम् सूफी-काव्य के प्राप्त विवरणों से नारी की परिवार में स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

तुलसी के रामचरित में हिमांचल के गृह में कन्या-जन्म होता है। उसके साथ ही सुख और सौभाग्य की परिवृद्धि होती है। नारद मुनि के आने पर पर्वतराज पुत्री द्वारा ऋषि के चरणों की वन्दना करा कर उसके शुभाशुभ जानने की अभि-

---

१. "जब ते उमा सैल गृह आई, सकल सिद्धि सम्पति तहँ छाई।
जहँ तहँ मुनिन सुआस्त्रम कीन्हें, उचित वास हिम भूधर दीन्हें॥"

× × ×

"निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना, सुता बोलि मेली मुनि चरना॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम अध्याय, पृ० ३३

२. "आत्मजा जो होत एक होत सदन उजियार।
कन्यादान दिहै सो होतैं मुकत हमार॥"

नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० ८३, : हिन्दी के कवि और काव्य भाग ३ : गणेशप्रसाद द्विवेदी

लाषा प्रकट करते हैं[१]। ऋषिराज द्वारा यह सुनने पर कि उसे वृद्ध, विरोगी वर मिलेगा, मातृ-हृदय विकल हो उठता है। माता कहती है पुत्री का विवाह सुयोग्य वर से ही करना है, उसके अनुकूल वर न मिलने पर उसे आजीवन कुमारी ही रहने दो[२]। सम्भवतः रामकाव्य के समकालीन आचार-शास्त्र में योग्य वर न मिलने पर पुत्री को कुमारी ही रखने का विधान न था। अविवाहित रहने पर लोक और वंश में निन्दा होती थी, अतः पार्वती-जननी अपनी स्नेहपालिता पुत्री को अयोग्य वर से व्याहने की अपेक्षा उसे लेकर पर्वत से गिरना, अग्नि में जलना, एवम् समुद्र में कूद पड़ना उत्तम समझती है[३]।

केवल जननी का ही वात्सल्य पुत्री के प्रति उत्कट नहीं है, प्रत्युत् पिता का गम्भीर हृदय भी पुत्री के लिए असीम स्नेह से आप्लावित है। पुत्री के विवाह अवसर पर विदा का समय अत्यन्त ही मार्मिक होता है, उस समय पिता के चिर-संचित विवेक एवम् संयम की मर्यादा भंग हो जाती है[४]। सूफी-काव्य में भी इस अवसर पर के हृदयस्पर्शी चित्र मिलते हैं, जिनसे प्रमाण मिलता है कि पुत्री को परिवार में कितना स्नेह एवम् ममत्व प्राप्त था[५]। आलोच्यकाल के नारी के सामान्यतः अधःपतन एवम् उपेक्षा के समय भी पुत्री स्नेह एवम् ममता की पात्री है। योग्य और पुण्यवती पुत्री दोनों कुलों को तारने वाली बताई गई है।

कृष्णकाव्य में सूर ने पुत्री के प्रति माता के असीम स्नेह का वर्णन किया

---

१. "त्रिकालग्य, सर्वग्य तुम, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोषगुन, मुनिवर हृदय विचारि।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३३, १९८० सं० बनारस

२. "पतिहि इकान्त पाइ कह मैना, नाथ न मैं समुझै मुनि बैना।
जौं घरु बरु कुल होइ अनूपा, करिय विवाहु सुता अनुरूपा।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ३५, १९८० सं० बनारस

३. "तुम्ह सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घर जाउ अपजस होउ जग जीवत बिवाहु न हौं करौं।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ४६, १९८० सं० बनारस

४. "सीय विलोकि धीरता भागी, रहे कहावत परम विरागी।
लीन्ह राय उर लाइ जानकी, मिटी महा मरजाद ग्यान की।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १४६

५. "विनती करै राउ औ रानी, वरखहिं नैन सेवाती पानी।
चित्रावलि अब अगसर जाई, तुम जानहु और कुल की बड़ाई।
जात अहो तुम्ह संग लै, हम दुहूँ घट कर प्रान।
आव बड़ाई हेरि के, राखब एहि करि मान।।"
उसमान—चित्रावली, पृ० २२५

है[1]। रामकाव्य में एक वधू के रूप में वह सास और श्वसुर की नयन-पुत्तलिका है। सीता के लिए दशरथ अत्यन्त स्नेहपूर्ण वचन कहते हैं[2]। श्वसुर गृह में वधू और सास के मध्य माता और पुत्री के समान अत्यन्त स्नेहमय सम्बन्ध हैं। वधू सास के प्रति असीम एवम् अपरिमित श्रद्धा रखती और उसकी सेवा को अपना सौभाग्य समझती, सास भी वधू को जीवनाधार समझती है।

वधू सास के समक्ष पति को उत्तर देना अनुचित समझती है, अतः वह प्रथम ही सास से क्षमायाचना कर लेती है, पुनः उनकी चरण वन्दना कर सेवा में असमर्थ होने को अभाग्य बताती है[4]। तुलसी की आदर्शवादी मनोवृत्ति के कारण मानस में नारी के विविध पारिवारिक सम्बन्ध भी त्याग और ममता से पूर्ण हैं। देवर-भाभी का सम्बन्ध भी स्नेह और ममता का प्रतीक है। देवर के लिए भाभी मातृ तुल्य है एवम् असीम श्रद्धा तथा आदर की पात्री है। भाभी भी अपने हृदय की मंगल कामनाओं का कोष उसके ऊपर बिखरा देना चाहती है[5]। सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सीता को माता मानते हैं। सीता के राम की आर्त्त वाणी सुनने पर उनकी

---

१. "राधा डरडराति घर आई।
देखति ही कीरति महतारी, हरषि कुंवर उर लाई।
धीरज भयौ सुता माता हिय, दूरि भयौ तनु सोच,
मेरी को मैं काहे त्रासी, कहा कियौ यह पोच।।"
सूर—सूरसागर द्वितीय भाग, पृ० ६४२, पद २०१५।२६३३

२. "बधू लरकिनी पर घर आई, राखेउ नयन-पलक की नाईं।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १५२
"लिए गोद करि मोद समेता, को कहि सकै भयेउ सुख जेता।
बधू सप्रेम गोद बैठारी, बार बार हिय हरषि दुलारी।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १५२

३. तात सुनहु सिय अति सुकुमारी, सास ससुर परिजनहिं पियारी।
नयन पुतरि करि प्रीति बड़ाई, राखेउ प्रान जानकिहि लाई।
कलप बेलि जिमि बहु विधि लाली, सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १८०

४. "तब जानकी सासु पग लागी, सुनिय मात मैं परम अभागी।
सेवा समय दैव बन कीन्हा, मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा।।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० १८४

५. "सानुज भरत उमगि अनुरागा, धरि सिर सियपद-पदुम-परागा।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए, सिर करकमल परसि बैठाए।
सीय असीस दीन्ह मन माहीं, मगन-सनेह देह सुधि नाहीं।
सब विधि सानुकूल लखि सीता, भै निसोच उर अपडर बीता।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २५१

आज्ञानुसार लक्ष्मण को कुटी तज कर चले जाना पड़ता है पर जनकजा का असीम स्नेह उन्हें बारम्बार पीछे घूम कर देखने को विवश कर रहा है[१] । गृह तथा बन दोनों स्थानों में सीता सासों की यथाशक्ति सेवा करती रहती है, राजतिलक होने पर भी कौशल्यादि सासों की निरभिमान सुश्रूषा करती रहती है[२] ।

सूफी-काव्य में माता के घर नारी अवश्य स्नेह और आदर, ममता और वात्सल्य की पात्री है। पर श्वसुरालय की कल्पना, ननद, सास के कटु व्यवहार को लिए हुए है । पितृ-गृह सुख का आवास है, जब तक पुत्री माता-पिता के वात्सल्य की मधुमयी छाया में है तभी तक वह अपने इच्छानुकूल खेल-कूद और आमोद-प्रमोद का उपभोग कर सकती है । पुनः उसे ससुराल जाना होगा, जहाँ की दुखद, भयपूर्ण कल्पनाएँ उसके वर्तमान को भी दुखित कर देती हैं, वहाँ गुरुजनों की लज्जा और भय प्रतिक्षण रहेगा, ऊँचे स्वर से बोलने पर सास गाली देगी, ननद कटु व्यंग्य करेगी। समस्त दुख और क्रोध को संयमित कर मौन व्रत का अवलम्बन श्रेयस्कर होगा[३] । संभव है तुलसी की पारिवारिक जीवन एवम् विभिन्न सुख सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की भावना कल्पना पर आधारित हो तथा सूफी-काव्यों में प्रस्तुत चित्र यथार्थ का अंकन करता हो । श्वसुरालय के लिए यह भय और आतंक उस्मान और जायसी दोनों में ही उपलब्ध है[४] ।

सूफी-काव्यों में भी, चित्रावली में सास और वधू के मध्य संवेदनात्मक स्नेहपूर्ण सम्बन्ध का आभास मिलता है[५] । इन अनेक पारिवारिक सम्बन्धों में सपत्नी का

---

१. "बन-दिसि-देव सौंपि सब काहू, चले जहाँ रावन ससि राहू।
चितवहि लखन सीय फिरि कैसे, तजत बच्छ निज मातुहिं जैसे ।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ३०९

२. "सीय सासु प्रति वेष बनाई, सादर करहि सरिस सेवकाई ।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० २५५

३. "पुनि सासुर हम गौनब काली, कित हम कित यह सरवर पाली ।
कित आवन पुनि अपने हाथा, कित मिलिके खेलब इक साथा ।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं, दारुन ससुर न आवै देहीं ।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, माताप्रसाद गुप्त, पृ० १५६

४. "कठिन रहब ससुरे कर आहै, तबहीं कुशल कंत जब चाहै ।
सकुचहि ते बीती पल जेती, छूटत न छिन अंचल कर सेती ।
लाज आस पुनि गुरुजन केरी, सौंह न सकब काहु तरेरी ।
बोलत ऊँच सास देइ गारी, ननदी नीच बोल बेवहारी ।
रिसि आइहि राखब जिउ मारी, रिसि कीन्हें आवै कुल गारी ।"
उस्मान—चित्रावली, जगन्मोहन सक्सेना, पृ० ४६

५. "मानिक मोती भरि भरि थारा, नेवछावरि साजै परिवारा ।
चित्रावली लै मंदिल उतारी, औ पुनि संग कौलावति वारी ।

सम्बन्ध भी है। आलोच्य काल में समाज में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। पुरुष अनेक विवाह कर सकता था तथा रक्षिताओं को प्रश्रय दे सकता था, फलतः परिवार में सपत्नियों में संघर्ष और द्वेष की भावना स्वाभाविक रूप से पलती थी। सूफी-काव्य पद्मावत में पद्मावती और नागमती में कटु वाद-विवाद एवम् व्यंग्यात्मक संवाद होता है, अन्त में रत्नसेन उनका समाधान करता है[1]।

चित्रावली में सपत्नी के उल्लेख मात्र से चित्रावली ईर्ष्या के वशीभूत हो जाती है[2]। कौलावती आदर्श सपत्नी है जो द्वेष की भावना का परित्याग कर चित्रावली एवम् सुजान के सुख-सौभाग्य के लिए प्राणोत्सर्ग को तत्पर है। इस स्नेहमय व्यवहार से दोनों सपत्नियाँ स्नेहमयी भगिनी बन जाती है[3]।

नारी के विविध पारिवारिक सम्बन्धों पर एक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि परिवार में नारी का स्थान आदरणीय था। रीति-कवियों ने केवल प्रेमी-प्रेमिका अथवा पति-पत्नी के सम्बन्ध का वर्णन किया है। परिवार के सदस्यों के मध्य की सद्भावना, विविध पारिवारिक सम्बन्धों में नारी के सत्रूपों के विकास

सासु चरन लागी दोउ आई, रानी गहि दुहूँ अंक में लाई।
फिरि फिरि आंचर डारै रानी, चन्द सूरज अपने घर जानी।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २३६

१. "लाजनि बूड़ि मरसि नहिं ऊभि उठावसि माँथ।
हौं रानी पिउ राजा तो कहँ जोगी नाथ॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४१४

"तुम्ह गंगा जमुना दुइ नारी, लिखा मुहम्मद जोग।
सेवा करहु मिल दूवहूं, औ मानहु सुख भोग॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ४१७

२. "सौति संग सालै जनु काँटा, अंग अंग लागै जनु चाँटा।
सुलगी उरध आगि सन सेजा, औटि होइ जल रकतकलेजा।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २२९

३. "चित्रिनि कहँ आई गुनभरी, वदन विलोकि पाउँ लै परी।
कहिसि कि हौं अपराधिनि तोरी, करहु छोह सुन विनती मोरी।
रहै सदा तुअ सीस पर सेन्दुर भाग सोहाग।
हौं समदति हौं चरन गहि इहै मोर अनुराग।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २३१

"कहिसि कि तजौ सौत कर नाता, मोरि तोरि एकै जनु माता।
हौं जिउ देऊँ रहउँ तुम दोऊ, मोरे मुये होइ सो होई॥"

उस्मान—चित्रावली, पृ० २३१

• "उद्धरण संख्या अध्याय ८, प्रकरण २, सूफी-काव्य में भी दिए गये हैं।"

की ओर उनकी दृष्टि ही नहीं उन्मुख हुई। बिहारी ने नारी के एक दो पारिवारिक सम्बन्धों का उल्लेख अपनी सतसई में किया है, किन्तु वह भी विलासिता से पंकिल है। कुलवधू का रूप अवश्य उज्ज्वल दृष्टिगत होता है, वह अपने परिवार की मर्यादा, उसमें फूट बचाने के लिए स्वयं देवर की अनुचित इच्छा का विरोध करती हुई, मौन यातना की भागिनी बनती है[1]। देवर-भाभी का पुनीत सम्बन्ध, जो तुलसी की आदर्श भावना और रामकथा का आश्रय पाकर माता-पुत्र-सीता-लक्ष्मण के पुनीत रूप में हमारे समक्ष आता है, वही बिहारी की सतसई में अनुचित हो जाता है[2]। प्रायः अन्य रीतिकवियों में सास, ननद आदि का उल्लेख आता है, वह नायिका के उनसे छिपा कर सहेट में जाने के अवसर पर।

नारी के पारिवारिक सम्बन्धों के द्वारा भी आलोच्य काव्य के कवियों के काल में नारी की स्थिति आदि पर भी थोड़ा सा प्रकाश पड़ता है। काव्य के प्रकाश में नारी को परिवार में स्नेह, ममता, आदर और सम्मान उपलब्ध था। पुत्री, पत्नी माता आदि विविध सम्बन्धों में वह आदर एवम् स्नेह की पात्री थी।

नारियों की केलि-क्रीड़ाएँ और उनकी स्थिति पर प्रकाश

आलोच्यकाल में नारी की प्रतिभा-विस्तार का क्षेत्र गृह की क्षुद्र सीमा ही रह गया था। वैदिक काल की उषा सी स्वच्छन्द नारी सामाजिक बन्धनों की शृंखला में बद्ध हो गई। जैसा कि द्वितीय अध्याय में बताया जा चुका है आलोच्य काल की परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों, सामन्ती विचारधारा पर आधारित जीवन-दर्शन में नारी केवल एक उपकरण, पुरुष की कामना पूर्ति का एक साधन-मात्र रह गई। इस नवीन सामाजिक संगठन में नारी का कार्यक्षेत्र गृह ही रह गया था, अतः उसका मनोरंजन एवम् केलि-क्रीड़ाएँ गृह में केन्द्रित रह गई। सामाजिक एवम् सांस्कृतिक मनोरंजन अथवा क्रीड़ा के समारोहों में उसका भाग न्यून ही रह गया। ऋग्वेद काल के सवन[3] की भांति कोई ऐसे उत्सव की आयोजना न होती थी जहाँ स्त्री-पुरुष समभाव से सम्मिलित हो सकें। परन्तु यत्र-तत्र साहित्य में बिखरे हुए उदाहरण मिलते हैं जब स्त्री-पुरुष सम्मिलित रूप से फाग खेलते हैं, अथवा जल-क्रीड़ा करते हैं।

---

१. "कहत न देवर की कुबत कुल-तिय कलह डराति।
पंजर-गत मंजार-ढिग सुक ज्यौं सूखत जाति॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ४०, दो० ८५

२. "और सबै हरषी हँसति, गावति भरी उछांह।
तुही, बहू, बिलखी फिरैं, क्यों देवर के व्याह॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४८, दो० ६०२

३. भगवतशरण उपाध्याय—विमेन इन ऋग्वेद, पृ० १८५, १९४२ बनारस

आलोच्य काल के साहित्य में स्त्रियों की केलि-क्रीड़ाओं में जलक्रीड़ा, फाग, झूला, वीणावादन, संगीत, शुक-सारिका पढ़ाना, आँखमिचौनी अथवा चोर मिहींचिनी खेलना इत्यादि हैं। इनकी फाग आदि क्रीड़ाएँ सम्मिलित रूप से होती हैं। सन्तों के प्रतीकात्मक काव्य में फाग और हिंडोला आध्यात्मिक है। आत्मा-दुलहिन अथवा प्रेयसी असीम प्रियतम के साथ आध्यात्मिक होली खेलने को उत्सुक है। उस आध्यात्मिक होली के रंग से उसका तन मन भीग जावेगा। नदी के उस पार पड़े हुए हिंडोले में वह नित्य कन्त के साथ झूलती है[1]। सूफी-काव्य में नारी की केलि-क्रीड़ाओं अथवा मनोरंजन के साधनों में जल-क्रीड़ा मुख्य है। पद्मावत, इन्द्रावत और चित्रावली तीनों ही काव्यों में सरोवर खण्ड में नायिकाएँ अपनी सखियों सहित सरोवर में जल-विहार करती है और इस जलक्रीड़ा के मध्य ही आँखमिचौनी खेलती अथवा हार को जल में फेंक कर सभी सखियाँ ढूंढ़ती हैं। इन्द्रावती में राजद्वीप की सभी पुत्रियाँ पिता के स्नेहमय राज्य में जल-क्रीड़ा करती हैं[2] कौलावती आदि यह सूफी नायिकाएँ ममता और स्नेह वैभव और ऐश्वर्य के मध्य पालित-पोषित होती हैं। दुख और दैन्य से अपरिचित निर्द्वन्द्व जीवन में वह कभी गेंद खेलती हैं, अथवा चित्र-लेखन करती है[3]। इन्हीं केलि-क्रीड़ाओं

१. "सतगुरु हो महाराज, मोपै साईं रंग डाला।"

कबीर—कबीर वचनावली, पृ० १३८

"दरिया पारि हिंडोलना, मेल्या कन्त मचाइ।
सोई नारी सुलषणी, नित-प्रति झूलण जाइ॥"

कबीर—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, पृ० ८१

२. 'हौं छिपाऊँ एहि सरवर माहीं, तुम खोजहु कोऊ पावहु नाहीं।
मोहि खोजत जो आइ उचावै, हारउँ बचन माँग सो पावै॥
बाएँ घाट गहिर जल जानी, तहँ छपि रहीं कौंल गहि पानी।
काहु न जाना केहि दिसि गई, सरवर मथन करत सब भई॥"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ४०

"बोलिन राजदीप की वारी, आवहु जल मा रचौं धमारी।
जब लग सीस पिता की छाँहा, खेलहि कोई नाहीं जग माहाँ॥"

नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० १०४

"तीर धरिन सब चीर उतारी, धाइ धँसी सब तीर मँझारी।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ४७

"लागी केलि करै मँझ नीरा, हंस लजाइ बैठ होइ तीरा।
पदुमावती कौतुक करि राखी, तुम्ह ससि होइ तराइन साखी॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १६१

३. "साजि गेंद कौलावति रानी, सखी एक कहँ मारि परानी।
हँसति आव धाय'कै तहँवाँ, कुँवर सुजात बैठ हुत जहँवाँ॥"

उस्मान—चित्रावली, प० १२

से उनके जीवन में नवीनता एवम् जीवन का उन्मेष होता है। इन छोटी-छोटी हास-परिहासमय क्रीड़ाओं का नारी के जीवन में बहुत महत्त्व रहा है।

रामचरित मानस में.नारियों की केलि-क्रीड़ाओं का उल्लेख नहीं मिलता है, पर गीतावली में पुरुष और नारी की जलक्रीड़ा, फाग खेलने के प्रसंग मिलते हैं[1]। राघो ने अपनी प्रजा के प्रमोद के लिए सुन्दर हिंडोले डलवा दिए हैं। उन हिंडोलों में कलात्मक सौन्दर्य का भी उच्चतम उदाहरण उपलब्ध है। श्रावण मास की सुखद रिमझिम में जब प्रकृति और प्राणी दोनों ही प्रफुल्लित हैं, उपयुक्त समय जानकर, रूप गुण और यौवन सम्पन्न नारियों का समूह हिंडोला झूलने जाता है[2]।

बसन्त के मादक सौरभश्लथ वातावरण में राम अनुज सहित झोली में अबीर और हाथ में पिचकारी लिए फाग खेलते हैं। मृदंग आदि विविध वाद्य यन्त्रों की मधुर ध्वनि में जानकी युवती समूह को लिए सस्वर पांचरि और झूमक का गान करती हुई फाग के आघातों का प्रत्युत्तर देती हैं[3]।

केशव से काव्य में दरबारी प्रभाव के कारण नारी की केलि-क्रीड़ाओं का उल्लेख पर्याप्त मिलता है। विपिनवास में संगीत में निपुण सीता वीणा-वादन द्वारा दुख और खेद को दूर कर प्रियतम के चित्त का प्रसादन करती हैं[4]। तत्कालीन

---

१. "समय विचारि कृपानिधि देखि द्वार अति भीर
खेलहु मुदित नारि-नर बिहँसि कहेउ रघुबीर
नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु
देखि रामछवि अतुलित उमगत उर अनुरागु।"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४२४, गीतावली, पद सं० २१

१. "सो समौ देखि सुहावनौ, नवसत सँवारि-सँवारि।
गुन-रूप-जोबन सींव सुन्दरि चली झुँडनि झारि॥"

× × ×

"झूलहिं, झुलावहिं ओसरिन्ह गावैं सुहौ गौड़ मलार।
मंजीर-नूपुर-वलय-धुनि जनु काम करतल तार॥"

तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४२१-२२' पद १८

२. "सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ, झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ।
बाजहिं मृदंग, डफ ताल बेनु, छिरकैं सुगन्ध भरे मलयरेनु।
उत जुवति-जूथ जानकी सँग, पहिरै पेट भूषन सरसरंग।
लिए छरी बेंत सोधैं विभाग, चाँचरि झूमकि कहैं सरस राग।
नूपुर-किंकनि-धुनि अति सुहाई ललनागन जब जेहि धरइँ धाइ।
लोचग आँजहिं फगुहा मनाइ, छाँड़इ नचाइ हा हा कराइ॥"

तुलसी— तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ४२६ पद २२

४. "जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना, बहुगुन लीला सुख सीला।
प्रिय जियहि रिझावै दुखन भजावै विविध बजावै गुन लीला॥"

केशव—रामचन्द्रिका- पूर्वार्द्ध, पृ० १७३, सं० २००१ प्र० स०

राजदरबारों में नारी की प्रतिभा और कला पुरुष की विलासिता और मनोरंजन अंग थी। का केन्द्र थी। अन्त:पुर की साज-सज्जा और विलास वस्तुओं की शोभा का वह एक इसी मनोवृत्ति के कारण दरबारी कवि केशव ने पुरुषोत्तम राम को अनेक नारियों के साथ क्रीड़ा करते चित्रित किया है। पन्नगी, नगी, एवम् सुर-असुरों की नारियां विविध वाद्ययन्त्रों पर अनेक प्रकार के भजन आदि का गान करती हैं। संगीत भी नारियों के मनोरंजन का एक साधन रहा होगा। हिंडोले पर संगीत की मृदु लहरी के साथ झूलना भी नारियों की केलि-क्रीड़ाओं में से था[१]। रामचन्द्र अनेक स्त्रियों के साथ जल-विहार करते हैं, नारीगण जल में विविध क्रीड़ाएँ करती हैं। इस जल-क्रीड़ा में पूर्ण सहयोग दे, स्त्रियों सहित वह जल से निर्गत होते हैं[२]।

कृष्णकाव्य में ब्रज का वातावरण अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द है। सामाजिक बन्धन एवम् परम्परा उनके जीवन को बहुत कम प्रभावित कर पाए हैं। ब्रज का वातावरण सामन्ती परम्परा के प्रभाव से परे उन्मुक्त है। वहाँ नारी पर्दा की अनुगामिनी नहीं है, प्रत्युत् ग्राम के इस वातावरण में वह स्वच्छन्द विहार तथा क्रीड़ाएँ करती है। समाज के प्रतिबन्ध तथा मर्यादाएँ वहाँ हैं तो अवश्य, परन्तु उनका अक्षरश: पालन नहीं होता। आलोच्य साहित्य के कृष्णकाव्य में राधा एवम् गोपीगण कभी यमुना में जलविहार करती हैं, कभी कृष्ण के साथ हिंडोला झूलनी हैं और कभी प्रेम और यौवन की मादकता में मत्त होकर कृष्ण के साथ होली खेलती हैं। कालिंदजा के तीर पर ब्रजांगनाओं के साथ राधा रानी स्नान करती हैं।

---

१. "पन्नगी नगी कुमारि, आसुरी सुरी निहारि
विविध किन्नरीन किन्नरी बजाव
मानों निष्काम भक्ति शक्ति अप आपनीस
देहन धरि प्रेमन भरि, भजन भेद भावैं।"

केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, भगवानदीन, पृ० १२७, तृ० सं०

"शुभ्र हीरन को सुआँगन है हिंडोरा लाल।
सुन्दरी तहँ झूलहि प्रतिबिम्ब के तहँ जाल॥"

केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, भगवानदीन, पृ० ४३

२. "एक दमयन्ती ऐसी हरैं हरि हंस वंश
एक हंसिनी सी विसहार हिये रोहिणी।
भूषण गिरत एकै लेती बूड़ि बीचि बीच
मीन गति लीन हीन उपमान टोहियो।
क्रीड़ा सरवर में नृपति कीन्हीं बहु विधि केलि
निकसे तरुणि समेत जनु सूरज किरण सकेलि॥"

केशव—रामचन्द्रिका, उत्तरार्द्ध, भगवानदीन, पृ० १९५

उसी स्नान के मध्य वह एक दूसरे को पकड़ती हैं, तथा पानी उछालती हैं[1]। प्रेम और संयोग के मदोन्मत्त क्षणों में राधा और सकल ग्वालिनी घर-घर फाग खेलती फिरती हैं, उनमें अनन्त सुहागमयी राधा सबसे अधिक प्यारी है, वह समूह बनाकर नंद द्वार पर झूमक गाती घूमती है[2]। कृष्ण ब्रजबालाओं के साथ हिंडोला झूलते हैं[3]। रास के समय कृष्ण-राधा तथा अन्य गोपियों का यमुना में जल-विहार करने का भी उल्लेख सूरसागर में मिलता है, संभवत: उस समय जल-क्रीड़ा बहुत प्रचलित थी[4]।

आलोच्यकाल के रीति एवम् वीर-काव्य में वातावरण एकसा ही था। राजा और प्रजा दोनों ही आकंठ विलास में लीन थे। तत्कालीन शिष्ट समाज का कोई आदर्श न था, वातावरण में विलासिता व्याप्त थी। उस निश्चिन्त वातावरण में समाज का ध्येय खेलना और खाना और मस्त पड़े रहना ही था। नवाबी प्रभाव से

---

१. "गई ब्रज नारि जमुना तीर
संग राजति कुँवरि राधा भई शोभा भीर,
देखि लहर तरंग हरषीं, रहत नहिं मन धीर
स्नान को वे भई आतुर सुभग जल गंभीर,
एक एकहि धरति, भुज भरि एक छिरकति नीर
सूर राधा हँसति ठाड़ी भीजी छवि तनु चीर॥"

सूरदास—सूरसागर, सूर समिति, पृ० ८६२, १७५२।२३७०

"राधा जल बिहरति सखियन संग
ग्रीव प्रजंत जल में ठाड़ी छिरकति जल अपने अंग।"

सूर—सूरसागर, सूर समिति, पृ० ८६२, १५५३।२३७१

२. "गोकुल सकल गुवालिनी, खेलत घर-घर फाग।
भमोरा झूमक रो
तिनमें राधा लाड़िनी जिनकौ अधिक सुहाग
झुंडन मिलि गावत चलीं झूमत नन्द दुवार।

सूर—सूरसागर, पृ० १२३०, २८६४।३५१२

३. "झूलत मदन गोपाल हिंडोलना।
नवल नवल ब्रजनारिन संग कलोलना॥"

गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी (पदावली), पृ० ८६

"स्याम संग खेलन चली स्यामा, सब सखियन को जोरि
चंदन अगर कुमकुमा केसरि, बहु कंचन घट छोरि।"

सूर—सूरसागर, दशम स्कन्ध, पृ० १२४०, प्र० २६०७।३५२५

४. "जमुना जल क्रीड़त नन्द नन्दन।
गोपी वृन्द मनोहर चहुँदिसि मध्य अरिष्ट निकन्दन॥"

सूर—सूरसागर, दशम स्कन्ध, पृ० ६५६, १५५८।१७७६

पुरुष जहाँ तीतर लड़ाते, पतंग उड़ाते, कबूतर उड़ाते, ताश और गंजीफा, शतरंज और चौपर खेलते, साँड़ों की लड़ाई देखते, वहाँ स्त्रियाँ भी गृह के विलासपूर्ण वातावरण में अकर्मण्यता से ताश गंजीफा, शतरंज, चौसर, पतंग, सुग्गा-मैना पढ़ाने तथा कहने, काव्य विनोद तथा वाद्ययन्त्रों के वादन में समय व्यतीत करतीं। इनमें से कुछ ही मनोरंजनों के उदाहरण आलोच्य साहित्य में प्राप्त है।

केशव दीर्घकाल तक वैभवपूर्ण दरबारी वातावरण में रहे थे, अतः उनके काव्य में इन शिष्ट नागरिक मनोरंजनों का विवरण अधिक मिलता है। केशव के 'वीरसिंह देव चरित्र' में वीरसिंह देव के महल में अनेक स्त्रियाँ हैं, वह अनेक प्रकार के मनोविनोद करके कालयापन करती हैं। कोई शृंगार करती है, कोई सुक और सारिका पढ़ती है, कोई वृक्षों को जल से सींचती है, कोई पुष्प चयन करती है, कोई मोर चुगाती है[1]। राजा अनेक तरुणियों सहित जलक्रीड़ा करते हैं[2]। दरबारी वातावरण में पले हुए कवि केशव ने नारियों के शतरंज खेलने का उल्लेख कई स्थानों पर किया है। वृषभानु-कुमारी अपने सखीवृन्द में बैठी चौपर खेलती हैं[3]।

रीतिकालीन शृंगारी कवियों में स्त्री-पुरुष आपस में आँख-मिचौनी भी खेलते थे। मतिराम की नायिका नायक के साथ पिछले दिवस के समान चोर मिहींचनी खेलती है। राधा और नंद-किशोर अन्य सखियों के साथ 'मिहींचनी' की क्रीड़ा करते हैं। परस्पर क्रीड़ा विनोद के लिए बारम्बार वही दोनों आँख-मिचौनी के चोर होते हैं[4]। रीति युग के नागरी वातावरण में घर-घर फारसी सभ्यता के प्रभाव से विलास की

---

१. "कोऊ उर सींचति, तरुमूल, कोऊ तोरत फूले फूल।
एकै चतुर चुगावति मोर, लीनै सारी सुक चितचोर॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६८

२. "भीजै वस्त्रनि सौं तिहि काल, तिनमें छूटत जल कन जाल।
पल पल मिलि कीजै बहु भोग, सदन करतु जनु वियोग॥"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, पृ० २६२

३. "बैठी हुती ब्रजनारिन में बनि श्रीबृषभानु कुमारी सभागी।
खेलत ही सखी चौपर चाल भई तिहि खेल खरी अनुरागी॥"
केशव—केशव पंचरत्न, दीन सम्पादित, पृ० १०

४. "खेलन चोर भिहीचनि आजु, गई हुती पाछिलै द्यौस की नाई।"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० २०६
छुवत परस्पर हेर के, राधा नन्द किसोर।
सबने वेई होत है चोर भिहचनी चोर॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० ४५५
"लाल तिहारे संग में खेले खेल बलाइ।
मूँदत मेरे नयन हौं करन कपूर लगाइ॥"
मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० २०६

अलस छाया छाई थी। कहा जा चुका है कि गृहों में नारी शतरंज और गंजीफा, ताश, चौसर आदि खेलती थीं। देव के काव्य में नारी अपनी सखियों के साथ शतरंज खेलती हैं। बिहारी की नायिका भी नायक के संग जलक्रीड़ा करती है[1]। इन क्रीड़ाओं के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण-काव्य तथा कुछ अन्य अपवादों को छोड़ कर नारी की समस्त केलि-क्रीड़ाएँ गृह में केन्द्रित थीं। इन केलि-क्रीड़ाओं में भी, प्रायः सम्मिलित क्रीड़ाओं में, नारी विलास-पूर्ति के साधन रूप में ही प्रस्तुत हुई है।

नारी-सौन्दर्य

सौन्दर्य में मानव मन को विमुग्ध कर, उसमें विविध भाव-तरंगों को उद्वेलित करने की क्षमता है। सौन्दर्य का पारखी पुरुष, प्रकृति के प्रत्येक कण में उसका अन्वेषण करता है। प्रकृति के विश्व-विमोहन रूप के साथ ही नारी की सुन्दरता, उसके विविध अंगों की कमनीयता ने कवि के काव्य में व्यंजना पाई है। प्रत्येक युग, देश और जाति के साहित्य में कामिनी की कान्ति, षोड़शी की शोभा, सुकुमारी की मनोहरता काव्य का विषय बनी, उसके वर्णन के दृष्टिकोण में चाहे विविधता और अन्तर रहा हो। आलोच्य साहित्य में भी नारी-सौन्दर्य का चित्रण मिलता है। यह परम्परा संस्कृत से आगत है। महाकवि कालिदास ने जगत के माता-पिता के शृंगार के मध्य पार्वती के रूप का वर्णन किया है। अध्यात्म रामायण में भी स्वयंवर के अवसर पर की सीता की छवि का विवरण है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में पृथ्वीराज रासो में सौन्दर्य का चित्रण उपलब्ध है। सन्तों ने नारी को कामिनी रूप में ही देखा है, अतः उसका रूप और सौन्दर्य सुकुमारता और मोहकता उनके लिए घृणास्पद और कुरूप थी। अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त उपमाओं का ही प्रयोग कर सन्त कवि सुन्दरदास ने उसको अत्यन्त घृणित, भय का कारण बताया[2]। अन्य सन्त कवियों ने नारी का वर्णन उसकी भर्त्सना एवम् तिरस्कार के लिए ही किया। स्वयं को 'अविनाशी की बहुरिया' मान कर, नारी

---

१. "लै चुभकी चल जात जित जित जल केलि अधीर।
कीजति केसरि नीर से तित तित केसरि नीर॥"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ६७, दो० १५२

छिरके नाह नवोढ़ दृग कर पिचकी जल ओर।
रोचन रंग लाली भई बिय तिय लोचन कोर॥"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ६८, दो० १५३

२. "कामिनी के देह मानो कहिए सघन बन
उहाँ कोऊ जाइ सुतौ भूलिकै परतु है।
कुँजर है गति, कटि केहरि को भय जामैं
बैनी काली नागिनीऊ फन कौ धरतु है।
कुच है पहार, कामचोर रहैं जहाँ
साधिकै कटाक्ष बान प्रान कौं हरतु है।

के स्नेह-स्निग्ध समर्पण, उसके अन्तर की उत्कट प्रेमाभक्ति का आभास तो दिया, किन्तु उसके सौन्दर्य के विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा।

सूफी-काव्य में नारी-सौन्दर्य का चित्रण पर्याप्त एवम् नग्नरूप में मिलता है। वस्तुतः रूपक की व्याख्या के अनुसार पुरुष रूपी साधक नारी रूपी परमात्मा के जमाल, उसके सौन्दर्य का वर्णन सुनकर ही उसके लिए पागल हो उठता है। अतः सूफी-कवियों ने नारी के नख-शिख और सौन्दर्य की विशद व्याख्या की। पद्मावत, इन्द्रावत, चित्रावली, मधु-मालती, माधवानल-कामकंदला आदि सभी सूफी-काव्यों में नायिकाओं के रूप और नख-शिख के वर्णन में प्रचलित और अप्रचलित उपमानों का प्रयोग हुआ है। रूपक अथवा सूफी सिद्धान्तों के कारण इन सौन्दर्य चित्रणों में अलौकिकता का भी समावेश हुआ है। इन कवियों ने समस्त नारी अंगों-कपोल, नयन, नासिका, कान, केश, अधर, दांत, ग्रीवा, वक्ष, जंघा, त्रिवली, बांह, उँगली, पैर, कटि आदि का पृथक-पृथक चित्रण किया है। मुख में सबसे पहले केशों का वर्णन हुआ है, केशों की कवियों ने अन्धकार, बादल, नदी आदि से उपमा दी है किन्तु सर्वप्रिय उपमा लहराते हुए लम्बे केशों की सर्प से समानता दिखलाना ही है। जायसी एवम् मंझन ने केशों की विषभरे सर्पों से उपमा दी है[1]। सुदीर्घ कृष्ण केशराशि के मध्य सुशोभित मांग की श्वेत रेखा को उन्होंने बादल में बिजली, कालिन्दी में कनकरेखा बताया[2]। मुख में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले नयनों को खंजन की जोरी एवम् मछली से उपमा योग्य कहा गया[3]।

सुन्दर कहत एक और अति डर तामैं
राक्षस बदन षाऊँ षाऊँ ही करतु है।"
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ४३७

"सुन्दर कहत नारी नख शिख निंद रूप
ताहि जै सराहैं तेतौ बड़ेई गँवार हैं।"
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ४३९

१. "विसहर लुरै लेहि अरधानी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) १९५३ पृ० १८५
"गरल भरी विषधर हत्यारी।"
मंझन—मधुमालती

२. "जनु घन महँ दामिनि परगसी।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० १८६
"यमुना तीर कनक जनु आई।"
सूर—नलदमन, पृ० ३४

३. "वर कामिन चष मीन सम निमिष हेर तन जाहि,
बहुरि जनम भरि मीन जिमि, पलक न लागै ताहि।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० ७१

दोनों कपोलों की नारंगी से उपमा दी गई। नयन की शोभा-वर्द्धन में भृकुटी का महत्त्वमय स्थान उनकी सुन्दरता एवम् वंकिमता में ही है[1]। जायसी की नायिका के रतनारे अधरों के समक्ष वन्धूक का फूल तुच्छ है[2]। उसकी कटि पृथ्वी में अपने सौन्दर्य में एक ही है। उस्मान को उँगलियाँ मूंगे की बेल के सदृश दृष्टिगत होती हैं। वरन् उनमें मूँगे के सदृश कठोरता न होकर मूँगफली सी कोमलता है[3]। इन्द्रावती की कटि केश के समान पतली है, चरणों पर जंघा कमल पुष्प पर श्वेत रंग वाले केले के खम्भे की सुडौलता में शोभित है। समस्त सौन्दर्य के लक्षण उसमें विद्यमान हैं[4]। कपोल पर शोभा पाती हुई केश की लट की उपमा धन पर दृढ़तापूर्वक रक्षण के लिए स्थापित नाग से दी है[5]।

इन कवियों ने अपनी नायिकाओं के रूप में अलौकिकता का वर्णन किया। पद्मावती के नयनवाणों से संसार विद्ध हो जाता है, चित्रावली का मुखचन्द्र विश्व को आलोकदान देता है, अधरों का अमृत प्राणदाता है। नूर मुहम्मद की इन्द्रावती ऐसी लावण्यमयी है कि बिना देखे ही सब उसकी सराहना करते हैं, उसके मुख

"सुमर समुद्र नैन दुइ मानिक भरे तरंग।
आवत तीर जाहिं फिरि काल भँवर ते संग॥"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १८८

१. "कँवल कपोल गोल अति बने।"

सूर—नलदमन, पृ० ४०

"भौहें स्याम धनुक जनु ताना, जासै हेर भार विख बाना।"

जा० ग्र० पृ० १८७

"वरुनी का बरनौ इमि बनौं, साधे बान जानु दुइ अनी।"

जा० ग्र०, पृ० १८८

२. "अधरौ सुरँग अमिय रसभरे, बिंब सुरँग लाजि बन फरे।"

जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १६० : गुप्त :

३. "विद्रुम बेलि सों आगुरी दी भी, वह कठोर यह मूँगफली सी।"

उस्मान—चित्रावली, पृ० ७५

४. "पातर लँक केस की नाई, ताही सो सिरजा जग साईं।
जँघ चरन सो आचम्भो है रम्भा खम्भ कमल पर सोहै।
सुन्दरता को लच्छन क्रेते प्यारी चेरे तेरे तेते।
लट कुँतल अति स्यामल आहै, भौंह स्याम जेहि इन्द्र सगाहैं।"

× × ×

"ललित कपोल गुलाब लजाहीं, जग मन मधुकर सम लोभाहीं।"

नूर मुहम्मद—इन्द्रावती : हिन्दी के कवि और काव्य : पृ० १०४

५. नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० १०५

खोलने से उषाकाल और केश निर्बन्ध करने से सायंकाल हो जाता है[1]।

इन सूफी कवियों ने शुभ्रदन्त पंक्ति की उपमा हीरे, बिजली आदि से दी है, अधरों की बंधूक पुष्प से तुलना की है। इन्होंने नायिका को अत्यन्त कोमल और सुकुमार बताकर सुकुमारता को सौन्दर्य का अंग माना[2]। प्रायः नयन, अधर, कपोल, जंघा आदि की उपमा में एक ही से भाव भिन्न-भिन्न कवियों में मिलते हैं। इन कवियों की सूक्ष्मदर्शी दृष्टि से चिबुक का गढ़ा भी नहीं बचा है। फारसी प्रभाव के कारण सूफी-कवियों में नख-शिख का वर्णन, अथवा नारी-सौन्दर्य अंकन अधिक मिलता है। पद्मावती के सौन्दर्य की क्षण-क्षण परिवर्तित होती हुई रूप-राशि को चित्र की रेखाओं में उतारने का प्रयास अनेक चित्रकारों ने किया, पर वह सब असफल ही रहे[3]।

रामकाव्य में तुलसी ने रामचरितमानस में नारी-सौन्दर्य का अत्यन्त मर्यादित एवम् शिष्ट चित्रण किया है। अपनी आराध्या माता सीता के विविध अंगों का वर्णन वह खुल कर नहीं कर सके। उनकी अनिवचनीय शोभा, अनुपमेय सौन्दर्य को लेखबद्ध करने में कवि को समस्त उपमाएँ जूठी लगती हैं। विधाता ने अपनी सारी निपुणता और चातुर्य सीता के सौन्दर्य-निर्माण में ही समाप्त कर दिया है[4]। गोस्वामी जी ने रामायण में सूफी कवियों के समान सीता के नख-शिख का निरूपण नहीं किया, प्रत्युत उनकी समस्त शोभा का एक साथ ही वर्णन किया। उन्होंने भी हाथों की कमल और गति की हँस से तुलना की है[5]।

---

१. 'बदन मयँक जगत उजियारा, अमिरित अधर प्राण देन हारा।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० ७२

"अरु रूपवन्ती सुन्दर आहै, बिनु देखे सब ताहि सराहैं।
खोले मुख परभात दिखावैं, खोलैं केस सांझ होइ आवै॥"
नूरमुहम्मद—इन्द्रावती, पृ० ६०

२. "छीर न पियै अतिहि सुकुमारा, पान फूल के रहहि अधारा।"
उस्मान—चित्रावली, पृ० ७६

३. "सबै चितेर चित्र के हारे, ओहिक चित्र कोई करै न पारै।
कया कपूर हाड़ जनु मोती, तेहि ते अधिक दीन्ह विधि जोती॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, : गुप्त सम्पादित : पृ० ४४४

४. "सिय सोभा नहिं जाइ बखानी, जगदम्बिका रूप गुन खानी।
उपमा सकल मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि-अँग-अनुरागी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १०६

"सुन्दरता कहँ सुन्दर करई, छविगृह दीपशिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरौं विदेह कुमारी॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, पृ० १००

५. "सोहति सीय राम की जोरी, छवि शृँगार मनहि एक ठौरी।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ११४

सीता के विवाह के अवसर पर गान गाती हुई नारियों के सौन्दर्य का अंकन भी प्रचलित उपमाओं के द्वारा ही किया है[१]। थोड़े बहुत स्थलों को छोड़कर तुलसीदास के रामचरितमानस में नारी-सौन्दर्य का अत्यल्प वर्णन मिलता है, किन्तु उनके उत्तरवर्ती ग्रन्थों में नखशिख-निरूपण की प्रणाली को अपेक्षाकृत अधिक महत्व मिला। 'मलिनिया', 'नउनिया', और 'बरिनियाँ' के सौन्दर्य-अंकन की रेखाएँ अधिक मुखर हैं[२]। प्रबन्धकाव्य रामचरितमानस की आदर्शात्मकता को निभाने में तुलसी ने नारी-सौन्दर्य वर्णन की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, कविता-वली में भी वर्णन न्यून है, यद्यपि सजीवता अधिक है। वस्तुतः तुलसी ने अपने चरितनायक एवम् आराध्य राम के ही नखशिख का विशद वर्णन किया है।

केशव रामकाव्यकार होने के अतिरिक्त रीतिकाव्य प्रणेता आचार्य भी थे। रूप और विलास वर्णन में रुचि रखने वाले रीतिकारों में नारी रूप-वर्णन की प्रवृत्ति की प्रधानता है। उन्होंने नारी-रूप-वर्णन में पृष्ठ पर पृष्ठ समाप्त कर दिए हैं। सीता के रूप-वर्णन में उन्होंने उनके सौन्दर्य के समक्ष कमल, स्वर्ण और चन्द्र कुरूप बताए हैं। सीता के सौन्दर्य-वर्णन में उनकी कल्पना मर्यादित रही है। इन्दुमती, दमयन्ती और रति विश्व-विश्रुत लावण्यमयी नारियों का सौन्दर्य अहर्निशि विद्युत द्वारा वारे सँजाने पर भी सीता के सौन्दर्य की समता नहीं कर सकता[३]। वन-गमन समय मार्ग में सीता की भुवन विमोहन छवि समस्त नारियों को विमुग्ध कर लेती है। वह परस्पर संलाप करती हैं, कोई सीता के मुख की कमल से और कोई चन्द्र से उपमा देती है, और कोई चन्द्र और कमल से भी सौन्दर्ययुक्त बताती

"गवनी बाल मराल गति, सुखमा अँग अपार।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ११३

"सखिन्ह मध्य सिय सोहत कैसे, छवि गन मध्य महा छवि जैसे।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ११२

१. "विधुबदनी सब सब मृगलोचन, सब निज तन छवि रति मद मोचनि।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १३४

२. "बतिया की सुघर मलिनिया सुन्दर गातहि हो,
कटि कै छीन बरिनिआँ छाता पानिहि हो;
चन्द्रबदनि मृगलोचन सब रस खानिहि हो,
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।"
तुलसी—रामलला नेहछू, तुलसी ग्रन्थावली भाग २, पृ० ४

३. "कोहै दमयंती इंदुमती रति रातदिन होहिन छबीली छवि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप, जातवेद बापुरो विरूप सो निहारिये॥
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो। चन्द बहुरूप अनुरूप कै विचारिये॥"
केशव—रामचन्द्रिका : भगवानदीन : पृ० ९६, सं० २००१

हैं[1]। सीता का सौन्दर्य रावण-भगिनी सूर्पणखा को भी मोहित कर लेता है। वह उन्हें मयतनुजाके स्वरूप को लज्जित करने वाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी बताती है[2]।

सीता-स्वयंवर के समय उपस्थित उनकी सखियों की शोभा का भी वर्णन केशवदास ने किया है। रामचन्द्र की सेवा में लगी हुई सीता की सखियाँ बिजली के समान रूप तेजमयी हैं। उनके लज्जावनत लोचन अन्य लोगों के नयनों को विजयी अभिभूत कर लेते हैं[3]। जनकपुरी की स्त्रियाँ भी अनुपम सौन्दर्य की स्वामिनी हैं, उनके स्वच्छ कपोल दर्पण सदृश हैं, बाहें चम्पा की माला के समान सुकोमल

---

१. "वासो मृग अंक कहँ तोसों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिये।
वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजै,
वह कलानिधि तुहूँ कलाकलित बखानिये॥"

× × ×

"वाके अति सीतकर तुहूँ सीता सीतकर
चंद्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये॥"

केशव—केशव ग्रन्थावली (रामचन्द्रिका), पृ० २७७,

"सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति
सीता जी को मुख सखि केवल कमल सो।"

केशव—केशव ग्रन्थावली (रामचन्द्रिका), पृ० २७८

"देखै मुख भावै अनदेखई कमल चन्द,
ताते मुख मुखै सखी कमलै न चंद री।"

केशव—रामचन्द्रिका, पृ० १४७

२. "मय की सुता धौं को ह्वै, मोहिनी ह्वै मोहै मन
आजु लौं न सुनी सु तौ नैनन निहारिये।
देव दुति दामिनी हू नेह कामिनी हू
एक लोम ऊपर पुलोमजा निहारिये।"

× × ×

"सात दीप सात लोक, सातहु रसातल की
तीयन के गोत सबै सीता पर वारिये॥

केशव—केशव ग्रन्थावली, पृ० २८७

"तँह सोभिजैं सखि सुन्दरी जनु दामिनी वपु मंडिकै।
घनश्याम को तनु सेवहीं जड़ मेघ ओघनि छंडिकै।

केशव—केशव ग्रन्थावली, पृ० २६१

"मुख एक है नत लोल लोचन लोक लोचन को हरै
जनु जानकी सँग सोभिजै शुभ लाज देहँहि को धरे।"

केशव—केशव ग्रन्थावली भाग १, (रामचन्द्रिका), पृ० २६१

हैं, नयनों की दृष्टि में कस्तूरी की श्यामता और कपूर की शुभ्रता है[१]। उन कोमलांगी नारियों को चलते समय महावर ही भारस्वरूप प्रतीत होता है, उनकी स्वयंसिद्ध सुन्दरता को किसी प्रसाधन एवम् वाह्य श्रृंगार की अपेक्षा नहीं है[२]। सीता के रूप-वर्णन की मर्यादा निभा कर कवि की, रीतिकाल के श्रृंगारी वातावरण में पोषित, मनोवृत्ति अरिपत्नी मन्दोदरी के अंगों का नग्न चित्रण करने में संकोच नहीं करती है[३]।

कृष्णकाव्य रागानुगा, प्रेमलक्षणा भक्ति को लेकर चला। उसमें कृष्ण और राधा तथा अन्य गोपियों के प्रेम का चित्रण है। इस प्रेम के आलम्बन और आश्रय हैं, चंचल खंजरीट नयनी राधा और कृष्ण। अतः स्वभावतः ही सौन्दर्य-निरूपण अधिक मिलता है। कृष्ण और राधा की प्रणय-लीला के चटकीले चित्रों में दोनों के सौन्दर्य-वर्णन की प्रधानता है। अपने लावण्य और मोहन रूप से राधा यशोदा को भी आकर्षित कर लेती है, उसके खंजन से गतिशील, कमल-विनिन्दित नयन जसुमति को लुभा लेते हैं[४]।

शरद-ज्योत्स्ना में रास के समय कृष्ण की प्रिया राधा की श्री अपूर्व है। आलस्यपूर्ण, निन्द्रालस नयन उसके मुख के सौंदर्य का परिवर्द्धन करते हैं, चंपक-कली-सी श्वेत नासिका है। अंजन, एवम् प्रसाधन रहित आनन, पूर्णिमा का समस्त कलाओं से पूर्ण चन्द्र लगता है। कवि ने अपनी आराध्या के समस्त अंगों का वर्णन किया है। तुलसी के समान उसका सौन्दर्य वर्णन मर्यादित नहीं है[५]।

---

१. "अमल कपोलै आरसी बाहुइ चंपकमार।
अवलोकनैबिलोकिजै मृगमदमय घनसार॥"
केशव—केशव ग्रन्थावली (रामचन्द्रिका), पृ० २५६

२. "गति का भारु महाउरै अंग अंस के भार।
केशव नखशिख शोभिजै सोभाई सिंगार॥"
केशव—केशव ग्रन्थावली, पृ० २५६

३. "छुटी कण्ठमाला लुरैं हार टूटे,
खसैं फूल फैले लसे केश छूटे।
फटी कंचुकी किंकिनी चारु छूटी,
पुरी काम की मनो रुद्र लूटी।
बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं,
किधौं सांचहू श्रीफलै सोम साजैं।
किधौं स्वर्ण के कुंभ लावण्य पूरे,
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे।"
केशव—केशव ग्रन्थावली भाग २, पृ० ३३१

४. "नैना तेरे जलजजीत हैं खंजन तैं अति नाचैं।
चपला तै चमकति अति प्यारी कहा करैगी स्यामहि।"
सूर—सूरसागर, पृ० ५११, पद० ७१८-१३३४

५. "आलस उनीदे नैन, लागत सुहाए
नासिका चंपक कली कौं अली भाए।

सूरदास ने राधा के स्वरूप वर्णन में समस्त प्रचलित उपमानों का प्रयोग किया है। मोहन की प्रेयसी राधा रूप और सौन्दर्य-सिन्धु से मंथन कर निकाली हुई अनुपम युवती है। उनका आनन चन्द्रमा से अधिक सौन्दर्य-युक्त है। कवि ने सौन्दर्य का चित्रमय सजीव तथा यथावत वर्णन किया। उसका मांसल और शरीरी रूप ही खंजन, मृग की गुरुता का खण्डन करता है। अधर बिंब बन्धूक पुष्प को लज्जित करने वाले है, दसनों की कुन्दकली, केशों की अहि से, बाहुओं की मृणाल से, कटि की सिंह से, जंघा की केला-खम्भ से परम्परागत उपमा दी है[1]।

सूर की उपास्या राधा रानी के भुवन-विमोहन सौन्दर्य का दर्शन नयनों को शान्ति एवम् शीतलता प्रदान करने वाला है। उसके विकसित सरोज से अरुण नयन पाप का नाश करने वाले है[2]। वृषभानुनंदिनी के नयनों की चंचलता, विशालता देखकर मृगों ने निश्चिन्त क्रीड़ा विहार करना छोड़ दिया, अवगुण्ठन से अनावृत नयनों को निहार कमल मुरझा गए और गर्वीली रति भी राधा के पैरों पर विनयावनत है[3]। कवि नयनों की वंकिमता, भौहों की कुटिलता, विमोहक शक्ति पर पद

बदन-मंजन तैं अँजन गयो ह्वै दूरि
कलंक रहित ससि पून्यौ ज्यौं कला पूरि।
गिरितै लता है भई यह तो हम सुनि
कंचन लता तैं भए द्वै गिरिवर पुनि।"
सूर—सूरसागर भाग १, पृ० ६३३, पद १०७६-१६६४

१. "खंजरीट मृगमीन की गुरुता नैननि सबै निवारी,
भृकुटि कुटिल सुदेश शोभित अति मनहुँ मदनधनु धारी।
भाल बिसाल, कपोल अधिक छवि नासा द्विज मदगारी,
अधर बिंब-बन्धूक-निरादर, दसन कुन्द-अनुहारी।
परम रसाल श्याम, सुखदायक बचननि सुनि, पिक हारी॥
कबरी अहि जनु हेम खंभ लगी ग्रीव कपोत बिसारी।
बाहु मृनाल जु उरज कुम्भ गज निम्न नाभि सुभ गारी,
मृग नृप खीन सुभग कटि राजति जंघ जुगल रंभा री।
अरुन रुचिर जु बिड़ाल-रसन सम चरनतली ललिता री॥"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, सूर समिति, पृ० ६८३, पद ११६७।१८१५

२. "किसोरी देखत नैन सिरात
बलि बलि सुखद मुखारविन्द की चन्द्र-बिंब दुरिजात
अघमोचन लोचन रतनारे, फूले ज्यौं जलजात।"
सूर— सूरसागर प्रथम खण्ड, सूर समिति, पृ० ६८६, पद १२०६।१८२४

३. "तब ते मृगनि चौकरी भूली
उघरचौ बदन सहज घूंघट पट सकुचे कमल कुमुदनी फूली,

लिखता गया। नयनों की निशंकता, चंचलता, विशालता, मोहकता आदि विशेषताओं का पृथक उल्लेख किया गया है[1]।

जिस राधा के नाम को सुनकर हरि उसके नाम का ही मन्त्र जपने लगते हैं, उन राधारानी का रूप और सौन्दर्य असाधारण होना स्वाभाविक ही है। उनके शरीर के विभिन्न अंगों से जो उपमाएँ दी जाती हैं वह उस शोभाभार वहन में अशक्य है[2]। कवि सौन्दर्योपासक है। यद्यपि मंजन उपरान्त धुले हुए मुख को वह पूर्णचन्द्र बताता है, पर वस्तुतः सँवारे हुए कृत्रिम सौन्दर्य से उसे अधिक आकर्षण है। तभी कवि के नारी सौन्दर्य-वर्णन में प्रसाधन एवम् शृंगार द्वारा परिवर्द्धित सौन्दर्य का चित्रण अधिक मिलता है[3]।

परमानन्ददास ने तो नन्दरानी ही के दही बिलोने के समय के सौन्दर्य का चित्रण किया है। दधि-मन्थन समय हाथों एवम् पैरों के संचालन से कंकण और नूपुर

निरखि भौंहै मनमथ मन काँप्यौ, छूट्यौ धनुष भुजा भई लूली
सूरदास रति पाइ पलोटति, हुती जो गरब हिंडोरै झूली।"
सूर—सूरसागर प्रथम खण्ड, सूर समिति, पृ० ११६०, पद २७७१।३३५६

१. "राधे तेरे नैन किधौं मृगबारे
रहत न जुगल भौंह जूये तै, भजत तिलक रथ डारे
जदपि अलक अंजन गहि बाँधे, तऊ चपल गति न्यारे।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० ११६०, पद २७४०।३३५८
"चल भामिनि की भौंहैं बंक
अलक तिलक छवि चित्रलिखी सी स्रुति मंडल तोटंक।"
सूर—सूरसागर भाग १, सूर समिति पृ० ११६१, पद २७४४-३३६२
"राधे तेरे नैन किधौं री बान।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० ११६१, पद २७४२।३३६०

२. "राधे तेरे रूप की अधिकाई
जो उपमा दीजै तेरे तनु तामें छवि न समाइ,
सिंह सकुचि, सर विरथा भरत दिन, बिनु सोइ तीर सुलाइ;
ससिउ घटत, हेम पावक परै, चंपक रहे कुम्हलाई।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० ११७०, पद २७७६।३३६४

३. "विराजति राधा रूप निधान
सुंदरता की पुंज प्रगट ही, को पटतर तिय आन,
सिंदुर सीस, माँग मुक्तावलि कच कमनीय विनान;
मनहु चन्द्र मुख कोपि हन्यौ, रिपु-राहु विषम बलवान,
तरल तिलक ताटंक गंड पर झलकत कल बिबि कान।"
सूर—सूरसागर भाग २, सूर समिति, पृ० १०६६, पद २४४५।३०६३

की मिश्रित ध्वनि प्रमुदित श्यामसुन्दर के यश का गान करती है[1]। कुम्भनदास को भामिनी के सिर के बिखरे हुए सुमन नभ के नक्षत्र प्रतीत होते हैं, और निर्बन्ध कृष्ण केशों में छिपा हुआ मुख काले बादलों में चन्द्र सदृश दृष्टिगत होता है[2]। मुख पर नयन शरद कमल पर खंजन से दिखाई पड़ते हैं[3]।

कृष्णकाव्य में नारी-सौन्दर्य का वर्णन श्रृंगारपरक अवश्य है, पर वह परमानंद स्वरूप श्रीकृष्ण, वेद-ऋचा एवम् उनकी आह्लादिनी शक्ति राधा का श्रृंगार है। लौकिक प्रतीत होते हुए भी वह अलौकिक है। रीतिकाव्य तथा वीरकाव्य की परिस्थितियाँ समान थीं। वैभव एवम् विलास की पृष्ठभूमि में, मदिरा की मादक हिलोरों एवम् मधुबाला के नृत्य के मध्य नारी-सौन्दर्य पूजा और उपासना की वस्तु न हो कर खिलवाड़ और बाजारू इश्क का विषय था।

आलोच्यकाल के वीर-काव्य में नारी-सौन्दर्य-चित्रण अत्यल्प है। उसमें नारी-सौन्दर्य वर्णन में कोई नवीनता न होकर प्रचलित और परम्परागत उपमानों द्वारा ही सौन्दर्य की व्यंजना का प्रयास किया गया है। जटमल की पद्मिनी मृगनयनी, पिकबैनी, सिंह-सी कटि वाली, हीरे से दंत वाली एवम् भौंहों की वंकिमता में अनुपम है[4]। उसकी सुकुमारता और कमनीयता विश्वदुर्लभ है, वह पान से भी क्षीण है। उस चम्पकवर्णी सुरंग नारी के पग तलों में कमल देखकर सुर नर मुनि वन्दना एवम् सेवा करते हैं[5]। राजा वीरसिंह के अन्तःपुर की कोमलांगियों के वर्णन में

---

१. "प्रात समय गोपी नन्दरानी
मिश्रित धनि उपवर्तहि औसर दधि मन्थन और मथानी;
तीक्ष्ण लोल कपोल विराजत कंकण नुर कुणित एक रस,
रज्जु करषत भुज लागत छवि गावत मुदित श्यामसुन्दर यश;
चंचल, अचपल कुच हारावलि, वेणी चाल खसित कुसुमाकर,
मणि प्रकाश नहि दीप अपेक्षा, सहजभाव राजत ग्वालिन घर।"
परमानन्द पदावली, अष्टछाप पदावली, सं० सोमनाथ गुप्त, पृ० ६२

२. "तेरे शिर कुसुम बिथुरी रह्यौ भामनी मानो नभ शिश तार,
श्याम अलक छूटि रही री वदन, चन्द छिपयौ मानो बादर कारे।"
कुम्भनदास —(कुम्भनदास पदावली) अष्टछाप पदावली, पृ० १४२

३. कुम्भनदास—कुम्भनदास पदावली, अष्टछाप पदावली, पृ० १४४

४. "मृगनैन वैण कोकिल, सरस केहर लंकी कामिनी,
अधर लाल हीरे दसण भ्रोह धतु धंन धनकलि मेवार।"
जटमल—गोरा बादल की कथा, (अयोध्याप्रसाद) पृ० ३, १६६१ प्रयाग

५. "पानहू ते पातरी प्रेम पूरण सो भालैं।"
× × ×
"पदम चरण तल रहै, देख सुर नर मुनि टालै मही।"
जटमल—गोरा बादल की कथा, (अयोध्याप्रसाद) पृ० १२

केशव उनको चंचल चितवन वाली, निश्चल हृदय वाली सुन्दर निपुण, मृदुल और कठोर उरजवाली स्वाभाविक रूप से हृदय को हरने वाली बताते हैं[१]। रीति के प्रभाव के कारण सौन्दर्य और वस्त्राभूषण दोनों का विवरण साथ-साथ चलता है[२]। भूषण ने नारी-सौन्दर्य का निरूपण वैभव की पृष्ठभूमि में किया है[३]।

रीतिकाव्य में नारी-सौन्दर्य-वर्णन प्रमुख हो गया है। निश्चिन्त जीवन से उद्भूत विलास की भावना के कारण जन जीवन और काव्य दोनों में ही नूपुर की रुनझुन और विलास की रागिनी व्याप्त थी। कृष्ण-काव्य के कृष्ण और राधा सामान्य नायक-नायिका होकर विविध प्रकार से रसकेलि करते। नारी-सौन्दर्य उपभोग और विलास का साधन था। विलासप्रिय नरेन्द्रों के आश्रय में शृंगारी कवि प्रभुप्रसादन के लिए जिस मुक्तक काव्य का सृजन कर रहे थे, उसमें नारी के नख-शिख-वर्णन की बहुलता और प्रधानता थी। नारी का शरीर, उसकी शोभा और सौन्दर्य शाब्दिक क्रीड़ा, विलासभावना एवम् दुर्वासना का केन्द्र बन गए थे। रीतिकाव्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण में कोई दुराव अथवा छिपाव न होने के कारण सौन्दर्य वर्णन स्पष्ट और शारीरिक ही है। रीति कवियों का सौन्दर्य वर्णन नारी के शृंगारी, कामोत्तेजक रूप की ओर ही इंगित करता है, उस सौन्दर्य में पावनता एवम् शुचिता के दर्शन में वह असमर्थ हैं। रीति कवियों का वर्णित सौन्दर्य अकृत्रिम और स्वाभाविक सौन्दर्य न होकर नाना वस्त्राभूषण चीर, और रत्नों द्वारा प्रसाधित है, यद्यपि एकाध कवियों ने नारी की सहज स्वाभाविक शोभा का भी वर्णन किया है[४]।

---

१. "अचल चित्त चितवन चलबनी, सुन्दर चातुर तन मन धनी
उर अन्तर मृदु उरज कठोर, सुद्ध सुभाव भाव चितचोर।"
केशव—वीरसिंहदेव चरित, श्यामसुन्दरदास द्विवेदी, पृ० २६६
२०१३ प्र० सं०

२. "सुचि सुरभि सकोमल सारी, कव्वरि मनु नागिनी कारी,
सिर मोती माँग सुराजै, रावरी कनक मय राजै।"
मान—राजविलास, पृ० १०४, ७वाँ विलास

३. "मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक महलान संग मै
विकसत कोमल कमल मानहुँ अमल गंग तरंग मै।"
भूषण—शिवराज भूषण, भूषण ग्रन्थावली, पृ० १३

४. "लाल मनरंजन के मिलिबे कौं मंजन कै
चौकी बैठि बार सुखवति वर नारी है।
अंजन, तमोर, मनि, कंचन, सिंगार, बिन
सोहत अकेली देह शोभा कै सिंगारी है।
सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी
देखि कै दृगन जिय उपमा विचारी है।

नायिकाभेद एवम् अलंकरण की प्रवृत्तियों की प्रमुखता होने के कारण प्रायः नारी के रूप का वर्णन विविध नायिकाओं के ही रूप में हुआ है, और कवियों ने उसमें अलंकारों का चातुर्य दिखाने की ओर अधिक ध्यान दिया है। ये सभी नायिकाभेद के प्रमुख कवि हैं। नायिका-भेद के विविध भेदोपभेदों में वयः-सन्धि के प्रति इन रीतिकालीन कवियों को विशेष मोह है। शिशुता और तारुण्य के संगमकाल के अनुपम लावण्य के अंकन के लिए बिहारी और सेनापति दोनों ही प्रयत्नशील हैं[1]। इन कवियों के अनुसार नायिका की परिभाषा ही है अपनी कमनीय देहकान्ति, छवि से मानव मन को अधिकाधिक लुभा लेने वाली कामिनी। उसके अंग कुंदन से भी उज्ज्वल और शुभ्र हैं, उसके अलस नयनों की दृष्टि में विलास की अरुणिमा है, उसकी स्मिति के मधुर मिष्ठान्न ने सभी को बिना मोल लिए ही वशीभूत कर लिया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यही है कि ज्यों-ज्यों उसके समीप जाइए उसकी शोभा और भी अधिक प्रतीत होती है[2]। इस परिभाषा में

ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन
परवीन गाइन की ज्यों अलापचारी है।"

सेनापति—कवित्त रत्नकार, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ४८ तरंग २
५४ कवि, १९४८ प्रयाग

१. "लोचन जुगल थोरे-थोरे से चपल सोई
सोभा मंद पवन चलत जलजात की।
पीत है कपोल तहाँ आई अरुनाई नई
ताही छवि करि सीस आभा पात पात की।
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत
उज्ज्वल विमल दुति पैये गात गात की।
सैसव निसा अथौत जौवन दिन उदौत
बीच बालवधू झाँई पाई परभात की।"

सेनापति—कवित्त रत्नाकर, तरंग दो, कवित्त २६

"छुटो न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंगु,
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता रंग।"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, टीकाकार रत्नाकर, पृ० ३४, दो० ७०

२. "ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि
त्यों त्यों खरी निकसै री निकाई।"

मतिराम—मतिराम ग्रन्थावली, पृ० २७४

"मालती की माल तेरो तन को परसपाइ,
और मालतीन हूँ तैं अधिक बसाति है।
सोने तैं सरूप, तेरे तन को अनूप रूप।
जातरूप-भूषन तै और न सुहाति है।।

सेनापति—कवित्त रत्नाकर, पृ० ४०, कवित्त २८

आई हुई इन नायिकाओं के प्रत्येक अंगों का पृथक-पृथक वर्णन हुआ है। नायिका के कपोल पर भ्रमर सदृश अंकित तिल की शोभा निरूपण में ही शतक लिखे गए। गोरे मुख पर का तिल ही इन श्रृंगारी कवियों के लिए पूज्य हो जाता है, और उसकी सालिकराम से उपमा दी जाती है[१]। नयनों की तीक्ष्णता, विशालता, चंचलता पर इन कवियों ने पृथक पद कवित्त एवम् दोहे लिखे। अंगों का गौरवर्ण उपमा और वर्णन का विषय बना। शरीर के विविध वर्णनीय अंगों में नयन, कपोल, केश, अधर, दांत, भौं, कटि, जंघा आदि हैं। नायिका के तीन रंग के तीखे, मायावी, नयन, मीन और कमल को लज्जित करते[२], कहीं रीतिकालीन प्रसाधन की बहुलता की प्रवृत्ति में अंजन रंजित, खंजन, मीन, हरिण विजयी नयन तीक्ष्ण, चंचल और आकर्षक बने हैं[३]। कर्ण विलंबित कामराज के बालक के समान नायिका के दृगों ने दर्शन की पिपासा को प्रबल और न बुझने वाली कर दिया। यह नयन ही विविध भावनाओं, मानसिक अवस्थाओं के अभिव्यंजक हैं[४]। यह नयन मीन मद-भंजन, और मुख पर चन्द्र के अंक में दो कमल सदृश शोभायुक्त हैं। यह तीक्ष्ण, बिना काजल के ही श्यामल नयन चंचलता के प्रतीक हैं, और कर्ण-विलम्बित यह नयन नागर नरों को अपना शिकार बनाते हैं[५]। इन कवियों ने नैनों के सौन्दर्य के अतिरिक्त, उनके

---

१. "गोरे मुख पर तिल बसै ताहि करों परनाम।
मानहु चन्द बिछाइ के बैठे सालिकराम॥"
शेख मुबारक—तिलशतक, अलकशतक, सेलेक्शं फ्राम हिन्दी लिटरेचर
१५४ पृ०, पोथी ४, भाग १

२. "सायक सम मायक नयन, रंगे त्रिबिध रंग जात।
झरकौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, टीकाकार (दीन) पृ० २६, दो० ५५

३. "अंजन सुरंग जीत खंजन, कुरंग, मीन
नैक न कमल उपमा कौ नियरात है।"
× × ×
"कान लौं बिसाल कामभूप के रसाल बाल
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है।"
सेनापति—कवित्तरत्नाकर, पृ० ३३, तरंग २, कवित्त १

४. "बहके, सब जिय की कहत ठौरु कुठौरु लखै न।
छिन औरें, छिन और से, ए छबिछाकै नयन॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ८, दोहा ६०

५. "खेलन सिखाए, अलि, भलै चतुर अहेरी मार,
कानन चारी नैन मृग नागर नरनि शिकार।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४, दो० ४५

गुण और प्रकृति एवम् प्रभाव का भी वर्णन किया है।

कालिन्दी की धार और अलिमाल से कृष्ण स्निग्ध, दीर्घ, घने केशों[1] की शोभा का भी मुख शोभा में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन कवियों ने दन्त, ग्रीवा, कटि, अधर, चिबुक बाहुमूल को सुन्दरता का सहायक माना है। कटि का सौन्दर्य सूम का दान, मतिमूढ़ के ज्ञान जैसे नए उपमानों द्वारा व्यंजित किया गया है[2]। कवि की शृंगारपूर्ण दृष्टि ने नारी-सौन्दर्य पर काम-भाव का आरोप किया है, उसे भामिनी के बाहुमूल काम पीड़ा का हरण करने वाले प्रतीत होते हैं[3]। नारी के अरुण अधर उसे अमृतपूर्ण दृष्टिगत होते हैं[4]। इनके दृष्टिकोण से यौवन के उद्दाम

"पैने अनियारे कै सहज कजरारे दृग,
पोट सी चसाई चितवन चंचलाई की।"

देव—शब्द रसायन, पृ० ७१

"रूप गुन मद उन्मद नेह तेह भरि
छलबन आतुरी, चटक चातुरी पढ़ें।
घूमत घुरत, गरबीले न मुरत नैको
प्रानन सो खेले अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन कंज खंजन कुरंग मान भृंग को
सौंचे घनानन्द खुले संकोच से मढ़े॥"

घनानन्द—घनानन्द ग्रन्थावली, सं० विश्वनाथप्रसाद, पृ० १८

१. "सहज सचिक्कन, स्याम रुचि, सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि बिछुरे सुथरे बार॥"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ४४

२. "सूम कैसो दानु, मतिमूढ़ जैसो ज्ञानु
गौरी गौरा जैसों मान मेरे जान समुदित है।
कौन है सँवारी वृषभानु की कुँवारी यह
जाकी कटि निपट कपट कैसो हितु है॥"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (सं० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २००,
१९५४ प्र० सं०

३. केसोदास गोरे गोरे गोल कामसूल हर
भामिनी के भुजमूल भाइ से उतारे हैं।"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (सं० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २०१

४. "अरुन अधर अति सुबुधि सुधा के धरं
कोमल अमल दल दुति छीनि लीनी है।"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (सं० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २०३

आई हुई इन नायिकाओं के प्रत्येक अंगों का पृथक-पृथक वर्णन हुआ है। नायिका के कपोल पर भ्रमर सदृश अंकित तिल की शोभा निरूपण में ही शतक लिखे गए। गोरे मुख पर का तिल ही इन श्रृंगारी कवियों के लिए पूज्य हो जाता है, और उसकी सालिकराम से उपमा दी जाती है[1]। नयनों की तीक्ष्णता, विशालता, चंचलता पर इन कवियों ने पृथक पद कवित्त एवम् दोहे लिखे। अंगों का गौरवर्ण उपमा और वर्णन का विषय बना। शरीर के विविध वर्णनीय अंगों में नयन, कपोल, केश, अधर, दांत, भौं, कटि, जंघा आदि हैं। नायिका के तीन रंग के तीखे, मायावी, नयन, मीन और कमल को लज्जित करते[2], कहीं रीतिकालीन प्रसाधन की बहुलता की प्रवृत्ति में अंजन रंजित, खंजन, मीन, हरिण विजयी नयन तीक्ष्ण, चंचल और आकर्षक बने हैं[3]। कर्ण विलंबित कामराज के बालक के समान नायिका के दृगों ने दर्शन की पिपासा को प्रबल और न बुझने वाली कर दिया। यह नयन ही विविध भावनाओं, मानसिक अवस्थाओं के अभिव्यंजक हैं[4]। यह नयन मीन मद-भंजन, और मुख पर चन्द्र के अंक में दो कमल सदृश शोभायुक्त हैं। यह तीक्ष्ण, बिना काजल के ही श्यामल नयन चंचलता के प्रतीक हैं, और कर्ण-विलम्बित यह नयन नागर नरों को अपना शिकार बनाते हैं[5]। इन कवियों ने नैनों के सौन्दर्य के अतिरिक्त, उनके

---

१. "गोरे मुख पर तिल बसै ताहि करों परनाम।
मानहु चन्द बिछाइ के बैठे सालिकराम॥"
शेख मुबारक—तिलशतक, अलकशतक, सेलेक्श फ्राम हिन्दी लिटरेचर
१५४ पृ०, पोथी ४, भाग १

२. "सायक सम मायक नयन, रंगे त्रिबिध रंग जात।
झरकौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, टीकाकार (दीन) पृ० २९, दो० ५५

३. "अंजन सुरंग जीत खंजन, कुरंग, मीन
नैक न कमल उपमा कौ नियरात है।"
× × ×
"कान लौं बिसाल कामभूप के रसाल बाल
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है।"
सेनापति—कवित्तरत्नाकर, पृ० ३३, तरंग २, कवित्त १

४. "बहके, सब जिय की कहत ठौरु कुठौरु लखै न।
छिन औरै, छिन और से, ए छविछाकै नयन॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ८, दोहा ९०

५. "खेलन सिखाए, अलि, भलै चतुर अहेरी मार,
कानन चारी नैन मृग नागर नरनि शिकार।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४, दो० ४५

गुण और प्रकृति एवम् प्रभाव का भी वर्णन किया हैं ।

कालिन्दी की धार और अलिमाल से कृष्ण स्निग्ध, दीर्घ, घने केशों[1] की शोभा का भी मुख शोभा में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन कवियों ने दन्त, ग्रीवा, कटि, अधर, चिबुक बाहुमूल को सुन्दरता का सहायक माना हैं। कटि का सौन्दर्य सूम का दान, मतिमूढ़ के ज्ञान जैसे नए उपमानों द्वारा व्यंजित किया गया है[2]। कवि की शृंगारपूर्ण दृष्टि ने नारी-सौन्दर्य पर काम-भाव का आरोप किया है, उसे भामिनी के बाहुमूल काम पीड़ा का हरण करने वाले प्रतीत होते हैं[3]। नारी के अरुण अधर उसे अमृतपूर्ण दृष्टिगत होते हैं[4]। इनके दृष्टिकोण से यौवन के उद्दाम

"पैने अनियारे कै सहज कजरारे दृग,
पोट सी चसाई चितवन चंचलाई की।"

देव—शब्द रसायन, पृ० ७१

"रूप गुन मद उन्मद नेह तेह भरि
छलबन आतुरी, चटक चातुरी पढ़ें।
घूमत घुरत, गरबीले न मुरत नैको
प्रानन सो खेले अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन कंज खंजन कुरंग मात शृंग को
सीचे घनानन्द खुले संकोच से मढ़े।।"

घनानन्द—घनानन्द ग्रन्थावली, सं० विश्वनाथप्रसाद, पृ० १८

१. "सहज सचिक्कन, स्याम रुचि, सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि बिछुरे सुथरे बार।।"

बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० ४४

२. "सूम कैसो दानु, मतिमूढ़ जैसो ज्ञानु
गौरी गौरा जैसों मान मेरे जान समुदित है।
कौन है सँवारी वृषभानु की कुँवारी यह
जाकी कटि निपट कपट कैसो हितु है।।"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (सं० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २००,
१९५४ प्र० सं०

३. केसोदास गोरे गोरे गोल कामसूल हर
भामिनी के भुजमूल भाइ से उतारे हैं।"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (सं० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २०१

४. "अरुन अधर अति सुबुधि सुधा के घर
कोमल अमल दल दुति छीनि लीनी है।"

केशव—केशव ग्रन्थावली, (सं० विश्वनाथप्रसाद), पृ० २०३

वेग से तरंगित कुंदनाभ अंगों की सार्थकता प्रियतम स्पर्श ही में है[१]। नारी-सौन्दर्य केवल आनन्द एवम् भावना के सन्तोष का उपकरण न होकर शरीर की आकांक्षा की पुष्टि के लिए है। यद्यपि इन्होंने नारी-सौन्दर्य के सुन्दरतम् चित्र अंकित किए, पर यह सब वासनात्मक छाया लिए हैं। सौन्दर्य में केवल सुन्दरतम् का योग है, सत्यम् और शिवम् उससे दूर है।

रीतिकालीन वातावरण में सुकुमारता और कमनीयता को नारी-सौन्दर्य का अंग माना गया। वह सौन्दर्य पुष्प को भी विनिन्दित करने वाली कमनीयता से पूर्ण है। उस भुवन विमोहन सुकुमार गात में गुलाब की पंखुरी की स्निग्ध कोमलता आघात पहुँचाती है, गुलाब के झँवा से भी छाले पड़ने की आशंका है, पान खाने से बनी हुई लीक भी उसकी पारदर्शक ग्रीवा में स्पष्ट है[२]। इन वैभव और विलास में पली हुई सत्य अथवा यथार्थ की छाया में परे सुख के हिंडोले झूलती हुई नायिका के अंग अनुपम हैं। तुलसीदास के कथन को भ्रमपूर्ण सिद्ध करती हुई कौंहर सी एड़ियों की लालिमा और अंगों की सुखदायिनी शोभा निहार कर स्वयं नारी ही विमुग्ध हो उठती है[3]।

---

१. "कुन्दन के अंग, नव जोबन तरंग उठै,
उरज उतंग धन्य प्यारो परसतु है।"
देव—शब्द रसायन, (जानकीनाथसिंह मनोज), पृ० ७०, ७१, सं० २०००, इलाहाबाद

२. "मैं बरजी कै बार तू इत कित लेत करौंट,
पंखुरी लगै गुलाब की परिहै गात खरौंट।"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, (दीन), पृ० १०, दो० २५६
"छाले परिबै कै डरतु सकै न हाथ छुवाइ,
झिझकते हियै गुलाब कै झंवा झँवैयत पाइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, (दीन) पृ० १०
"लागत समीर लंक लहकै समूल अंग
फूले से दुकूलनि सुगन्ध विथरयौ परै।"
देव—शब्द रसायन, पृ० ७७

३. 'कौंहर सी एड़ीन की लाली देखि सुभाइ
पाइ महावर देइ को आप भई बेपाइ॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २४, दो ४४
"आइ हुती अन्हवावन नाइनि सोधैं लिये वह सूधे सुभाइनि,
कंचुकी छोरि इतै उबटैबों, इंगुर ते अंग की सुखदाइनि।
देव सरूप की रासि निहारत, पांय से सीस लौं सीस ते पायनि,
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी सी, हंसे कर दै ठोढ़ी ठकुराइन॥"
देव—शब्द रसायन, जानकीनाथसिंह, पृ० ४५

इस प्रकार विभिन्न धाराओं के कवियों के नारी-सौन्दर्य-अंकन की समीक्षा करने से सुस्पष्ट है कि इन सभी कवियों ने गृह की सीमा में केन्द्रित रहने वाली नारी के सौन्दर्य का ही चित्रण किया है। रीति-काव्य में नारी के सौन्दर्य का वर्णन इस भांति किया गया है, कि वह कामोद्दीपन में सहायक हो सके। अन्य कवियों के सौन्दर्य-वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में भावों के स्थान पर शारीरिक सौन्दर्य को प्राधान्य दिया जाता था।

वस्त्राभूषण और शृंगार के साधन

सभ्यता के शैशव से ही मानव में अपने को सजाने, सँवारने, विविध प्रसाधनों द्वारा सौन्दर्य-वर्धन करने की प्रवृत्ति रही है। सभ्यता के प्रभात में पत्थर और अन्य धातुओं के अनगढ़ टुकड़े उसके रूप और सौन्दर्य का परिवर्द्धन करते रहे हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही इन साधनों और वस्त्राभूषणों की संख्या परिवर्द्धित होती गई। स्वभावत: ही नारी अपनी सुन्दरता की वृद्धि और प्रसाधन के प्रति अधिक जागरूक रही, अत: उसके वस्त्राभूषणों में वृद्धि होती गई। बहुमूल्य वस्त्र, सुन्दर भूषण एवम् प्रसाधन के अन्य साधनों की संख्या तत्कालीन सभ्यता की कसौटी होती है। काव्य में जीवन, उसके विविध व्यापारों की ही अभिव्यंजना होती है। अत: काव्य में नारी के सौन्दर्य अंकन के साथ ही उसकी शोभा की अभिवृद्धि में सहायक वस्त्राभूषण एवम् प्रसाधनों का विवरण भी मिलता है। आलोच्य-काल के साहित्य में नारी के शृंगार के साधन, वस्त्राभूषणों के वर्णन से उस समय के समाज की आर्थिक स्थिति, सभ्यता, कृत्रिमता को प्रधानता देने की प्रवृत्ति तथा विलासिता की भावना का परिचय मिलता है।

संतों ने दाम्पत्य भाव के प्रतीक द्वारा अपनी भावनाओं का पत्नी अथवा प्रेयसी के साथ तादात्म्य किया है। उनके भावप्रधान काव्य में नारी रूप अथवा उसके प्रसाधन के विवरण का अभाव ही है। सूफी काव्य में कवियों ने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम को व्यक्त किया है। अत: उनके काव्य में स्वभावत: ही लौकिक जीवन का, उसकी वैभव विलासमयी पृष्ठभूमि में, अंकन किया गया है। उनके नारी-सौन्दर्य, नखशिख-निरूपण के साथ ही, उसके वस्त्रों, विविध शृंगार के साधनों का भी विस्तृत चित्रण हुआ है। भारतीय परम्परा एवम् कामशास्त्र में मान्य षोड़ष शृंगारों का उल्लेख सूफी काव्य में यत्र-तत्र मिलता है[1]।

सूफी काव्य का प्रस्फुटन फारसी संस्कृति के अंक में, वैभव की स्वप्निल छाया में होता है। समस्त सूफी नायिकाएँ राजभवन की कोमलांगियां हैं, वैभव और विलास के समग्र साधन उन्हें सुलभ हैं। अत: उनके प्रसाधन में बारह आभरण[2]

१. "पुनि सोरह सिंगार जस चारिहुँ जोग कुलीन।
दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभर चहुं खीन॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० ३२२

२. "जो न सुने तौ अब सुनु बारह अभरन नाउँ।"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० ३२१

और सोलह शृंगारों का समावेश स्वाभाविक ही है। वस्तुतः जायसी ने सोलह शृंगार एवम् बारह आभरणों को एक ही में मिला दिया है। बारह आभरण नूपुर, किंकिनी, वलय, अंगूठी, कंकण, हार, कंठश्री, बेसर, खूंट या त्रिरिया, टीका, सीसफूल हैं। उनका वर्गीकरण अवेध्य आरोप्य और क्षेप्य में किया जाता है[1]।

सुसज्जित पद्मावती पूर्णिमा की रात्रि की शशि प्रतीत होती है। पहले उसने शरीर को धोकर स्नान किया, पुनः वस्त्र पहने। अपने सुदीर्घ केशों का उसने विन्यास किया, मांग को सिन्दूर रंजित किया पुनः उसे मुक्ता और मानिक के चूरे से सजांया। अनेक प्रकार के सुवासित वस्त्रों को धारण किया, रत्नों को गूँथ कर माँग में सुशोभित किया, ललाट पर तिलक खींचा, कानों में कुण्डल खूँट और खूँटी धारण किए[2]। शोभा और रूप-वर्धक यह प्रसाधन नारी-सौन्दर्य के आवश्यक अँग हैं, वंकिम नयनों को अंजन रंजित करने से उनकी शोभा और भी बढ़ जाती है[3]। कर्णो में कर्णफूल की शोभा चन्द्र पर सूर्य का सौन्दर्य दिखाती है[4]। बहुँटा और टाँड़ पहने हुए बाहें भावपूर्वक संचालित होती हैं। कटि में क्षुद्रघंट और स्वर्ण का डोरा पहिने हैं, चलने के समय जिनसे छत्तीसों राग निःसृत होते हैं[5]।

सूफी-काव्य के वैभव विलासमय वातावरण में नायिका नव अभिनव शृंगार करती है, कभी वह लहरदार सारी, अंगिया को धारण करती, और कभी मेघवर्ण का स्वर्ण-मुद्रित और मुक्ताजटित चिकवा वसन धारण करती है। प्रतीत होता है कि तत्कालीन कला एवम् परिधान प्रणाली उच्च स्तर की थी। विभिन्न वर्ग

---

१. जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (रामचन्द्र शुक्ल) फुटनोट, पृ० १३०
च० स० २००६ काशी

२. "कै मंजन तब किएहु अन्हानू, पहिरे चीर गएउ छवि भानू।
रचि पत्रावलि मांग सेन्दूरा, भरि मोंतिन्ह औ मानिक चूरा।
चन्दन चित्र भए बहुभाँती, मेघ घटा जानहुँ बग पाँती।
सिरें जो रतन माँग बैसारा, जानहुँ गगन टूट लै तारा॥
तिलक लिलाट धरा तस डीठा, जनहुँ दुइज पर नखत बईठा।
मनि कुंडल खुँटिला औ खूँटी, जानहुँ परी कचपची टूटी॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, (गुप्त) पृ० ३२२–२३

३. "बाँक नैन औ अंजन रेखा, खंजन जनहु सरद रितु देखा।
जस जस हेर फेर चखु मोरी, लुरै सरद मँह खंजन जोरी॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२३, १९५३ इलाहाबाद

४. "कनकफूल नासिक अतिसोभा, ससिमुख आइ सूक जनु लोभा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२३

५. 'बाँहन्ह बाँहू टाड सलोनी, डोलत बाँह भाउ गति लोनी।
छुद्रघंटि कटि कांचन-तागा, चलतै उठै छतीसौ रागा॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३२४

की नारियों के उपभोग्य वस्त्र बांससर झिलमिल आदि प्रचलित थे[1]। नारियाँ वैभव के इन उपकरणों का, प्रसाधन के साधनों एंवम् वस्त्रों का प्रयोग द्वारा सौन्दर्य-वर्द्धन करती थीं।

माधवानल-कामकन्दला में भी कामकन्दला अंग में उबटन लगाकर स्नान करती, पुनः सुगन्धित तैल और चन्दन लगाती है[2]। चित्रावली भी अपनी माँग का प्रचलित प्रथानुसार मोतियों से शृंगार करती है, केशों के ऊपर शीशफूल लगाना सामान्यतः सौभाग्य एवम् शोभा का चिह्न समझा जाता था[3]। परन्तु मुख्यतः शृंगार एवम् सज्जा का मुख्य उद्देश्य प्रियतम को रिझाना था। इन्द्रावती के कर्णफूल मयंक की प्रभा को मलिन करने वाले हैं। वह कुंकुम के तिलक से मस्तक संवारती है। वस्तुतः इनका प्रसाधन, सौन्दर्य-वर्णन संयोग के पूर्व का है, अतः वासना और काम को उत्तेजना देने वाला[4] है।

तुलसी ने इन प्रसाधनों और वस्त्राभूषणों का अत्यल्प वर्णन किया है। उन्होंने रामचरितमानस में स्वयंवर-समय सीता की वेश-भूषा का विशद चित्रण नहीं किया, केवल उल्लेख मात्र किया है कि सीता सुन्दर रंग की साड़ी पहने है, सभी अंगों में यथास्थान आभूषण पहने है। फुलवारी में भी वह तीन भूषणों का ही उल्लेख करते हैं[5]। इन भूषणों—कंकन, किंकिनी, नूपुरों की ध्वनि मानों काम की

१. "पटुवन्ह चीर आनि सब छोरी, सारी कंचुकी लहर पटोरी।
फुदिया और कसनिया राती, छाएल पंडु आए गुजराती।
चदनौटा खीरोदक फारी, बाँस पीर झिलमिल की सारी।
चिकवा चीर मेघौना लोने, मोति लाग औ छापे सोने॥"
जायसी—जायसी ग्रन्थाली, (गुप्त) पृ० ३४४

२. "तेल सुगन्ध अरगजा कीन्हा, अंग उबटना मंजन कीन्हा।"
आलम—माधवानल कामकन्दला, हिन्दी के कवि और काव्य तृतीय भाग, पृ० १६८

३. "भरे माँग मोती मनियारे, नखत पाँति ससि आइ निहारे।
सीसफूल कच ऊपर वासा, स्याम रैनि मधि सूर विकासा॥"
उस्मान—चित्रावली, पृ० १०३

४. "करन करनफूल छवि भारी, मन्द मयंक की कोटिक नारी।
मनिमुक्ता लागे दैडूरज, मानौ घन माँह दिए होइ सूरज॥
कर कुंकुम लै तिलक संवारे, चैन मैन जनु बान सुधारे॥"
आलम—कामकन्दला, हिन्दी के कवि और काव्य, भाग ३ पृ० १६०५

. "सोह नवल तन सुन्दर सारी, जगत जननि अतुलित छवि भारी।
भूषन सकल सुदेस सुहाए, अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० १०७

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं, मनसा विस्व विजय कहं कीन्हीं॥"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग १, पृ० ६६

दुंदुभी का स्वर है। गीतावली में अयोध्या की स्त्रियाँ कुसुम्भी चीर और विविध प्रकार के आभूषणों को धारण कर झूला झूलने जाती हैं[1]। तुलसीदास ने नारी के श्रृंगार और वस्त्राभूषणों का अन्य कवियों के सामान सविस्तार वर्णन नहीं किया। रामलला नहछू में तुलसीदास ने निम्नवर्ग की परिधान प्रणाली और वस्त्राभूषणों का वर्णन किया है[2]।

केशव ने रामचन्द्रिका में सीता की सखियों तथा अयोध्या की नारियों की वेशभूषा एवम् श्रृंगार का चित्रण किया है। उस समय अनेक वर्णों के वस्त्रों का प्रचार था, राम के ऊपर मंगलकामनाओं एवम् पुष्प की वर्षा करती हुई नारियों में से कोई नीलाम्बर और कोई जरी के काम के वस्त्र धारण किए हैं[3]। हाथों की उँगलियों में स्वर्ण की अंगूठी अब भी पहनी जाती है, और आलोच्यकाल में भी पहनी जाती रही होंगी। पैरों को मंगल और सौभाग्य के चिन्ह महावर से रंजित किया जाता था[4]। विविध प्रकार की केशविन्यास की प्रणालियाँ भी प्रचलित थीं[5]। प्रायः सभी कवियों ने माँग को सिन्दूर रंजित कर, उसे मुक्ता रेखा से सजाने का विवरण दिया है। शीशफूल सिर पर, और बेंदा मस्तक पर लगाया जाता था। केशों में पुष्पमाल पहनी जाती थी[6]।

---

१. "कुसुंभी चीर तनु सोहहिं भूषन विविध संवारि।"
तुलसी—गीतावली भाग २, पृ० ४२३

२. "काने कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो,
गजमुक्ता कर हार कंठमनि मोहइ हो,
कर कंकन, कटि किंकिनि नूपुर बाजइ हो,
रानी कै दीन्हीं सारी तौ अधिक विराजइ हो।"
तुलसी—तुलसी ग्रन्थावली भाग २, : रामलला नहछू : पृ० ४

३. "नील निलोचन को पहिरे यक चित्त हरै।
मेघन की दुति मानों दामिनि देह धरे।
एकन के तन सूछम सारि जराय जरी।
सूर करावलि सी जनु पद्मिनी देह धरी।"
केशव—रामचन्द्रिका (दीन) पूर्वार्ध, पृ० १२८ पंचमावृति २००१ सं०

४. "सुन्दर अंगुरिन मुंदरी बनी, मणिमय सुवरण शोभासनी।"
केशव—रामचन्द्रिका (दीन) पूर्वार्ध, पृ० १७६
"कठिन भूमि अति कोवरे जावक सुभ शुभ पाय।"
केशव—रामचन्द्रिका, (दीन) पूर्वार्ध, पृ० १७६

५. "भाँति भाँति कबरी सुभ देखी, रूप भूप तरवारि बिसेषी।"
केशव—केशव ग्रन्थावली पृ० ३८३

६. "सेंदुर माँग भरी अति भली, तापर शोभित मोतिन की आवली।
गंग गिरा तन सो तन जोरि, निकसी जनु जमुना-जल फोरि।

कृष्णकाव्य अपनी लोकरंजक प्रवृत्ति के कारण जिस पृष्ठभूमि में पल्लवित हुआ उसमें स्वभावतः ऐश्वर्य और वैभव का प्राधान्य होने के कारण वस्त्राभूषणों और प्रसाधन के साधनों की संख्या भी अधिक है। ब्रजनारी ब्रजवल्लभ से मिलने के लिए सोलहों शृंगार करती और पाँच रंग की सुरंग सारी पहनती हैं[1]। नयनों का शृंगार अंजन से, शरीर का अंगराग चन्दन आदि से होता था। सूर ने इन प्रसाधनों का विवरण न्यून दिया है, भूषणों को बहुत महत्त्व दिया है[2]। तत्कालीन समाज में आर्थिक समृद्धि के मध्य भूषणों का प्रचार अधिक होगा। कटि, किंकिनि, नूपुर और कंकण तो जन सामान्य में ही प्रचलित थे[3]। मोतियों से माँग भरने और केशों का पुष्पों से सजाने का भी शृंगार-कलाविदों द्वारा जनसाधारण में प्रचार था। कुम्भनदास की नायिका के केशों से सुमन बिखरते हैं, केलि के उपरान्त माँग के मोती छितर जाते हैं[4]। ब्रजनारी की शोभावर्णन में सूर ने पग की जेहरी, किंकिनी, कंकण, चूड़ी, मुक्ताहार, कंठश्री, दुलरी, नाक की लौंग, कानों के कुण्डल आदि आभूषण तथा लाल लंहगा और पचरंगी सारी का विवरण दिया है[5]।

शीशफूल शुभ जरयौ जराय, माँग फूल सोहै समभाय।
बेनी फूलन की वरमाल, भाल भले बेंदाजुत लाल।"
केशव—केशव ग्रन्थावली, भाग २ पृ० ३८३

१. "पहिरि सारी सुरंग पंचरंग षष्ठ दस सिंगारि।"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ५४८, पद ६४४

२. सूरसागर, पृ० ७८०, पद १४६८।२११६

३. "जैसेइ बने स्याम, तैसीयै गोपी, छवि अधिकाइ।
कंकन, चुरी, किंकिनी, नूपुर, पैंजनि, बिछिया सोहति।"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ६२५, पद १०५८।१६७६
"बेनी छूटि लटैं बगरानी, मुकुट लटकि लटकानौ।
फूल खसत सिर तें भए न्यारे, सुभग स्वाति सुत मानौ॥"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ६२५, पद १०५७।१६७५

४. "मोतिन माँग बिथुरी सीस मुख पर मानो नक्षत्र आये करन पूजा।"
कुम्भनदास—कुम्भनदास पदावली, पृ० १४७ : अष्टछाप पदावली, सोमनाथ गुप्ता

५. "बनी ब्रजनारि-शोभा भारि
पगनि जेहरि, लाल लंहगा, अंग पचरंग सारि।
किंकिनी कटि, कनित कंकन, कर चुरी झनकार,
हृदय चौकी चमकि बैठी, सुभग मोतिनहार।
कण्ठश्री दुलरी बिराजति चिबुक स्यामल बिन्दु,
सुभग बेसरि ललित नासा, रीझि रहे नँद नंद॥"
सूर—सूरसागर पूर्वार्द्ध, पृ० ६१६, पद १०४३।१६६१

शेष, महेश और नारदादि की स्वामिनी राधा नीलाम्बर धारण करती हैं, चन्द्र सदृश मुख पर सिंदूर का अरुण विन्दु न लगा कर कस्तूरी का श्यामल चिन्ह बनाती हैं। वह भी अपनी केश रचना में प्रसूनों का प्रयोग करती हैं, सोने की संकरी और रत्न-मुक्ताजटित लटकन उनकी शोभा को परिवर्द्धित करते हैं। नयनों को अंजन रंजित करने से काम वाणों की वर्षा होने लगती है[1]। कृष्ण-काव्य में नारी वस्त्राभूषणों एवम् प्रसाधन द्वारा सौन्दर्य परिवर्द्धन कर प्रिय को विमुग्ध करती है। वह इस साज-सज्जा को अपने मनमोहन को मोहित करने का ही अस्त्र समझती है।

रीतिकाव्य वैभव के चरमोत्कर्ष के युग की परिस्थितियों में विकसित हुआ था। रीति-कवि वैभव की स्वर्णिम छाया में रहते तथा फारसी एवम् भारतीय कला और प्रसाधन की उच्चतम सामग्रियों का उपयोग करने वाले नरेन्द्रों का अनुकरण करते। उनके वैभवपूर्ण जीवन में प्रसाधन और कृत्रिमता वैभव और समृद्धि, आभूषण और वस्त्रों, विविध सुगन्धों, चोवा चन्दन और घनसार का मुख्य स्थान था[2]। इनके जीवन और इनके अन्तःपुर की नारियों की साज-सज्जा से प्रेरणा पाकर रीतिकाव्य की कल्पना भी रत्नजटित हो गई। रीतिकाल के कृत्रिमता प्रधान जीवन के मुगल सम्राटों के अन्तःपुर की स्त्रियों का कार्यक्रम केवल नवनूतन साधनों द्वारा अपने सौन्दर्य का परिवर्द्धन कर सौन्दर्य की प्रतिद्वन्द्विता में स्थान प्राप्त करना था। इन्हीं सब उल्लिखित कारणों से रीतिकाव्य के प्रसाधन तथा वस्त्राभूषणों में वैभव का आधिक्य स्पष्ट है। वैसे सामान्यतः रीतिकाव्य में वैभवपूर्ण वस्त्राभूषण एवम् जनसाधारण में प्रयुक्त वस्त्राभूषण तथा प्रसाधन दोनों का ही वर्णन मिलता है[3]। रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्ति शृंगार, नायिकाभेद एवम्

---

१. "ससि मुख तिलक दियौ मृगमद कौ, खुभी जराय जरी है,
नासा-तिल-प्रसून बेसरि-छवि, मोतिनि माँग भरी है।
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित, गूँथे सुमन रसालहिं,
× × ×
कंबु कंठ नाना मनि भूषन, उर मुकुता की माल।
कनक-किंकिनी नूपुर कलरव कूजत बाल रसाल॥
चौकी हेम चंद्रमनि-लागी रतन जराइ खँचाई।"
सूर—सूरसागर प्रथम भाग, पृ० ६२३-२४

२. "सेनापति अतर, गुलाब अरगजा साजि
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीष्म के वासर बराइबे को 'सीर' सब
राज-भोग काज राज यौं सम्हारियत हैं।"
सेनापति—कवित्त रत्नाकर तीसरा तरंग, छंद १०

३. "बेंदी भाल, तंबोल मुख सीस सिलसिलेवार।
दृग आँजे राजै खरी, एई सहज सिंगार॥"
बिहारी—बिहारी रत्नाकर, पृ० २८०, दो० ६०९

अलंकरण की प्रवृत्ति के कारण नारी-सौन्दर्य निरूपण में भी वस्त्राभूषण का योग अनिवार्य हो गया है। केशव ने तो अनाभरणा नारी को शोभाहीन ही माना है[1]। केशवदास पवित्रता-सकल शुचि, स्नान, महावर, केशविन्यास, अंगराग विविध भूषण, मुख-वास, कज्जल-कलित लोचन से दृष्टि-निक्षेप, बोलना, हँसना, मृदु-चातुर्य, मनोहर भंगिमा, और प्रतिक्षण पातिव्रत पर दृढ़ रहना यह नारी के सोलह शृंगार बताते है[2]। रीतिकालीन काव्य में प्रसाधन, शृंगार, वस्त्राभूषणों की सज्जा स्वाभाविक रूप से सौन्दर्य बढ़ाने को नहीं होती है, प्रत्युत यह सब प्रियतम को वश कर लेने के साधन के रूप में आते है। वस्तुतः इस सज्जा और आभूषणों में ही नारी स्वर्ण शृंखला की बन्दिनी बन गई थी।

कृष्णकाव्य और रीतिकाव्य दोनों में ही स्वकीया का प्रियतम द्वारा शृंगार होता है। सेनापति का नायक, प्रियतमा की वेणी को फूलों से सँवार कर, मस्तक पर कस्तूरी की श्याम बिन्दी अंकित कर, भूषण-सज्जित कर अपने हाथों से ही उसे ताम्बूल खिलाता है[3]। कहीं मतिराम की अभिसारिका नायिका के केसर-रंजित अंग, जवाहर की ज्योति से भी अधिक प्रकाशमान शरीर की द्युति ग्रीष्म के

बादले की सारी दरदावन किनारी जग-
मगी जरतारी झीनी झालरि के साज पर।
मोती गुहे कोरन चमक चहुँ ओरन ज्यों
तोरन तरैयन की तानी द्विजराज पर॥"
देव—शब्द रसायन, पृ० ७१

१. "जदपि सुजाति सलच्छिनी सुबरन सरस सुवृत्त,
भूषन बिनुन बिराजई कविता बनिता मित्त।"
केशव—पंचरत्न, (दीन) १६८६ इलाहाबाद, पृ० १५३

२. "प्रथम सकल सुचि मंजन अमलबास
जावक सुदेस केसपास को सुधारिबों
अंगराग भूषन विविध मुखबास-राग
कज्जल-कलित लोचन लोल, विहारिकै।
बोलनि हंसनि मृदु चातुरी चितौनि चारु
पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो
'केसोदास' सविलास करहु कुँवरि राधे
इहि विधि सोलह सिंगारिनि सिंगारिबो।"
केशव—केशव ग्रन्थावली प्रथम भाग, पृ० १४

३. "फूलन सों बाल की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है।

'उपसंहार'

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की विविध काव्यधाराओं की नारी-भावना के विश्लेषण से यह सुस्पष्ट है कि मध्ययुग का कवि सामान्य नारी को श्रद्धा एवम् आदर की दृष्टि से नहीं देखता है। नारी-आदर्श के विषय में उसकी निजगत व्याख्याएँ हैं। सन्तकाव्य से लेकर रीतिकाव्य की परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों में उद्भूत काव्य में सैद्धान्तिक मतभेद, व्यावहारिक विषमताएँ होते हुए भी इस विषय में एकरूपता है। सभी कवियों ने समवेत स्वर से उसे कामभावना का मूल बताया, तथा योनि मात्र ही देखा। विरक्ति-प्रधान सन्तों, प्रेमगाथाकार सूफियों, रामकाव्य के आदर्शवादी कवियों कृष्ण प्रेम-मदोन्मत्त कृष्ण-भक्तों तथा शृंगार एवम् विलास को ही जीवन का चरम सत्य समझने वाले रीति कवियों ने भी उसे वासना का उपकरण, विलास की सामग्री ही माना है।

आलोच्य वीरकाव्य परवर्ती चारणकाव्य की परम्परा पर ही विकसित हुआ। अतः यह वीर काव्यकार भी नारी को वीरभोग्या ही मानते हैं। इन कवियों को शौर्य की ज्वलन्त ज्वाला बन जाने वाली, पति एवम् पुत्र को सस्मित वदन रण-सज्जा में सज्जित करनेवाली वीर नारी के चित्रण के स्थान पर नारी का विलास-रत रूप अधिक प्रिय रहा है। परन्तु इन वीर कवियों की नारी-भावना विलास के प्रांगण तथा उत्सर्ग की स्थली दोनों में ही व्यापक है। शृंगार की दोला पर तरंगित होती नारी में आत्मोत्सर्ग की भावना, युद्ध में शत्रु-संहार की क्षमता तथा पातिव्रत के प्रति मोह है। अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए अग्निमालाओं का शृंगार बन जाना उसके लिए सहज ही है। वीर पत्नी, वीर माता के रूप में नारी का चित्रण हुआ है।

सन्तकाव्य में सामान्य नारी घृणा एवम् भर्त्सना की पात्री है। अपने मोहक प्रलोभनों द्वारा मानव को विराग-पथ से च्युत करने के कारण वह त्याज्य है। नारी का महत् त्याग, माता, पत्नी, भगिनी, प्रेयसी आदि विभिन्न स्वरूपों में उसके सत् रूप का विकास, त्याग और विराग को ही काम्य समझने वाले, सन्तों के लिए उपेक्षणीय रहा। सामान्य नारी की निन्दा करने पर भी पतिव्रता नारी के आत्मत्याग के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा की भावना अवश्य रही, जो प्रतीक द्वारा व्यंजित हुई है। पतिव्रता के अक्षय गौरव, नारी के निश्छल आत्म-समर्पण के साथ उन्होंने अपनी भावनाओं का तादात्म्य ही कर दिया है। परन्तु नारी निन्दा में उनका स्वर सबसे तीव्र एवम् कटु रहा है। शास्त्रों एवम् नीति-ग्रन्थों के प्रति खण्डनात्मक दृष्टिकोण रख कर भी नारी निन्दा में इनका मत सन्तों को मान्य रहा।

लौकिक प्रेम के प्रतीक के द्वारा अलौकिक प्रेम का आभास देने वाले सूफी-कवियों ने अपनी भाव-व्यंजना में नारी को परमात्मा अथवा दिव्य शक्ति का प्रतीक माना है। उनके काव्य में नारी की अधिक तीव्र भर्त्सना तो नहीं मिलती परन्तु युग के प्रभाव, उन विशिष्ट परिस्थितियों में पोषित मनोवृत्ति के कारण प्रेमगाथाकारों ने भी नारी को भोग का विषय तथा वासना की ओर उन्मुख करने वाली माना है। अशिक्षा तथा कुसंस्कारों में पली हुई उस युग की नारी कवि के समक्ष कोई उदात्त आदर्श एवम् प्रेरणा भी नहीं प्रस्तुत कर रही थी। अतः सूफी कवियों के काव्य में नारी के प्रति अवज्ञा एवम् हीनता का भाव स्पष्ट है। परन्तु उन्होंने भी दाम्पत्य जीवन के मध्य नारी में पातिव्रत के प्रांजल आदर्श का विकास दिखाया है। पति के साथ सहमरण करनेवाली सती का अक्षय सुहाग इनकी प्रशंसा एवम् श्रद्धा का विषय है।

राम के लोकरक्षक स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले रामकाव्य के उच्च आदर्श-पूर्ण कर्तव्य-विधान में साधारण नारी को गौरव एवम् सम्मान का अवकाश नहीं है। इन कवियों ने नारी को ही परिवार मर्यादा की भित्ति मानकर उसके लिए कठोर आचारशास्त्र निर्धारित किया। नारी के कर्तव्यरत, आदर्श की रेखाओं पर विकसित होते हुए रूप को कल्याण का प्रतीक मानने वाले इन कवियों ने भी नारी को 'मोह', 'वासना', 'काम' आदि का कारण मानकर उससे पृथक रहने की चेतावनी दी। कर्तव्य-परायण पतिव्रता नारी के गौरव का गान इन कवियों ने भी किया है, परन्तु सत्-असत् से पूर्ण सामान्य नारी के लिए उनकी करुणा एवम् श्रद्धा के कोष का द्वार शृंखलाबद्ध है। तुलसी ने सामान्य नारी को कामवासनामयी, सहज अपावन, जड़, अज्ञ माना है। नारी का आदर्श एवम् कर्तव्य के पथ से तिलमात्र भी विचलित होना उन्हें सह्य नहीं है। कवि बौद्धिकता अथवा मनोविज्ञान के आधार पर नारी के अपराध को मानवी दुर्बलता मानकर उदार न्यायाधीश के समान सन्देह के आधार पर अपराधी को मुक्त नहीं करता, प्रत्युत नारी के किंचित स्खलन, छोटे से दोष से ही कवि सम्पूर्ण नारी जाति के विरुद्ध अपना दृढ़, कठोर और निश्चित निर्णय दे देता है कि नारी जड़ बुद्धि वाली है, अथवा नारी के चरित्र की अगमता को समझने में विधि भी अशक्य है।

कृष्णकाव्य की रागानुगा धारा में मर्यादा-अतिक्रमण क्षम्य ही नहीं, विशिष्ट परिस्थितियों में श्लाघ्य भी माना गया है। विशिष्ट नारी के रूप में गोपियों के कुल लोक मर्यादा त्याग का गुणगान करने वाले सूरदास ने भी सामान्य नारी के लिए सामाजिक परम्पराओं तथा प्रतिबन्धों का पालन ही श्रेयस्कर माना है। सामान्य नारी के आचरण के लिए उन्होंने भी कठोर आदर्श का निर्देश किया है। नारी को यह कृष्ण-भक्त कवि भी माया के आकर्षण पाश, काम तथा वासनाओं के विष से पृथक न रख सके। यद्यपि इन कवियों ने नारी के भोग-परक, शृंगारमय रूप को गर्हित तथा त्याज्य बताया, परन्तु इन सगुण भक्त-कवियों के अनुसार नारी का वासनामय रूप ही निन्दनीय है।

वात्सल्यमयी त्यागमूर्ति जननी, पातिव्रत-रत पत्नी के सत् स्वरूप की व्यंजना में आदर्शमयी रेखाएँ श्रद्धा एवम् आदर की भावनाओं में मुखर हैं। गोविन्द स्वामी, कुम्भनदास, सूरदास तथा तुलसीदास ने जननी के वात्सल्यपूर्ण ममतामय रूप का चित्रण किया है। सूर द्वारा चित्रित यशोदा, तुलसी की कौशल्या एवम् सुमित्रा में त्याग और उत्सर्ग की प्रधानता है। यह स्पष्ट है कि माता रूप में नारी कवि की श्रद्धा की पात्री है। इन सभी धार्मिक सम्प्रदायों में नारी को भक्ति-साधना का अधिकारी माना गया है।

रीति-काव्य सामन्ती-आधारशिला पर स्थित समाज के विलासरत वर्ग की भावनाओं की अभिव्यंजना है। विलास तथा शृंगारिकता के जिस युग में रीति-काव्य का सर्जन हुआ, उसने नारी को जीवन के लिए परमावश्यक मानते हुए भी उसे क्रीड़ा एवम् विलास की सामग्री में ही सम्मिलित किया। अतः रीतिकवियों के नारी के प्रति दृष्टिकोण में अतृप्ति एवम् मोह है। उनके एकांगी, एकपक्षीय संकुचित दृष्टिकोण के समक्ष नारी सौन्दर्य अपूर्ण रहा, उसमें सत्यम् तथा शिवम् का योग नहीं हो सका। इन रीति-कवियों ने नारी को एकमात्र कामिनी के रूप में ही देखा, पारिवारिक जीवन के अन्य सत्सम्बन्धों का विकास वे नारी में नहीं देख सके। उनके द्वारा वर्णित नारी में कामुकता और वासना का दुर्दम्य विलास है, उत्सर्ग की पावनता और दीप्ति नहीं।

मध्ययुगीन कवियों द्वारा चित्रित नारी के सत् एवम् असत् दोनों रूप उपलब्ध हैं। आदर्श तथा कल्पना के प्रति मोह के कारण, उसकी ममता आदि विशेषताओं को परिलक्षित कर कवि ने उसे सुनारी की संज्ञा दी, और कभी उसकी दुर्बलता एवम् दोषों पर खीझ कर उसे कुनारी कहा है। सत् एवम् असत्, आदर्श एवम् यथार्थ की इन्हीं रेखाओं पर मध्ययुगीन कवि ने नारी का चित्रण किया है।

वात्सल्यमयी त्यागमूर्ति जननी, पातिव्रत-रत पत्नी के सत् स्वरूप की व्यंजना में आदर्शमयी रेखाएँ श्रद्धा एवम् आदर की भावनाओं में मुखर हैं। गोविन्द स्वामी, कुम्भनदास, सूरदास तथा तुलसीदास ने जननी के वात्सल्यपूर्ण ममतामय रूप का चित्रण किया है। सूर द्वारा चित्रित यशोदा, तुलसी की कौशल्या एवम् सुमित्रा में त्याग और उत्सर्ग की प्रधानता है। यह स्पष्ट है कि माता रूप में नारी कवि की श्रद्धा की पात्री है। इन सभी धार्मिक सम्प्रदायों में नारी को भक्ति-साधना का अधिकारी माना गया है।

रीति-काव्य सामन्ती-आधारशिला पर स्थित समाज के विलासरत वर्ग की भावनाओं की अभिव्यंजना है। विलास तथा शृंगारिकता के जिस युग में रीति-काव्य का सर्जन हुआ, उसने नारी को जीवन के लिए परमावश्यक मानते हुए भी उसे क्रीड़ा एवम् विलास की सामग्री में ही सम्मिलित किया। अतः रीतिकवियों के नारी के प्रति दृष्टिकोण में अतृप्ति एवम् मोह है। उनके एकांगी, एकपक्षीय संकुचित दृष्टिकोण के समक्ष नारी सौन्दर्य अपूर्ण रहा, उसमें सत्यम् तथा शिवम् का योग नहीं हो सका। इन रीति-कवियों ने नारी को एकमात्र कामिनी के रूप में ही देखा, पारिवारिक जीवन के अन्य सत्सम्बन्धों का विकास वे नारी में नहीं देख सके। उनके द्वारा वर्णित नारी में कामुकता और वासना का दुर्दम्य विलास है, उत्सर्ग की पावनता और दीप्ति नहीं।

मध्ययुगीन कवियों द्वारा चित्रित नारी के सत् एवम् असत् दोनों रूप उपलब्ध हैं। आदर्श तथा कल्पना के प्रति मोह के कारण, उसकी ममता आदि विशेषताओं को परिलक्षित कर कवि ने उसे सुनारी की संज्ञा दी, और कभी उसकी दुर्बलता एवम् दोषों पर खीझ कर उसे कुनारी कहा है। सत् एवम् असत्, आदर्श एवम् यथार्थ की इन्हीं रेखाओं पर मध्ययुगीन कवि ने नारी का चित्रण किया है।

परिशिष्ट—१

सहायक ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

१. अष्टछाप पदावली : सम्पादक श्री सोमनाथ गुप्त

२. कबीर ग्रन्थावली : **कबीर** : श्री श्यामसुन्दरदास, १९२८, प्रयाग

३. कबीर साहब की शब्दावली भाग १ : **कबीर** : श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, १९३१, काशी

४. कवित्त रत्नाकर : **सेनापति** : श्री ऊमाशंकर शुक्ल

५. कुंभनदास की पदावली : **कुंभनदास** : १९५३, काँकरौली

६. केशव ग्रन्थावली भाग १ (रसिकप्रिया, कविप्रिया) : **केशव** : श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, १९५४, इलाहाबाद

७. केशव ग्रन्थावली भाग २ : श्री [illegible] मिश्र

८. रामचंद्र-चंद्रिका (छंदमाला, नखशिख) : **केशव** : १९५५, इलाहाबाद

९. गोरख-बानी : **गोरखनाथ** : श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, द्वि० सं०, १९४६

१०. गोविन्द स्वामी (पदावली) : **गोविन्द स्वामी** : श्री ब्रजभूषण शर्मा तथा अन्य, १९५२, कांकरौली

११. गोरा बादल की कथा : **जटमल** : श्री अयोध्याप्रसाद, १९३४, प्रयाग

१२. घन आनन्द : **घनानन्द** : श्री [illegible], १९५२, काशी

१३. चरनदास की बानी : **चरनदास** : वेलवेडियर प्रेस, १९२१, प्रयाग

१४. चित्रावली : **उस्मान** : श्री जगमोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, १९१२, इलाहाबाद

१५. छत्रप्रकाश : **लाल** : श्री श्यामसुन्दरदास, १९११, काशी

१६. जायसी ग्रन्थावली : **जायसी** : श्री माताप्रसाद गुप्त, १९५२, इलाहाबाद

१७. जायसी ग्रन्थावली : **जायसी** : श्री रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी

१८. जंगनामा : **श्रीधर**

१९. डिंगल में वीर रस : **बाँकीदास, सूर्यमल्ल** : श्री मोतीलाल मेनारिया, १९३० प्रयाग

२०. तुलसी ग्रन्थावली भाग १ (रामचरित मानस) : **तुलसीदास** : श्री रामचन्द्र शुक्ल १९२३, काशी

२१. तुलसी ग्रन्थावली भाग २ (एकादश कृतियाँ) : **तुलसीदास** : श्री रामचन्द्र शुक्ल १९२३, काशी

२२. दादूदयाल की बानी : **दादू** : वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
२३. धरनीदास की बानी : **धरनीदास** : वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
२४. नन्ददास ग्रन्थावली : **नन्ददास** : श्री ब्रजरत्नदास, १६४३, काशी
२५. बिहारी रत्नाकर : **बिहारी** : श्री जगन्नाथदास रत्नाकर
२६. विद्यापति की पदावली : **विद्यापति** : श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, १६३६, लखनऊ
२७. भाव-विलास : **देव** : १६३६, प्र० सं०, काशी
२८. भूषण ग्रन्थावली : **भूषण** : श्री हरिऔध
२९. मलूकदास की बानी : **मलूकदास** : वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
३०. मधुमालती : **मंझन** : श्री शिवगोपाल मिश्र, १६५७, काशी
३१. मतिराम ग्रन्थावली : **मतिराम** : श्री कृष्णबिहारी मिश्र, द्वि० सं०, १६३४ लखनऊ
३२. मीराबाई की पदावली : **मीराबाई** : श्री परशुराम चतुर्वेदी
३३. राजविलास : **मान** : लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा काशी
३४. रहिमन सुधा : **रहीम** : श्री अनूपलाल मंडल, द्वि० सं०, १६३१, प्रयाग
३५. रहीम रत्नावली : **रहीम** : श्री मायाशंकर याज्ञिक, तृ० सं०, साहित्य सेवा सदन काशी
३६. शब्द रसायन : **देव** : श्री जानकीनाथ सिंह, प्र० सं०, १६२३, हिन्दी सा० स० प्रयाग
३७. सतसई सप्तक (**वृन्द, बिहारी, तुलसी, रसलीन आदि**) : श्यामसुन्दरदास, १६३१ हिन्दुस्तानी एकेडेमी
३८. सुजान चरित : **सूदन** : श्री राधाकृष्णदास काशी
३९. सुन्दरदास ग्रन्थावली : **सुन्दरदास** : राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, १६३६, कलकत्ता
४०. सूर-सागर खण्ड १ : **सूरदास** : सूर समिति, १६४३, ना० प्र० सभा काशी
४१. सूर-सागर खण्ड २ : **सूरदास** : सूर समिति, १६२३, ना० प्र० सभा काशी
४२. संत-बानी-संग्रह : वेलवेडियर प्रेस, १६३२
४३. हिन्दी के कवि और काव्य (**इन्द्रावती, माधवानल-कामकदला**) : श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी

सहायक-ग्रन्थ

१. अनहैपी इण्डिया : लाला लाजपतराय : बन्ना पब्लिशिंग कम्पनी कलकत्ता
२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ : श्री दीनदयाल गुप्त : १६३७, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग २ : श्री दीनदयाल गुप्त : १६३७, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
४. आधुनिक कवि (भूमिका) : श्री सुमित्रानन्दन पन्त
५. आइने अकबरी : अबुल फ़ज़ल : ब्लीचमैन द्वारा अनुवादित

६. इस्लाम और गैरमुस्लिम विद्वान : श्री अबू मुहम्मद इब्राहीम : १९४९, काशी
७. इस्लामिक कल्चर (पत्रिका) : हैदराबाद
८. इण्डिया एण्ड हर पीपुल : श्री अभेदानन्द : १९४५, कलकत्ता
९. इण्डिया फ्राम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टु स्लेवरी : श्री ऐस० ए० डांगे
१०. उत्तर रामचरित (संस्कृत) : भवभूति—सं० टी० आर० अयर : आ० सं० १९३० बम्बई
११. उत्तर भारत की सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी : प्र० सं०, १९४१, इलाहाबाद
१२. एज आफ इम्पीरियल यूनिटी आफ इण्डिया : राधाकुमुद मुखर्जी, रमेशचन्द्र मजूमदार : भारतीय विद्या भवन
१३. ए सरवे आफ इण्डियन हिस्ट्री : के० एम० पानिकर : बंबई, १९५४
१४. एन एडवान्सड हिस्ट्री आफ इण्डिया : रमेशचन्द्र मजूमदार, एच० सी० राय चौधरी १९५३, लंदन
१५. कबीर : हजारीप्रसाद द्विवेदी : १९४७, बंबई
१६. कवीर का रहस्यवाद : रामकुमार वर्मा
१७. कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया भाग १ : रामकृष्ण सेंचीनेरो : कलकत्ता
१८. कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया भाग ३ : रामकृष्ण सेंचीनेरी : कलकत्ता
१९. कल्याण (नारी अङ्क) : गीता प्रेस गोरखपुर, १९४८
२०. कालिदास युगीन भारत : भगवतशरण उपाध्याय : १९५५ इलाहाबाद
२१. किरातार्जुनीय (संस्कृत) : भारवि
२२. क्रिसेंट इन इंडिया : श्री एस० आर० शर्मा : १९३७, बंबई
२३. ग्रेट विमेन आफ इण्डिया : श्री माधवानन्द, रमेशचन्द्र मजूमदार सम्पादित : १९५३ कलकत
२४. जहाँगीर इंडिया : (पेल्सवर्ट) मोरलैन्ड सम्पादित : १९२५, कैम्ब्रिज
२५. जातक प्रथम खण्ड : श्रीभदन्त आनन्द कौसल्यायन
२६. ट्रैवेल्स इन मुगल इण्डिया : (बर्नियर) कांसटेबल संपादित
२७. डिसकवरी आफ इण्डिया : श्री जवाहरलाल नेहरू : १९४५, कलकत्ता
२८. तसव्वफ अथवा सूफीमत : श्री चन्द्रवली पाण्डेय : १९४८ द्वि० सं०, काशी
२९. तुलसी ग्रन्थावली भाग ३ : सं० श्री रामचन्द्र शुक्ल
३०. तुलसीदास : श्री माताप्रसाद गुप्त : १९५३, इलाहाबाद
३१. तुलसी-दर्शन : श्री बलदेवप्रसाद मिश्र
३२. तुलसी रसायन : श्री भगीरथ मिश्र
३३. वन्डर दैट वाज इण्डिया : ए० एल० बॉशम : १९५४, लंदन
३४. पर्शियन वुमेन एन्ड हर वेज : सी० कालिवर राइस : १९२२, लंदन
३५. पोजीशन आफ विमेन इन हिंदू सिविलिजेशन : श्री ए० एस० अल्टेकर : हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, १९३९
३६. बाल महाभारत काव्य (संस्कृत) : श्री अमरचन्द्र सूरि, सं० शिवदत्त शर्मा : १८९४

हृत्य का नायिका-भेद : श्री प्रभुदयाल मीतल : द्वि सं०, १९४८, मथुरा
३८. भारतीय समाज संस्कृति तथा संस्थाएँ : श्री कैलाशनाथ शर्मा : १९५२, कानपुर
३९. भारतीय प्रेमाख्यान : श्री हरिकान्त श्रीवास्तव : १९५५, बनारस
४०. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण : श्री भगवतशरण उपाध्याय : १९५० काशी
४१. भारतीय साधना और सूर-साहित्य : श्री मुंशीराम शर्मा : साहित्य साधना सदन कानपुर
४२. मसनवीज आफ जलालुद्दीन रुमी : मौलाना रुमी : निकल्सन सम्पादित
४३. मध्यकालीन धर्म-साधना : श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी : १९५२, प्रयाग
४४. मेवाड़ गौरव : श्री पद्मराज जैन, १९२६, कलकत्ता
४५. मेवाड़ का इतिहास : श्री हनुमानसिंह रघुवंशी
४६. रघुवंश (संस्कृत) : श्री कालिदास
४७. रीतिकाव्य की भूमिका : श्री नगेन्द्र, १९४९, दिल्ली
४८. रीतिकालीन कविता तथा श्रृंगाररस का विवेचन : श्री राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी १९५३, आगरा
४९. लाइफ एण्ड कन्डीशन्स आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान : श्री कुँवर मुहम्मद अशरफ
५०. विमेन अन्डर पोलोगैमी : श्री वाल्टर एम० गैलिकन्स, १९१४, लंदन
५१. विमेन इन एंशियंट इण्डिया : श्री सी० वैंडर
५२. विमेन इन वैदिक एज : श्री शकुन्तला राव शास्त्री
५३. विचार और विश्लेषण : श्री नगेन्द्र, दिल्ली
५४. शिशुपाल वध (संस्कृत) : श्री माघ
५५. स्टोरिया द मोगोर भाग १ : मनूची, विलियम इर्विन अनुवादित, १९०६
५६. स्टोरिया द मोगोर भाग २ : मनूची, विलियम इर्विन अनुवादित, १९०६
५७. स्टडीज फ्राम इंडिया : श्री जदुनाथ सरकार, १९१९, कलकत्ता
५८. स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म : निकल्सन, १९२१, कैम्ब्रिज
५९. सप्तसिन्धु वीरकाव्यांक (पत्रिका) : १९५५ जून
६०. सम कल्चरल ऐस्पेक्टस आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया : जफर, १९३९, पेशावर
६१. सम ऐस्पेक्टस आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन : श्री रामप्रसाद त्रिपाठी, १९३६, इलाहाबाद
६२. संत कवि दरिया एक अनुशीलन : धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, पटना
६३. संस्कृति के चार अध्याय : श्री रामधारीसिंह दिनकर, १९५६, दिल्ली
६४. सूर-साहित्य : श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
६५. सूरदास : श्री रामचन्द्र शुक्ल, काशी
६६. हिन्दी नवरत्न : मिश्रबन्धु, १९३८, पं० सं०, लखनऊ
६७. हिन्दी महाभारत : अनुवादक द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी, १९३०, इलाहाबाद

६८. हिन्दू सिविलिजेशन : श्री राधाकुमुद मुकर्जी, १९५०, बंबई
६९. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : श्री बेनीप्रसाद, १९३१, प्रयाग
७०. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य : श्री कमल कुलश्रेष्ठ, १९५३, अजमेर
७१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : श्री रामचन्द्र शुक्ल, १९५५, काशी
७२. हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास : श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
७३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : श्री रामकुमार वर्मा, द्वि० सं०, १९४८ इलाहाबाद
७४. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, १९५०, लखनऊ
७५. हिन्दी साहित्य की भूमिका : श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९४८, बंबई
७६. हिन्दी वीर-काव्य : श्री टीकमसिंह तोमर
७७. हुमायूँ नामा : गुलबदन बेगम, सं० ब्रजरत्नदास, सं० १९८०, काशी
७८. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ : श्रीमती सावित्री सिन्हा : १९५३, दिल्ली
७९. मध्यकालीन संस्कृति : गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा
८०. मध्ययुग का इतिहास : ईश्वरी प्रसाद : १९५५, इलाहाबाद
८१. मिस्टिक्स आफ इस्लाम : निकल्सन : १९१४, इंग्लैंड
८२. मुगल एडमिनिस्ट्रेशन : जदुनाथ सरकार : १९३५, कलकत्ता

शोध-प्रबन्ध

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

१. आधुनिक हिन्दी काव्य की नारी-भावना : शैलकुमारी माथुर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी
२. कोर्ट लाइफ आफ मुगल्स : अन्सारी, आसिर अहमद
३. स्टडीज इन मुगल पेन्टिंगस् : कौमुदी
४. सम ऐस्पेक्टस आफ पोजीशन आफ विमेन इन एंशियंट इंडिया : गौरा बनर्जी
५. सिद्ध-साहित्य : धर्मवीर भारती